उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

MAHI-114
हिन्दी भाषा

खण्ड

01

भारतीय आर्य भाषाएँ

इकाई 01

विश्व की भाषाएँ और भारतीय भाषा परिवार 5

इकाई 02

भारोपीय परिवार और भारतीय आर्य भाषाएँ 34

इकाई 03

संस्कृत से अपभ्रंश तक 43

इकाई 04

आधुनिक आर्य भाषाएँ और हिंदी 65

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. ओम अवस्थी
गुरु नानक देव
विश्वविद्यालय, अमृतसर

प्रो. गोपाल राय
सी-3, कावेरी, इग्नो आवासीय
परिसर, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली

प्रो. नामवर सिंह
32-ए, शिवालिक अपार्टमेंट
अलकनंदा, नई दिल्ली

प्रो. नित्यानंद तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली

प्रो. निर्मला जैन
ए-21/17, कुतुब एन्क्लेव, फेज-1
गुड़गाँव, हरियाणा

प्रो. प्रेम शंकर
बी-16, सागर विश्वविद्यालय परिसर
सागर

प्रो. मुजीब रिज़्वी
220, ज़ाकिर नगर, नई दिल्ली

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी
3, बैंक रोड, इलाहाबाद

प्रो. लल्लन राय
3, प्रीत विला, समर हिल
शिमला

प्रो. शिवकुमार मिश्र
एफ-17, मानसरोवर पार्क कालोनी
पंचायती हॉस्पिटल मार्ग
वल्लभ विद्यानगर, गुजरात

स्व. शिव प्रसाद सिंह
प्रो. सूरजभान सिंह
आई-27, नारायणा विहार
नई दिल्ली

संकाय सदस्य

प्रो. वी.रा. जगन्नाथन
डॉ जवरीमल्ल पारख
डॉ रीता रानी पालीवाल
डॉ सत्यकाम
डॉ राकेश वत्स
डॉ शुत्रघ्न कुमार
श्रीमती स्मिता चतुर्वेदी
डॉ विमल खांडेकर

पाठ्यक्रम निर्माण

इकाई लेखक	
25. विश्व की भाषाएँ	प्रो. अन्विता अब्बी
26. भारोपीय परिवार	प्रो. जीनी इंजिनियरी
27. संस्कृत से अपभ्रंश	डा. लालचंद्र द्विवेदी
28. आधुनिक आर्य भाषाएँ	डा. लालचंद्र द्विवेदी

खंड संपादक
प्रो. वी रा. जगन्नाथन
इं.गा.रा.मु.वि.वि., नई दिल्ली

पाठ्यक्रम संयोजक
सुश्री स्मिता चतुर्वेदी
इं.गां.रा.मु.वि.वि., नई दिल्ली

सामग्री निर्माण

प्रो. पी. एन. पंडित
निदेशक, मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

श्री कुलवंत सिंह
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू
नई दिल्ली

मार्च 2003 (पुनः मुद्रण)

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2002

ISBN-81-266-0456-5

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा पुनः मुद्रित। उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित, 2024

मुद्रक : चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा0 लि0 42/7 जवाहर लाल नेहरू रोड, प्रयागराज

PEPE-027

खंड परिचय : खंड- 1

साहित्य के इतिहास के अध्ययन के संदर्भ में भाषा के इतिहास को जानना भी महत्वपूर्ण है। साहित्यिक परंपराएँ जिस तरह से सामाजिक गतिविधियों से जुड़ती हैं उसी तरह भाषा के प्रवाह से भी जुड़ती हैं। उदाहरण के तौर पर भक्ति साहित्य का संबंध ब्रज भाषा से है जिसकी प्रांजलता के कारण गेय पदों के रूप में इस भाषा का कृष्ण भक्ति काव्य में व्यापक उपयोग हुआ है। भाषा और साहित्य के प्रत्यक्ष संबंध को हम आधुनिक युग में देख सकते हैं जहाँ व्यापक जनसंचार और ज्ञान के प्रसार के कारण बोलियों के स्थान पर साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ीबोली स्थापित हुई है। यह कह सकते हैं कि खड़ी बोली का आविर्भाव और नवजागरण का उत्थान दोनों एक दूसरे की पूरक गतिविधियाँ हैं। इस उद्देश्य से हम पाठ्यक्रम एम.एच.डी.-6 में 2 खंडों में हिंदी भाषा के इतिहास की विस्तृत चर्चा कर रहे हैं।

खंड-7 और 8 में अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में विश्व की सभी भाषाओं के संदर्भ में हिंदी भाषा के विकास को देखने का यत्न किया गया है। खंड-7 संस्कृत से आधुनिक आर्य भाषाओं और हिंदी के विकास क्रम को प्रस्तुत करता है। खंड-8 में हिंदी की संकल्पना को और उसके विकास को आधुनिक युग में देखने का यत्न किया गया है। इकाई-31 में वर्तमान युग में हिंदी के प्रकार्यों और उसकी भूमिकाओं की चर्चा है।

प्रस्तुत खंड *भारतीय आर्य भाषाएँ* भारत की भाषा स्थिति को पृष्ठभूमि में रखकर संस्कृत से हिंदी के विकास क्रम को प्रस्तुत करता है। हिंदी भारोपीय परिवार की भाषा है। इस परिवार की भाषाओं को बोलने वाले विश्व में सबसे अधिक हैं । हिंदी, अंग्रेजी, रुसी आदि इसी भाषा परिवार में आती हैं। इस प्रकार की जानकारी इस कारण आवश्यक है कि हम व्याकरणिक रचना, शब्दावली, उच्चारण की विशेषताएँ आदि के संदर्भ में इन भाषाओं के अंत: संबंध को पहचानें।

विश्व के 9 या 10 प्रमुख भाषा परिवार हैं जिनमें भारोपीय परिवार के साथ सेमेटिक (अरबी भाषा) और चीनी परिवार आदि प्रमुख हैं। विश्व की इन भाषा परिवारों में चार तो भारत में ही हैं और इनमें से दो परिवार (भारोपीय परिवार और द्रविड परिवार) प्राचीनता और साहित्य की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि परस्पर आदान-प्रदान के कारण इन सब भाषाओं में कई सामान्य विशेषताएँ विकसित हुईं। जैसे तमिल, तेलुगु आदि द्रविड़ भाषाओं ने हिंदी के वर्णमाला और उच्चारण पद्धति को अपनाया। ब्राह्मी लिपि से अपनी लिपि पद्धति विकसित की और संस्कृत भाषा से साहित्यिक परंपरा और शब्दावली विपुल मात्रा में प्राप्त की। संस्कृत भाषा में भी द्रविड भाषाओं के परिवार के कारण कई नये भाषिक तत्व जुड़े जैसे मूर्धन्य ध्वनियों का उच्चारण, शब्दावली जैसे मीन, नीर आदि, रंजक क्रियाएँ। इन सामान्य विशेषताओं के कारण प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक एमन्यू ने भारत को एक **भाषा क्षेत्र** कहा था। भाषिक और साहित्यिक परंपरा की समानता के कारण भारत के भाषा परिवारों की कुछ विशेषताओं की चर्चा करना भी आवश्यक प्रतीत हुआ। इस खंड में विश्व के भाषा परिवार, भारोपीय परिवार, भारतीय भाषा परिवार तथा, भाषा क्षेत्र की संकल्पना की चर्चा की गई है।

संस्कृत से पाली, प्राकृत और अपभ्रंश के रास्ते से आधुनिक आर्य भाषाओं यथा हिंदी, बंगला, मराठी आदि के विकास क्रम के बारे में आपने पहले भी पढ़ा होगा और इस विकास क्रम से आप परिचित होंगे। फिर भी इकाई-27 और 28 में इस विकास क्रम की विस्तृत जानकारी दी गई है जिससे कि आप भारत की साहित्य परंपरा से भी परिचित हो सकें और भाषिक परिवर्तनों के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर सकें।

इस खंड में चर्चित विषयों के संदर्भ में हमने इस पाठ्यक्रम के आलेख संग्रह (विविधा) में कुछ लेख सम्मिलित किये हैं जिससे आप विषय से संबंधित विद्वानों के विभिन्न मत जान सकें। एम.ए. के स्तर पर हम अध्येताओं से अपेक्षा करते हैं कि वे पाठ्यक्रम से बाहर के महत्वपूर्ण ग्रंथों का अध्ययन-अवलोकन करें जिससे उनके ज्ञान में विस्तार हो। इस उद्देश्य से खंड के अंत में कुछ प्रमुख संदर्भ ग्रंथों की सूची दी गई है। ये ग्रंथ आप अपने अध्ययन केन्द्र में या पुस्तकालयों में देख सकते हैं।

इस पाठ्यक्रम की संकल्पनाओं को समझने में कठिनाई हो या आप विस्तृत जानकारी चाहें, तो बी.ए. के हिंदी ऐच्छिक पाठ्यक्रम ई.एच.डी.-6: *हिन्दी भाषा का इतिहास और वर्तमान* का भी अवलोकन करें।

शुभकामनाओं के साथ।

इकाई 1 विश्व की भाषाएँ और भारतीय भाषा परिवार

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 संसार की भाषाएँ
 1.2.1 भाषाओं के वर्गीकरण का आधार
 1.2.2 संसार के भाषा परिवार
1.3 भारत के भाषा परिवार और प्रमुख भाषाएँ
 1.3.1 हिंदी-उर्दू की स्थिति
 1.3.2 भारतीय भाषाई स्थिति का आकलन
1.4 आर्यभाषा परिवार
 1.4.1 ध्वनि व्यवस्था
 1.4.2 रूप व्यवस्था एव शब्द रचना
 1.4.3 वाक्य विन्यास
1.5 द्रविड परिवार
 1.5.1 ध्वनि व्यवस्था
 1.5.2 रूप व्यवस्था एवं शब्द रचना
 1.5.3 वाक्य विन्यास
1.6 ऑस्ट्रो-एशियाई (मुंडा) परिवार
1.7 तिब्बती-बर्मी परिवार
1.8 भारतीय भाषा क्षेत्र की परिकल्पना
1.9 सारांश
1.10 अभ्यास प्रश्न

1.0 उद्देश्य

संसार में बहुत-सी भाषाएँ बोली जाती हैं। इन्हें 9-10 परिवारों में बाँटा जाता है। भारत में ही इनमें से चार परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं। पिछली जन गणनाओं के अनुसार भारत में बोली जाने वाली भाषाओं की कुल संख्या 1650 है। ये सारी भाषाएँ किस रूप में संबंधित हैं? भाषा वैज्ञानिकों ने इन भाषाओं को चार प्रमुख भाषा परिवारों में बाँटा है, जिनमें भारतीय आर्य भाषाएँ और द्रविड प्रमुख हैं। फिर यह देखने का यत्न किया गया है कि इनमें परस्पर क्या संबंध हैं और ये एक दूसरे को कैसे प्रभावित करती हैं।

इस पाठ को पढ़ने के बाद:

- आप भाषा परिवार की संकल्पना स्पष्ट कर सकेंगे;
- संसार के भाषा परिवारों का वर्णन कर सकेंगे,
- भारत में उपस्थित चार प्रमुख परिवारों की विशेषताएँ बता सकेंगे,
- इन परिवारों की प्रमुख भाषाओं के विवरण दे सकेंगे,

- इस भाषाओं की प्रमुख विशेषताएँ बता सकेंगे, और
- इनके अंत:संबंध की बात स्पष्ट कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

हम सब कोई-न-कोई भाषा बोलते हैं। भाषा मनुष्य मात्र की विशेषता है। भारत में हम कई भाषाएँ बोलते हैं - हिंदी, बांग्ला, तमिल, मणिपुरी आदि। ये सब भाषाएँ परस्पर किस रूप में संबद्ध हैं?

संसार की भाषाएँ लगभग 4000 हैं, जिन्हें विद्वान 9 परिवारों में वर्गीकृत करते हैं। भाषा की संरचना, शब्दावली, इतिहास आदि से परिवार की संकल्पना मूर्त रूप लेती है। एक परिवार की भाषाओं में कई समान भाषिक तत्व मिलते हैं।

भारत बहुत विशाल देश है। इस देश में ही लगभग 1650 भाषाएँ बोली जाती हैं और संसार के नौ भाषा परिवारों में चार तो भारत में ही विद्यमान हैं। ये हैं - भारोपीय परिवार की आर्य भाषा शाखा, द्रविड भाषा परिवार, आस्ट्रिक परिवार की मुंडा शाखा और तिब्बत-चीनी परिवार की तिब्बत-बर्मी शाखा।

इनमें आर्य भाषाएँ और द्रविड भाषाएँ बोलने वालों की संख्या सबसे बड़ी है और भाषा के महत्व के हिसाब से महत्वपूर्ण हैं। संविधान की अष्टम सूची में जिन 18 प्रमुख भाषाओं का उल्लेख किया गया है उनमें 13 आर्य भाषाएँ हैं, 4 द्रविड भाषाएँ हैं और मणिपुरी तिब्बत-बर्मी परिवार की भाषा है।

इस इकाई में आप भारत के चार प्रमुख परिवारों की भाषाओं की संरचनाओं की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे और इन सब परिवारों की कुछ सामान्य विशेषताओं का भी अध्ययन करेंगे जो इनमें परस्पर आदान-प्रदान के कारण विकसित हुई हैं।

1.2 संसार की भाषाएँ

संसार में कुल कितनी भाषाएँ बोली जाती हैं, यह अनुमान का ही विषय हो सकता है, क्योंकि पूरे विश्व की भाषाओं की विधिवत् गणना संभव नहीं है। अनुमान किया जाता है कि संसार में लगभग 4000 भाषाएँ बोली जाती हैं।

ये सारी भाषाएँ एक जैसी नहीं हैं। इनकी अपनी विशेषताओं के कारण इन्हें अलग-अलग परिवारों में बाँटा जाता है। विश्व में कितने भाषा परिवार हैं? इसमें भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ भाषाओं में कई परिवारों की विशेषताएँ मिलने के कारण इनका वर्गीकरण विवादास्पद है। कह सकते हैं कि संसार में करीब 9-10 भाषा परिवार हैं।

1.2.1 भाषाओं के वर्गीकरण का आधार

भाषाओं के वर्गीकरण के प्रमुख दो आधार हैं:

क) परिवारिक वर्गीकरण (geneological classification)

ख) आकृतिमूलक वर्गीकरण (typological classification)

क) **पारिवारिक वर्गीकरण:** पारिवारिक वर्गीकरण के संदर्भ में अपने भाषा के संदर्भ में माँ, बेटी (जैसे संस्कृत भारतीय भाषाओं की जननी है आदि) आदि शब्द सुने होंगे। ये शब्द जैविक उत्पत्ति के द्योतक नहीं, बल्कि ऐतिहासिक विकासक्रम के द्योतक हैं। यह माना जाता है कि भाषा के मूल तत्व-ध्वनि संरचना, क्रिया संरचना, वाक्य गठन के मूल तत्व, आधारभूत शब्दावली लंबे काल क्रम में बदलते नहीं। उदाहरण के लिए संस्कृत और लैटिन पता नहीं कितने हज़ार साल पहले एक मूल भाषा से अलग हुई होंगी। लेकिन उनकी क्रिया रचना समान है। भ्राता (brother), माता (mater>mother), पिता (pater>father) आदि आधारभूत शब्द आज तक सुरक्षित हैं। इन शब्दों की ध्वनि संरचना में भी साम्य देखा जा सकता है।

ख) **आकृतिमूलक वर्गीकरण:** भाषाओं को उनकी संरचना के आधार पर अलग-अलग वर्गों में बांट जाता है। जैसे संस्कृत भाषा संश्लिष्ट, (synthetic) योगात्मक है, क्योंकि इसमें धातु प्रत्यय, उपसर्ग आदि से शब्दों की रचना होती है। इसके विपरीत चीनी भाषा अयोगात्मक है, क्योंकि चीनी भाषा में शब्दों के रूप नहीं बदलते। प्रश्लिष्ट भाषाओं में वाक्य के सारे शब्द मिलकर नया ही रूप बनते हैं।

निम्नलिखित रूपात्मक वर्ग द्रष्टव्य हैं :

- संसार की भाषाएँ
  - अयोगात्मक analytic (चीनी)
  - योगात्मक synthetic
    - अश्लिष्ट agglutinating (तमिल, तुर्की)
    - संश्लिष्ट (inflectional) (संस्कृत, हिंदी)
    - प्रश्लिष्ट (polysynthetic) (स्किमो भाषाएँ)

आकृतिमूलक वर्गीकरण पारिवारिक वर्गीकरण के लिए भी आधार है।

1.2.2 संसार के भाषा परिवार

संसार की भाषाओं को (कई अपवादों और विश्लेपण की कठिनाइयों को छोड़कर निम्नलिखित नौ परिवारों में बाँटा जा सकता है:

1. भारोपीय परिवार
2. सामी-हामी परिवार
3. द्रविड़ भाषाएँ
4. आस्ट्रिक
5. फिनो-उग्रिक
6. अल्ताई
7. चीनी-तिब्बती परिवार
8. काकेशियन भाषा परिवार
9. अमेरिकी भाषाएँ

1. **भारोपीय परिवार :** इस परिवार की भाषाएँ संसार की प्रमुख भाषाएँ हैं जैसे अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, स्पैनिश फ़ारसी, हिन्दी, उर्दू, बांग्ला, पंजाबी आदि। इस परिवार की भाषाएँ बोलने वालों की संख्या विश्व में सबसे अधिक है। हम भारोपीय परिवार के बारे में विस्तार से आगे पढ़ेंगे।

2. **सामी-हामी परिवार (Semitic-Hamitic):** इस परिवार की पाँच शाखाएँ हैं :

- सामी-हामी
  - मिस्री (Egyptian)
  - बर्बर (Berber)
  - कुशीती (Cushitic)
  - शाद (Chad)
  - सामी (Semetic)
    - पूर्वी सामी
      - अक्कादीय भाषा (बैबिलोन की भाषा)
    - पश्चिम सामी
      - कनानीय प्रमुख भाषा हीब्रू
      - अरबी भाषा

इस वर्ग की भाषाओं की प्रमुख विशेषता शब्द के मूलांश (radical) से शब्द निर्माण की प्रक्रिया है। मूलांक तीन व्यंजनों का होता है और स्वरभेद से इसी से कई शब्द बन जाते हैं। जैसे /क – त – ल/ एक मूलांश है और इससे कत्ल, कातिल, मक्तूल आदि शब्द बनते हैं।

हीब्रू की अपनी लिपि थी जिसे कीलाक्षर कहते हैं। अरबी भाषा की अपनी लिपि है जिसे फ़ारसी, उर्दू आदि भाषाओं ने भी अपनाया।

इस परिवार को कुछ विद्वानों ने अफ़्रीकी-एशियाई परिवार भी कहा है। इसके अतिरिक्त अफ़्रीका में बांटू (Bantu) बुशमैन (Bushman) आदि अफ़्रीकी भाषा परिवारों की भी बात की जाती है।

3. **द्रविड भाषाएँ :** भारत के दक्षिण में बोली जाती हैं। तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम चार प्रमुख द्रविड भाषाएँ हैं। इनके अतिरिक्त तुलु, कोडगु आदि अन्य कई भाषाएँ इस वर्ग में आती हैं। हम द्रविड भाषाओं के बारे में विस्तार से आगे पढ़ेंगे।

4. **आस्ट्रिक (Austric) :** इस परिवार की भाषाएँ क्षेत्र विस्तार की दृष्टि से भारोपीय भाषा परिवार के बाद सबसे व्यापक क्षेत्र में बोली जाती हैं। इसका क्षेत्र न्यूज़िलैंड से भारत की पूर्वी सीमा तक है।

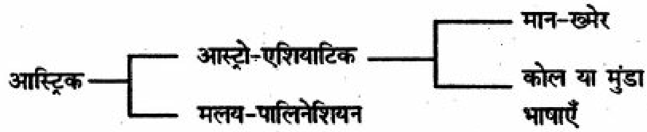

मान-ख्मेर की भाषाएँ म्यानमार, विएटनाम, कंबोडिया आदि देशों में बोली जाती हैं। मुंडा भाषाएँ भारत में बोली जाती हैं, जिनमें संथाली, खासी आदि प्रमुख हैं। मलय-पालिनेशियन में मलय भाषा, भाषा इंडोनेशिया, जवद्वीप की भाषा आदि प्रमुख हैं।

5. **फिनो-उग्रिक (Finno-Ugric) :** इस वर्ग में फिनलैंड की भाषा और हंगरी की भाषा प्रमुख हैं।

अल्ताई (Ultaic) : इस परिवार के तीन उपवर्ग हैं:

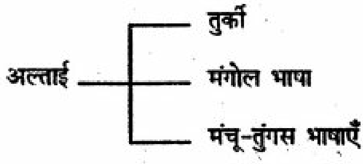

7. **चीनी-तिब्बती परिवार (Sino-Tibetan) :** इस प्रकार के तीन उपवर्ग हैं :

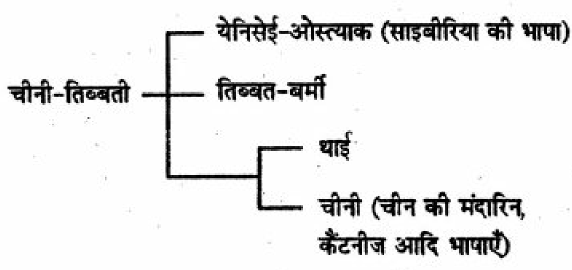

इस परिवार की भाषाओं की मुख्य विशेषता है कि इसमें शब्द के प्रत्यय, उपसर्ग आदि से कई रूप नहीं बनते। शब्द हमेशा अपने मूल रूप में रहता है और हर नए व्याकरणिक अर्थ के लिए उसके नए शब्द का प्रयोग होता है। इस परिवार की भाषाओं में तान की विशेषता है, अर्थात शब्द में तान से अर्थ बदल जाता है।

इनके अतिरिक्त तीन अन्य भाषा परिवारों का भी उल्लेख किया जाता है।

8. **काकेशियन भाषा परिवार (Caucasian) :** इस परिवार की भाषाएँ पश्चिम एशिया के काकेशीय पर्वत शृंखला के पास है।

9. **अमेरिकी भाषाएँ :** इस परिवार में एज़्टेक (Aztec) आदि सैकड़ों भाषाएँ हैं, जो मूल अमेरिकी निवासियों द्वारा बोली जाती है। इन भाषाओं के विद्वान एस्किमो, एज़्टेक आदि छह उपवर्गों में बाँटते हैं।

यह वर्गीकरण केवल पारिवारिक संबंधों और विशेषताओं को समझने के लिए एक आधार है। इस वर्गीकरण में अनेक मत-मतांतर हैं, इसलिए कोई निर्णयात्मक स्थिति नहीं बताई जा सकती। कई भाषाओं को कई विद्वान किसी भी परिवार में नहीं रख पाते। उन्हें अलग ही भाषा परिवार मानते। मतभेदों के रहते हुए परिवार की संकल्पना विश्व की भाषाओं को समझने के लिए हमारे लिए उपयोगी है।

1.3 भारत के भाषा परिवार और प्रमुख भाषाएँ

यह हम पहले ही बता चुके हैं, कि भारत एक बहुभाषा-भाषी देश है जहाँ हमारी द्विभाषी/बहुभाषी प्रवृत्ति देश की एकता में सहायक रही है। 1961 की जनगणना के अनुसार देश में करीब 1652 भाषाएँ बोली जाती हैं जो मूल रूप से पाँच विभिन्न भाषा-परिवारों की हैं। ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक पद्धति के अनुसार भारत वर्ष में निम्नलिखित चार भाषा परिवार पाए जाते हैं :

1. आर्य भाषाएँ (भारोपीय परिवार)
2. द्रविड़ भाषाएँ (द्रविड़ परिवार)
3. मुंडा भाषाएँ (ऑस्ट्रो-एशियाई परिवार)
4. तिब्बत-बर्मी भाषाएँ (चीनी-तिब्बत परिवार)

हर भाषा परिवार के अंतर्गत कई-कई भाषाएँ, उप भाषाएँ एवं बोलियाँ आती हैं। यह कोई आवश्यक नहीं कि एक परिवार की सब भाषाएँ आपस में बोधगम्यता लिए हों। इस संदर्भ में तिब्बती-बर्मी भाषाएँ आपस में तनिक भी बोधगम्य नहीं हैं, परंतु आर्य-भाषाओं में आपसी बोधगम्यता काफ़ी अधिक मात्रा में हैं। यूँ देश का कोई भी राज्य एक भाषा परिवार या एक भाषा तक सीमित नहीं है, पर फिर भी मोटे रूप में इन चार भाषा परिवारों का भू-भाग कुछ-कुछ इस प्रकार है। उत्तर भारत, एवं मध्य भारत में आर्य भाषाएँ, दक्षिण में द्रविड़ भाषाएँ, झारखण्ड में मुण्डा भाषाएँ एवं उत्तर-पूर्वी सीमाओं पर तिब्बती-बर्मी भाषाएँ। कई भाषा वैज्ञानिक अंडमान-निकोबार में बोली जाने वाली भाषाओं को भी एक अलग भाषा परिवार मानते हैं हम इस उल्लेख के बाद स्थानाभाव के कारण अण्डमानी की विस्तृत चर्चा नहीं करेंगे। मेघालय में बोली जाने वाली 'खासी' भाषा एकमात्र ऑस्ट्रो-एशियाई भाषा-परिवार की भाषा है लेकिन मुण्डा वर्ग से इतर है। (देखिए मानचित्र 1 - भारत की भाषाओं का क्षेत्र पृष्ठ 10)। आर्य-भाषाओं में से एक भाषा जो 'सिंहली' के नाम से जानी जाती है श्रीलंका में बोली जाती है। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं देश का यह विभाजन बहुत सूक्ष्म रूप से नहीं किया गया है वरन् बृहत्तर भाषाओं की स्थिति को ध्यान में रखकर किया गया है। वास्तविकता तो यह है कि हर राज्य में कोई आर्य भाषा एवं द्रविड़ भाषा बोली जाती है। हाँ मुण्डा भाषाओं का क्षेत्र सीमित है। और यही स्थिति तिब्बत-बर्मी की है। यूँ हर भाषा-परिवार की अनेकानेक शाखाएँ हैं और प्रत्येक शाखा में कई-कई भाषाओं का समागम है, परंतु मोटे तौर पर भाषावैज्ञानिक इन भारतीय भाषाओं का वर्गीकृत विवरण-इस प्रकार देते हैं :

1. अण्डमानी :
   - लघुशाखा - जरावा, ओंमे, सैन्टीनली आदि।
   - बृहत शाखा - बाले, केदे, जुवोई, काटी बो आदि।
2. आर्य :
   - उत्तर-पश्चिमी शाखा - लहंदा, पंजाबी, मुल्तानी, सिंधी, कश्मीरी, नेपाली आदि।
   - दक्षिण-पश्चिमी शाखा - भीली, गुजराती, राजस्थानी आदि।
   - दक्षिणी शाखा - मराठी, कोंकणी, सिंहली, माल्दीवी आदि।
   - पूर्वी शाखा - असमिया, बंगाली, उड़िया आदि।
   - मध्य देशीय शाखा - हिंदी-उर्दू, मैथिली, भोजपुरी, अवधी आदि।

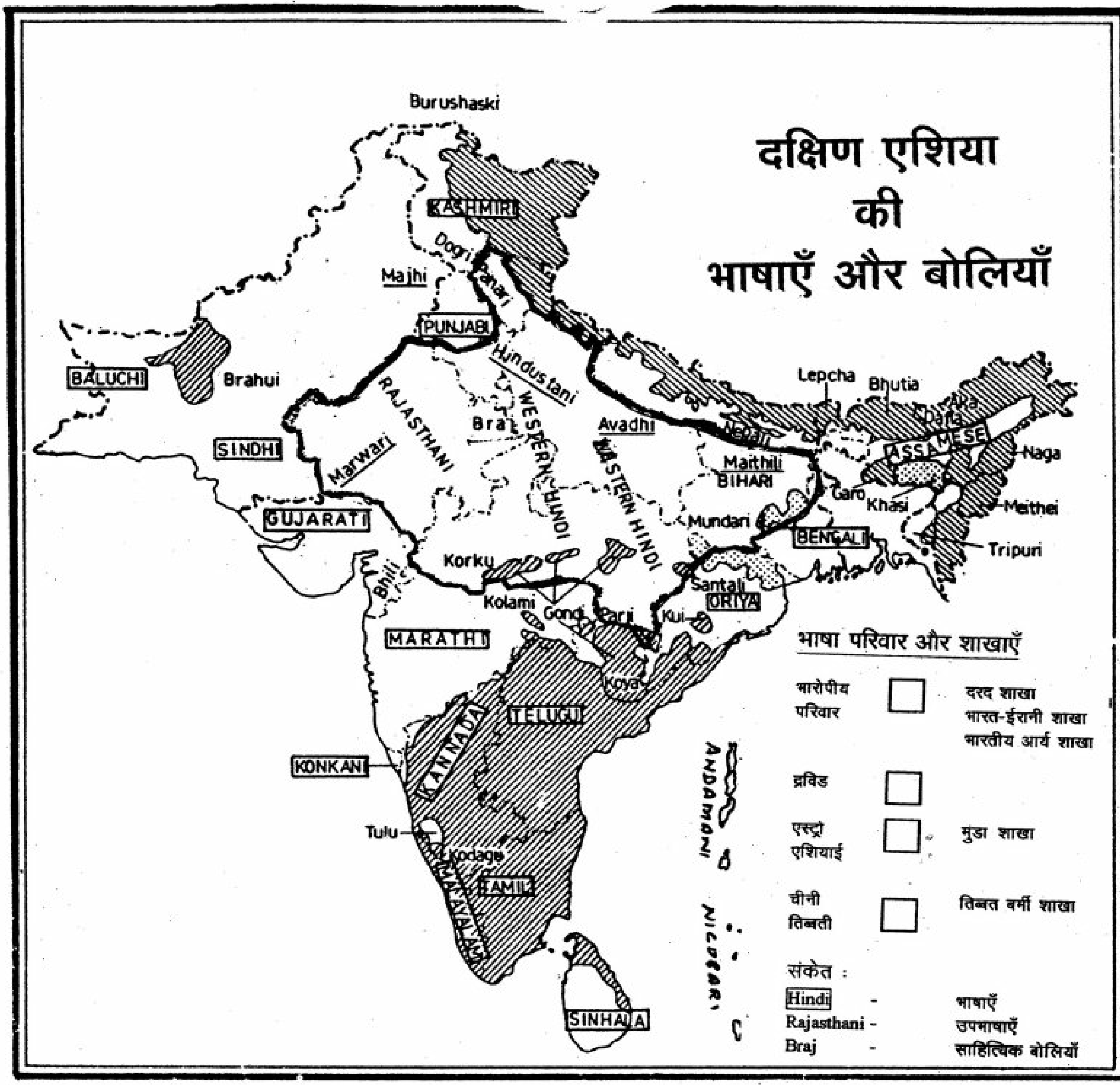

मानचित्र-1 : भारत की भाषाओं का क्षेत्र

Source : Anvita Abbi (1992), Reduplication in South Asian Languages : Allied Publishers, New Delhi

3. द्रविड़ :
- उत्तरी शाखा – कुडुख, माल्तो, ब्राहुई
- मध्य शाखा – तेलुगु, कुई-कुवी, गोण्डी, कोलामी, पारजी आदि।
- दक्षिणी शाखा – तमिल, मलयालम, कन्नड़, तुलु, तोड़ा, कोटा आदि।

4. ऑस्ट्रो-एशियाई :
- अ-मुंडा शाखा – खासी
- मुंडा शाखा – उत्तरी सन्थाली, मुण्डारी, हो आदि।
- मध्य शाखा – खड़िया, जुआंग, नहाली, आदि।
- दक्षिणी शाखा – सोरा, गताह, गोरूम, आदि।

5. तिब्बत-बर्मी :
- तिब्बती शाखा – बोदिक, नेवाड़ी, दियागरी, आदि।
- कुकी शाखा – तांगखुल, काबुल, मणिपुरी आदि।
- बर्मी शाखा – लोलो, होर, हसिया-हसिया आदि।

भारत की बहुभाषिता का प्रमाण है निम्नांकित तालिका जो 1961 की जनगणना के आधार पर दी गई है।

तालिका-1

परिवार	बोलने वालों की संख्या	प्रतिशत
आर्यकुल	32,17,20,700	73.30
द्रविड कुल	10,74,10,820	24.47
ऑस्ट्रिक कुल	61,92,495	1.05
भोटिया-बर्मी कुल	31,83,801	0.73
अन्य	4,29,102	0.45

भारत के संविधान के आठवें भाग में चार अध्याय हैं (अनुच्छेद 343-351) जो भारतीय-भाषाओं के राजनीतिक, प्रादेशिक एवं शैक्षिक अधिकारों की सूचना देते हैं। संविधान की इस अष्टम् सूची में भाषाओं का प्रावधान है। ये सभी हमारी राष्ट्रीय भाषाएँ हैं। 'हिन्दी (देवनागरी रूप में) को संघीय प्रशासन की मुख्य भाषा' और अंग्रेजी को 'सहभाषा' की पदवी से सजाया गया है। तालिका 2 में अष्टम सूची की भाषाएँ बोलने वालों की संख्या और प्रतिशत दिया गया है।

तालिका-2

अष्टम सूची में उल्लिखित भाषाओं के बोलने वाले

(1981 की जनगणना पर आधारित)

भाषा	बोलने वालों की संख्या	प्रतिशत
1. हिंदी	26,41,89,057	39.94
2. तेलुगु	5,42,26,227	8.20
3. बंगाली	5,15,03,085	7.79
4. मराठी	4,96,24,847	7.50
5. तमिल	4,47,30,847	6.76
6. उर्दू	3,63,23,282	5.34

7. गुजराती	3,31,89,039	5.02
8. कन्नड़	2,68,87,837	4.06
9. मलयालम	2,55,95,996	3.92
10. उड़िया	2,28,81,053	3.46
11. पंजाबी	1,85,88,400	2.81
12. कश्मीरी	31,74,684	0.48
13. सिंधी	19,46,278	0.29
14. असमिया	70,525*	0.01
15. संस्कृत	2,946	
16. कोंकणी	15,84,063	
17. गोरखाली (नेपाली)	12,52,444	
18. मणिपुरी	9,04,350	

* 1981 में आसाम में जनगणना पूर्ण नहीं हो पाई थी।

चूँकि कोंकणी, गोरखाली (नेपाली) एवं मणिपुरी (मैतई) 1992 में अष्टम् सूची में जोड़ी गईं, और 1991 की जनगणना के आँकड़े अभी तक सामने नहीं आए हैं, इन भाषाओं के बोलने वालों का प्रतिशत-योग नहीं मिल सका है।

1.3.1 हिंदी-उर्दू की स्थिति

यदि हम हिंदी-उर्दू को एक भाषा के दो स्वरूपों के रूप में देखें तो इस भाषा के बोलने वालों की संख्या 26,41,89,057 + 3,53,23,282 = 29,95,12,339 अर्थात कुल जनसंख्या का लगभग 45 प्रतिशत हो जाता है। इस योग में यदि हम उन अहिंदी भाषियों की संख्या जोड़ दें जो उर्दू-हिंदी का प्रयोग द्वितीय भाषा रूप में करते हैं। (सिंह एवं मनोहरन, 1993) तो हिंदी भाषी समाज की संख्या लगभग 57 प्रतिशत बैठेगी। यह संख्या उन लोगों की है जो हिंदी का प्रयोग वर्ग के भीतर संप्रेषण के लिए करते हैं। यही नहीं, देश के अधिकांश राज्यों में हिंदी-उर्दू का प्रयोग द्वितीय भाषा के रूप में होता है और इस प्रचार व्यवस्था में हमारी हिंदी फिल्मों का बहुत हाथ है। देखिए तालिका 3, देश का ऐसा कोई राज्य नहीं है जहाँ हिंदी-उर्दू बोली या समझी नहीं जाती हो। हर राज्य में अच्छी संख्या में ऐसे लोग अवश्य मिल जाएँगे जो हिंदी भाषी या हिंदी में दुभाषिये होंगे।

तालिका-3

क्रं. सं.	प्रदेश	राज्य भाषाएँ	अन्य प्रमुख भाषाएँ
1.	उत्तर प्रदेश	हिंदी-उर्दू	अंग्रेजी
2.	पंजाब	हिंदी-उर्दू पंजाबी	अंग्रेजी
3.	दिल्ली	हिंदी-उर्दू	अंग्रेजी, पंजाबी
4.	आंध्र प्रदेश	तेलुगु	हिंदी-उर्दू अंग्रेजी
5.	गुजरात	गुजराती	हिंदी-उर्दू अंग्रेजी
6.	केरल	मलयालम	अंग्रेजी, तमिल
7.	राजस्थान	राजस्थानी, हिंदी-उर्दू	भीली, पंजाबी

8.	जम्मू और कश्मीर	आसान उर्दू	पंजाबी, हिंदी-उर्दू, पहाड़ी, राजस्थानी
9.	महाराष्ट्र	मराठी	हिंदी-उर्दू, गुजराती, अंग्रेजी, कन्नड़
10.	तमिलनाडु	तमिल	तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड़, हिंदी-उर्दू
11.	उड़ीसा	उड़िया	हिंदी-उर्दू, कूर्क, तेलुगु, संथाली, नेपाली
12.	बिहार	हिंदी-उर्दू	भोजपुरी, मैथिली, मगही, संथाली, नेपाली
13.	मध्यप्रदेश	हिंदी-उर्दू	छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी, मराठी, गौंडी-भीली
14.	कर्नाटक	कन्नड़	तेलुगु, हिंदी-उर्दू, मराठी, तमिल, तुलु, कोंकणी
15.	असम	असमिया	बंगाली, हिंदी-उर्दू, खासी बोडो, गारो, अंग्रेजी

हाल में किए गए शोध (भारत का जन-मानस:सिंह एवं मनोहरन 1993) से ज्ञात होता है कि देश की सब भाषाओं में से हिंदी ही एक ऐसी भाषा है जिसके अंतर्गत सबसे अधिक संख्या में बोलियाँ और उपभाषाएँ समाहित हैं। देखिए तालिका 4. ये आंकड़े देश के 4536* समुदायों (Communities) पर आधारित हैं।

तालिका 4 : (भारत का 'जनमानस' शोध पर आधारित)

भाषा	बोलने वाले समुदायों की संख्या
हिंदी भाषा	1288
अवधी	04
भोजपुरी	12
ब्रज-भाषा	04
बुंदेली	05
चम्बियाली	03
छत्तीसगढ़ी	17
धुँधारी	04
गढ़वाली	01
गूजरी	01
हड़ौती	01
हरियाणवी	15
हिंदी	1025
कांडी	15
खड़ी बोली	02
कुड़माली	09
कुमाँउनी	03
मगही	25

मैथिली	21
मालवी	06
मण्डियाली	04
मारवाड़ी	38
मेवाड़ी	23
नागापुरी	01
निमाड़ी	06
पहाड़ी	14
पंचपरगनिया	02
राजस्थानी	07
सदरी/सदनी	20
उर्दू भाषा	126

* शोधकर्ताओं ने सम्पूर्ण देश को 4536 समुदायों (Communities) में बाँटा, जिनमें कुल 2198 समुदाय ही प्रमुख माने गए।

तालिका 4 से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि संविधान में जिस हिंदी की बात की गई है वह कई उपभाषाओं एवं बोलियों का समागम रूप है। यूँ अपने आप में हिंदी बोलने वाले समुदाय 1025 हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि चूँकि 'हिंदी' के अंतर्गत 28 उप भाषाओं/बोलियों का समागम है, कुछ भाषावैज्ञानिक हिंदी को अनेक भाषाओं/बोलियों का 'समूह' मानते हैं। यदि हम इसमें उर्दू भी जोड़ दें क्योंकि मौखिक सम्प्रेषण के धरातल पर उर्दू और हिंदी में संपूर्ण बोधगम्यता है तो 1288 + 126 = 2114 समुदाय (Communities) इस भाषा को बोलने-समझने वाले होंगे। देश की जनसंख्या का एक बड़ा भाग परस्पर समुदायों (intra community) में एवं अपने समुदाय के भीतर (inter community) संप्रेषण के लिए हिंदी-उर्दू का प्रयोग करता है। श्रीवास्तव के शब्दों में पाँच हजार पाँच सौ साल से आबाद, पन्द्रह (अब अट्ठारह) प्रमुख राष्ट्रीय स्तर की भाषाओं के साथ अस्मिता जोड़ने वाला, 1952 मातृ भाषाओं और स्कूल में अपनाई जाने वाली 67 शैक्षिक भाषाओं वाला यह देश निश्चय ही भाषा अध्येताओं, शिक्षा विदों और नीति-निर्धारण करने वाले राजनीतिज्ञों के लिए एक चुनौती बन रहा है।

1.3.2 भारतीय भाषा स्थिति का आकलन

भारत की भाषाई स्थिति का जो खाका उभर कर सामने आता है, उसके निम्नलिखित प्रमुख लक्षण हैं (श्रीवास्तव 1994 : 278)।

1. भारत की विभिन्न जनभाषाएँ प्रमुखतः चार भाषायी कुल के अंतर्गत हैं - आर्यकुल, द्रविड कुल, ऑस्ट्रिक कुल और भोट-बर्मी (तिब्बत-बर्मी) कुल, जिनके बोलने वालों की संख्या अपने योग में 99.55 प्रतिशत है।

2. चार भाषायी कुलों में दो परिवार (आर्य और द्रविड़) अपनी आबादी में कुल जनसंख्या के 97.7 प्रतिशत हैं।

3. अष्टम सूची में मान्य अट्ठारह भाषाओं (हिंदी, तेलुगु, मराठी, बंगाली, तमिल, उर्दू, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, उड़िया, पंजाबी, आसामी, कश्मीरी, सिंधी, कोंकणी, मणिपुरी, नेपाली और संस्कृत) के बोलने वालों की संख्या भारत की कुल आबादी का 93 प्रतिशत है।

4. ऐसी केवल 204 बोलियाँ (12 प्रतिशत) ही हैं, जिनके मातृभाषी दस हजार या उससे ऊपर की संख्या में हैं। एक हजार से कम बोलने वालों की बोलियों की संख्या 1,428 (कुल भाषाओं का 75

प्रतिशत है। इससे यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि भारत में ऐसी बोलियाँ अनेक हैं जिनके बोलने वाले कबीलों के रूप में अपनी निश्चित अस्मिता बनाए हुए हैं और अभी भारत की मुख्य सम्प्रेषण-व्यवस्था के साथ जुड़ नहीं पाए हैं।

5. भारत की सभी प्रमुख भाषाएँ अपने स्वयं के भू-भाग के बाहर भी बोली और समझी जाती हैं। अपने भू-भाग से उखड़े हुए ऐसे व्यक्ति अपने घरेलू जीवन में तो अपनी मातृभाषा का प्रयोग करते हैं, पर अपने बाह्य व्यवहार में प्रमुख स्थानिक भाषा का प्रयोग भी करते देखे जाते हैं। यह स्थिति उन्हें द्विभाषिक बनने के लिए बाध्य करती है, जिसे वे सहज रूप में स्वीकार करते पाए जाते हैं।

6. प्रशासनिक सुविधा के लिए विभिन्न प्रदेशों को एक भाषिक या द्विभाषिक भले ही घोषित कर दिया गया हो, पर अपनी प्रकृति में वे बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक हैं।

7. विभिन्न प्रदेशों की सीमा-क्षेत्र वस्तुतः विसरण (डिफ्यूजन) क्षेत्र हैं। यहाँ विभिन्न भाषायी परिवारों की विभिन्न भाषाएँ सम्पर्क की विभिन्न स्थितियों में देखने को मिलती हैं। भाषा-मिश्रण और भाषा परिवर्तन इन सीमावर्ती विसरण-क्षेत्रों की अपनी विशेषताएँ हैं यही कारण है कि अगर हम प्रदेशों की राजनीतिक सीमा को भाषायी सिद्धांत के आधार पर निर्धारित करना चाहें तो ऐसे कई क्षेत्र हैं, का सामना करना पड़ेगा जिन्हें हम किसी एक या द्विभाषी क्षेत्र के भीतर समेटने में किसी प्रकार सफल नहीं हो सकते (भारत सरकार, 1973)।

इस सूची में निम्न तथ्य जोड़ देना आवश्यक है:

8. भारतीय संविधान के अनुसार यद्यपि हिंदी बोलने वालों का राज्य उत्तर प्रदेश एवं उर्दू बोलने वालों का राज्य जम्मू व कश्मीर माना गया है, उर्दू अपने तथाकथित राज्य में न बोली जाती है और न ही सरकारी क्षेत्रों में प्रयुक्त होती है। उर्दू का बोली-स्थान हिंदी से भिन्न नहीं हैं। इन दो भाषाओं को अलग-अलग करके देखने में मात्र राजनीतिक हस्तक्षेप है। अतः जम्मू-कश्मीर में उर्दू एक सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है, जिसको हिंदी से भिन्न नहीं माना जा सकता है।

1.4 आर्य भाषा परिवार

संविधान में इन भाषा-परिवारों की अधिकाधिक भाषाओं का समागम है। संस्कृत, हिंदी, पंजाबी, डोगरी, गुजराती, मराठी, कोंकणी, बंगाली, असमिया, सिंहली (श्रीलंका में बोली जाने वाली) आदि भाषाएँ इस परिवार की सदस्य हैं एवं देश के खासे बड़े भू-भाग में बोली जाती हैं। यूँ हर भाषा अपने-आप में विशेष व्याकरणिक विशेषताएँ लिए हुए है, परंतु कुछ ऐसी भी विशेषताएँ हैं जो इन भाषाओं को एक में बाँधती हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण हम जान पाते हैं कि अमुक भाषा द्रविड़-परिवार की है या मुण्डा परिवार की। आइए देखें इन विशेषताओं को। सर्वप्रथम यह बता देना आवश्यक होगा कि जॉन बीम्स ने 'भारतीय आर्य भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण' नामक तीन भाग 1872, 1875 एवं 1879 में क्रमशः प्रकाशित किए। प्रथम भाग में लम्बी भूमिका के साथ-साथ ध्वनि अवलोकन है, दूसरे भाग में संज्ञा तथा सर्वनाम एवं तीसरे भाग में क्रिया का विवेचन है। इस विशालकाय व्याकरण की टक्कर का व्याकरण अभी तक दूसरा सामने नहीं आया है। बीम्स के अतिरिक्त जार्ज अब्राहम ग्रीयरसन ने 1921 में 'भारतीय भाषाओं का सर्वे' नामक 11 भागों का ग्रन्थ तैयार किया जो अब भी अद्वितीय माना जाता है। यही एक मात्र ग्रन्थ है जिसमें भारतवर्ष में बोली जाने वाली हर भाषा की सोदाहरण व्याख्या एवं व्याकरण दिया गया है। आरंभ में बहुत विस्तृत और विद्वत्तापूर्ण भूमिका है, जिसमें भारतीय आर्य भाषाओं का प्रामाणिक इतिहास है। इसके अतिरिक्त सर राल्फ टरनर का वृहत् कोश जो भारत की प्रमुख आर्य-भाषाओं में प्रयुक्त शब्दों का व्युत्पत्ति-कोश है (1966) तुलनात्मक अध्ययन के लिए बेजोड़ है। इसके अतिरिक्त आर्य परिवार की अलग-अलग भाषाओं पर भी बृहद कार्य हुआ है। आर्य भाषाओं के विषय में हम तीन आयामों में पढ़ेंगे।

1. ध्वनि व्यवस्था

2. रूप व्यस्था एवं शब्द-संरचना व्यवस्था

3. वाक्य विन्यास।

1.4.1 ध्वनि व्यवस्था

(क) स्वर

(i) प्राय: सभी आर्य भाषाएँ स्वरों में भेद, मात्रा की अपेक्षा उनके उच्चारण-स्थान के आधार पर करती है। अत: अ और आ, इ और ई, उ और ऊ, ए और ऐ एवं ओ और औ में जो भेद है वह मूल रूप से उनके भिन्न-भिन्न उच्चारण स्थान से है। (यह बात द्रविड़ भाषाओं पर कम लागू होती है)।

(ii) प्राय: सभी स्वर मौखिक एवं अनुनासिक - दो प्रकारों में मिलते हैं। अत: आ : आँ (खास : खाँस), ई : ईं (कही : कहीं), ऊ : ऊँ (ऊख : ऊँख), आदि। अनुनासिकता आर्य भाषाओं की ऐसी विशेषता है जिसे गैर-आर्य भाषी को सीखते-सीखते काफी समय लग जाता है। अनुनासिकता ही एक ऐसी विशेषता है जो मोटे तौर पर देश को उत्तर एवं दक्षिण में विभाजित करती है। देखिए मानचित्र संख्या 2.

(ख) व्यंजन

(i) आर्य भाषाएँ व्यंजनों में चौमुखी भेद करती हैं।

घोष : अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण।

	अघोष	घोष
अल्पप्राण	क, च, त, प	ग, ज, द, ब,
महाप्राण	ख, छ, थ, फ	घ, झ, ध, भ

कुछ भाषाएँ जैसे पंजाबी, सिंधी इसका अपवाद हैं जहाँ घोष महाप्राण व्यंजनों की अपेक्षा क्रमश अघोष अल्पप्राण एवं घोष (implosives) (अंत: स्फोटी व्यंजन) पाए जाते हैं। घोष-महाप्राण ध्वनियाँ आर्य भाषाओं को गैर आर्य भाषाओं से अलग करती है।

(ii) स्पर्श संघर्षी एवं शुद्ध संघर्षी व्यंजनों की बहुलता - च, छ, ज, एवं फ़, झ, ज़, श, स, ह, त्स, त्छ (मराठी एवं कोंकाणी में) और उनके घोष रूप दज, दझ आदि।

(iii) नासिक्य, पार्श्विक एवं लुण्ठित व्यंजन महाप्राण की स्थिति में भी उपलब्ध होते हैं।

उदाहरणत:

कान्हा /न्ह/ हिंदी

कुम्हार /म्ह/ हिंदी

दूल्हा /ल्ह/ हिंदी

हरर्ह /र्ह/ अवधी (हि. 'अरहर')

1.4.2 रूप व्यवस्था एवं शब्द रचना

(i) लगभग सब की सब आर्य भाषाएँ विभक्ति प्रधान (Inflecting) भाषाएँ हैं। अर्थात् प्रत्यय, (परसर्ग एवं उपसर्ग) शब्दों में कुछ इस प्रकार घुल मिल जाते हैं कि हर एक प्रत्यय को पृथक करके उसकी व्याकरणिक इकाई निर्धारित करना सरल नहीं होता। यही नहीं, प्रत्यय शब्दों का रूप भी परिवर्तित हो जाता है। उदाहरणतया हिंदी के शब्द 'लड़कियों' को देखिए। इस शब्द में स्त्रीलिंग, बहुवचन एवं तिर्यक चिहन तीनों को अलग-अलग करना कठिन है। यही नहीं मूल रूप 'लड़की' में जो दीर्घ स्वर 'ई' है वह भी बहुवचन में 'इ' (हस्व) में परिवर्तित हो जाता है। रूप परिवर्तन का श्रेष्ठ उदाहरण है जाना : गया (भूतकाल) जहाँ दो संबंधित रूपों में कोई भी समानता नहीं है। विभक्ति प्रधान भाषाओं में portmanteau morphs की भी बहुलता होती है। अत: 'खाएगी' शब्द में 'गी' एक साथ कई व्याकरणिक सूचना दे रहा है - जैसे कि वचन (एक वचन), लिंग (स्त्रीलिंग),

एवं काल (भविष्य)। अतः 'गी' को तीन भागों में अलग-अलग काट कर नहीं देखा जा सकता। इसके अतिरिक्त संधियों की बहुलता ही आर्य भाषाओं की विशेषता हैं।

(ii) सामान्यतः आर्य भाषाओं में चार भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्द पाए जाते हैं : तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी। तत्सम शब्द वे हैं जो संस्कृत से आए हैं, और जिन्हें बिना किसी परिवर्तन के स्वीकार का लिया गया है। उदाहरणतः कक्ष, अरुण (हि.) संस्कार, भीषण (बंगला), स्वभाव, शींग (कोंकणी) आदि। तद्भव वे शब्द हैं जिनका उद्‌गम तो संस्कृत है पर वे अब अपने मूल रूप में न होकर परिवर्तित रूप में पाए जाते हैं। उदाहरण के तौर पर हिंदी शब्द 'हाथ' संस्कृत के 'हस्त' से बना है। उसी प्रकार पंजाबी (वेखणा) संस्कृत के 'वीक्ष' से बना है या फिर 'खेत' शब्द जोकि अधिकांश आर्य भाषाओं में पाया जाता है, संस्कृत के 'क्षेत्र' शब्द का रूप-परिवर्तित शब्द है। विदेशी शब्दों को दो कोटियों में रखा जा सकता है : (क) मुसलमानी प्रभाव युक्त शब्द (अरबी, फारसी, तुर्की एवं पश्तो), (ख) यूरोपीय प्रभाव युक्त शब्द (पुर्तगाली, फ्रांसीसी, अंग्रेजी)। अतः 'कुर्सी', 'शीशा', 'दीवार', 'दवा' (फारसी), 'कसूर', 'किस्मत' (अरबी), 'बीबी', 'लाश' (तुर्की), 'पटाखा', 'भड़ास' एवं 'गुण्डा' (पश्तो) जैसे शब्दी ग्यारहवीं शताब्दी से हमारी आर्य भाषाओं में निरंतर प्रवेश पर रहे हैं। 17वीं शताब्दी से पुर्तगाली, फ्रांसीसी एवं अंग्रेजी भाषाओं का प्रभाव आर्य भाषाओं पर पड़ा एवं इन भाषाओं के शब्द अधिकाधिक मात्रा में आर्य-भाषाओं में समाने लगे। उदाहरणतः 'अलमारी', 'गोभी', 'मेज़' (पुर्तगाली), 'कूपन', 'रेस्टोरेंट (फ्रांसीसी)', 'तुरुप', 'बम' (डच), 'बटन', 'टैक्सी', 'रेडियो' (अंग्रेजी)। यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारत की अन्य भाषाओं में भी यूरोपीय शब्दों की खासतौर से अंग्रेजी शब्दों की बहुलता है। देशज शब्द या तो वे हैं जो देश की अन्य भाषाओं से आए हैं 'मोर', 'ओखली', 'घोड़ा' आदि या फिर वे जो 'आधुनिक समय की बोलचाल में स्वतः विकसित हुए हैं' (बाबूराम सक्सेना)। उदाहरणतः 'पेड़', 'गड़गड़', 'ठंडाई', 'फटफटिया' आदि।

(iii) सामान्यतः आर्य भाषाओं में दो वचन (एक एवं बहुवचन) एवं दो लिंगों का प्रावधान है (कोंकणी, गुजराती एवं मराठी अपवाद है)। यहीं नहीं विशेषण भी विशेष्य के अनुसार रूप परिवर्तित कर लेता है। अतः हिंदी में अच्छा + आ लड़क + आ पर अच्छा + ई लड़क + ई। जब विशेष्य बहुवचन में होता है तो विशेषण भी अनुरूपी हो जाता है,

अतः पंजाबी में:		हिंदी में
वड्ड + आ	मुण्ड + आ	'बड़ा लड़का'
वड्ड + ई	कुड़ + ई	'बड़ी लड़की'
वड्ड + ए	मुण्ड + ए	'बड़े लड़के'
वड्ड + इयाँ	कुड़ + इयाँ	'बड़ी लड़कियाँ'

स्पस्ट है कि पंजाबी की भाँति हिंदी विशेषण में बहुवचन भेदक नहीं है। अतः एक वचन में भी 'बड़ी' एवं बहुवचन में 'बड़ी'। कोंकणी में स्त्रीलिंग, पुल्लिंग एवं नपुंसकलिंग विशेष्य के अनुसार रूप परिवर्तन कर लेता है।

(iv) सर्वनामों की शृंखला तिर्यक रूप में एवं सरल (non oblique) रूप में भिन्न-भिन्न रूपों में होती है।

उदाहरण : हिंदी कर्ता : मैं, तुम, वो - सरल रूप

मुझ, तुझ, उस - तिर्यक रूप

यही स्थिति संज्ञाओं की है। हर आकारांत पुल्लिंग तिर्यक रूप में 'ए' ध्वनि लिए होता है। अतः लड़का पर लड़के (को/से आदि)। कमरा पर कमरे में (आ > ए)।

1.4.3 वाक्य विन्यास

यूँ तो 'वाक्य विन्यास' पर काफ़ी कुछ जा सकता है परंतु हम यहाँ संक्षेप में वही सिद्धांत लेंगे जिसकी चर्चा एवं एवं शोध सम्प्रति विश्वभर में हो रही है। 1966 में जोसेफ़ ग्रीनबर्ग विश्व की करीब 68

भाषाओं पर काम करके इस नतीजे पर पहुँचे थे कि यदि भाषाएँ मुख्य रूप से sov (कर्ता, कम, क्रिया) भाषाएँ हो तो उनमें कुछ खास विशेषताएँ होना आवश्यक है। उन्होंने इन विशेषताओं को Universals (सार्वभौमिक/सार्वभाषिक लक्षण) का नाम दिया है। आइए देखें आर्य-भाषाओं में कितने Universals (सार्वभाषिक लक्षण) हैं।

(क) शब्द क्रम/शृंखला word order - वाक्य में शब्दों की शृंखला कर्ता-कर्म-क्रिया के क्रम में होती है। उदाहरण हि. राम मूँगफली खाता है (कर्ता + कर्म + क्रिया) प्रश्नवाचक वाक्यों में प्रश्नसूचक शब्द की स्थिति निर्धारित नहीं होती। किस शब्द पर जोर दिया जा रहा है, उस पर निर्भर करता है। अत: उपर्युक्त वाक्य प्रश्न सूचक शब्द के साथ इस प्रकार से भी बोला जा सकता है।

(i) क्या राम मूँगफली खाता है?

(ii) राम क्या मूँगफली खाता है?

(iii) राम मूँगफली खाता है क्या?

रेखांकित शब्द ही प्रश्नसूचक चिह्न के दायरे में हैं। यही स्थिति लगभग अन्य आर्य भाषाओं की है।

दूसरी बात, विशेषण विशेष्य के पहले आता है जैसे, वे दो रौबदार, पगड़ी-बाँधे डाकू ....। रेखांकित शब्द विशेषण हैं जिनका विशेष्य विशेषणों के अंत में आता है। यही बात संबंध कारक वाक्यों की है। बंगला रामेर बोई 'राम की किताब', पंजाबी पुत्तर दा कोट 'बेटे का कोट'। रेखांकित शब्द जो बाद में आने वाले संज्ञा शब्द से संबंध बतला रहे हैं विशेषण की भांति है अत: विशेष्य के पहले आते हैं और एक बात। संबंध वाचक उपवाक्य संज्ञा से पहले लगता है क्योंकि वह उसका विशेषण है। यही नहीं उपवाक्य में Correlative 'वो' (जो कि लगभग सभी आर्य भाषाओं में तृतीय पुरुष एकवचन सर्वनाम चिह्न) पहले लगता है। अत: हिंदी में ध्यान दें : जो लड़का कल आया था वो मेरे भाई का दोस्त है।

तीसरी बात, क्रिया पद यूँ तो वाक्य के अंत में आता है परंतु सहायक क्रिया मुख्य क्रिया के भी बाद आती है अत: बंगला : शे रान्ना कोरे छे (उसने खाना बनाया है)।

अंत में सबसे मुख्य बात SOV भाषाओं में कारक चिह्न परसर्ग संज्ञा के बाद लगते हैं पहले नहीं। उदाहरण: हिं : किताब में, बंगला : घौर - ए 'घर में' पं. रोटी ते (रोटी पर) आदि। तुलना कीजिए अंग्रेजी से जहां कारक चिह्न संज्ञा के पहले लगते हैं अंत: In the book, In the house, On the bread आदि।

चूँकि आर्य भाषाओं में संज्ञा बाद में और उसके अनेकानेक विशेषण संज्ञा के पहले आते हैं, इन भाषाओं को Head final (शीर्षान्त भाषाएँ) कहा जाता है।

चलते-चलते एक बात बता दें कि कश्मीरी भाषा यूँ तो आर्य-भाषा है पर इसमें कर्ता-क्रिया का क्रम कर्ता-क्रिया-कर्म (अंग्रेजी की भांति) के अनुसार है।

उदाहरण के लिए:

कश्मीरी :	1.	तेमीस	पाजी	गासून	वान
		उस-को	चाहिए	जाना	अब
		'उसको अब जाना चाहिए'			
	2.	तेमी-स	एहु	सैथा	पास
		उस-को/के पास	है	काफी	पैसा
		'उसके पास काफी पैसा है।'			

1.5 द्रविड़ परिवार

यह माना जाता है कि द्रविड़ परिवार भारतवर्ष में आर्य-परिवार के आगमन से पहले भी यहाँ मौजूद था और द्रविड़ जातियाँ भी आर्यों की भांति देश के उत्तर-पश्चिम दिशा से आई थी। इस बात का प्रमाण है ब्राहुई भाषा जो है तो द्रविड़ पर आज भी ईरान में बोली जाती है। यही नहीं द्रविड़ भाषाओं का प्रभुत्व उत्तर एवं मध्य भारत में था पर धीरे-धीरे आर्यों के दबाव में आकर यह जाति नीचे की ओर खिसकती गई। तदुपरांत आज मुख्य रूप से भारत के दक्षिण में बोली जाने वाली अधिकतर भाषाएँ इसी परिवार की हैं। हाँ, झारखण्ड में दो द्रविड़ भाषाएँ कुडुख एवं माल्तो बिहारी एवं अन्य आर्य भाषाओं से इस तरह घिरी हुई हैं। जैसे ताल के बीचों-बीच एक तैरती नौका। यही नहीं, श्रीलंका, जो मुख्यतः सिंहली नामक आर्य-भाषा प्रधान देश मानी जाती है, उसके उत्तरी भूभाग में द्रविड़ भाषा तमिल का बोलबाला है। द्रविड़ भाषाओं पर अब तक काफी काम हो चुका है जिसमें सबसे प्रमुख है राबर्ट काल्डवैल का तुलनात्मक व्याकरण (A Comparative Grammar of Dravidian or South Indian Family of Languages) जो 1856 में प्रकाशित हुआ था। इसके अतिरिक्त एम.बी. एमनो का कोलामी, नाइकी, पारजी एवं उल्लारी भाषाओं पर किया गया कार्य (1955), आन्द्रोनोव का द्रविड़ एवं आर्य भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन (1963), भ. कृष्णामूर्ति का तेलुगु एवं कुई-कुवी का 'मध्य द्रविड भाषाओं' में स्थापना (1961) एवं इन्हीं का वृहद् एवं सम्पूर्ण तेलुगु क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन (1961) उल्लेखनीय शोध है। द्रविड़-भाषा परिवार की आदिवासी भाषाओं पर भी काफी मात्रा में शोध हो चुका है। अतः आज द्रविड़ भाषा परिवार के बारे में हमारी जानकारी पर्याप्त न भी हो, पर अधूरी भी नहीं है। आइए देखें इस परिवार की भाषाओं की प्रमुख व्याकरणिक विशेषताएँ क्या हैं।

1.5.1 ध्वनि व्यवस्था

(क) स्वर : द्रविड़ भाषाओं में ह्रस्व एवं दीर्घ स्वरों का वैषम्य पाया जाता है। अतः आधुनिक द्रविड़ भाषाओं में ए एः, ओ ओः, भेदक हैं।

(ख) व्यंजन : मूर्धन्य पार्श्विक (retroflex lateral) द्रविड़ भाषाओं की सामान्य प्रकृति है। तमिल में मूर्धन्य अर्ध-व्यंजन (reltrolex approximant) जो 'द्रविड़मुनेत्रकपगम' शब्द में भी है, विशेषकर प्रयोग होता है। अनुनासिकता एवं घोष महाप्राण व्यंजनों को अभाव है। उत्तरी द्रविड़ में x, q, एवं ? की प्रचुरता है। कुछ द्रविड़ भाषाओं में नासिक्य ध्वनियाँ दन्त्य एवं वर्त्स्य में भेद करती हैं जैसे मलयालम एवं तमिल। देखिए मानचित्र सं. 2.(पृष्ठ 20)

1.5.2 रूप व्यवस्था एवं शब्द रचना

यह कहा जाता है कि इस भाषाओं की रूप व्यवस्था काफी पारदर्शी है क्योंकि इन भाषाओं की प्रवृत्ति योगात्मक हैं व ये परसर्ग प्रधान भाषाएँ हैं अर्थात् शब्द को आसानी से भिन्न-भिन्न व्याकरणिक इकाइयों में तोड़कर समझा जा सकता है। इनकी विशेषताएँ हैं :

(i) संज्ञा-पद एवं क्रिया-पद कई प्रकार की व्याकरणिक सूचनाओं से ओत-प्रोत होने के कारण मिश्रित रूप में पाए जाते हैं। तमिल : अवन् (अं + अन्) 'वह आदमी', अवळ-वह औरत।

(ii) लिंग दो प्रकार का होता है : सजीव व निर्जीव। सजीव कभी-कभी कुछ-कुछ भाषाओं में पुल्लिंग या स्त्रीलिंग या आदरणीय में विभाजित हो जाता है। तेलगु में स्त्रीलिंग यूँ तो नदारद है अतः एकवचन स्त्रीलिंग संज्ञा 'निर्जीव एकवचन' की भांति एवं बहुवचन स्त्रीलिंग संज्ञा सजीव बहुवचन की भांति प्रयोग में आती है।

(iii) कारक चिह्न विभक्ति के रूप में न होकर परसर्ग के रूप में पाए जाते हैं।

(iv) प्रथम पुरुष बहुवचन सर्वनाम दो प्रकार के होते हैं। पहले तो वे जिनमें श्रोता के होने का भी बोध हो। दूसरे वे जिनमें मात्र वक्ता का होने का ही बोध हो। अतः तमिल नाम (= हम और आप) एवं नाड्.कळ (हम, पर आप नहीं)।

1.6.3 वाक्य विन्यास

(i) शब्द का क्रम आर्य भाषाओं के समान कर्ता-कर्म-क्रिया के अनुरूप है।

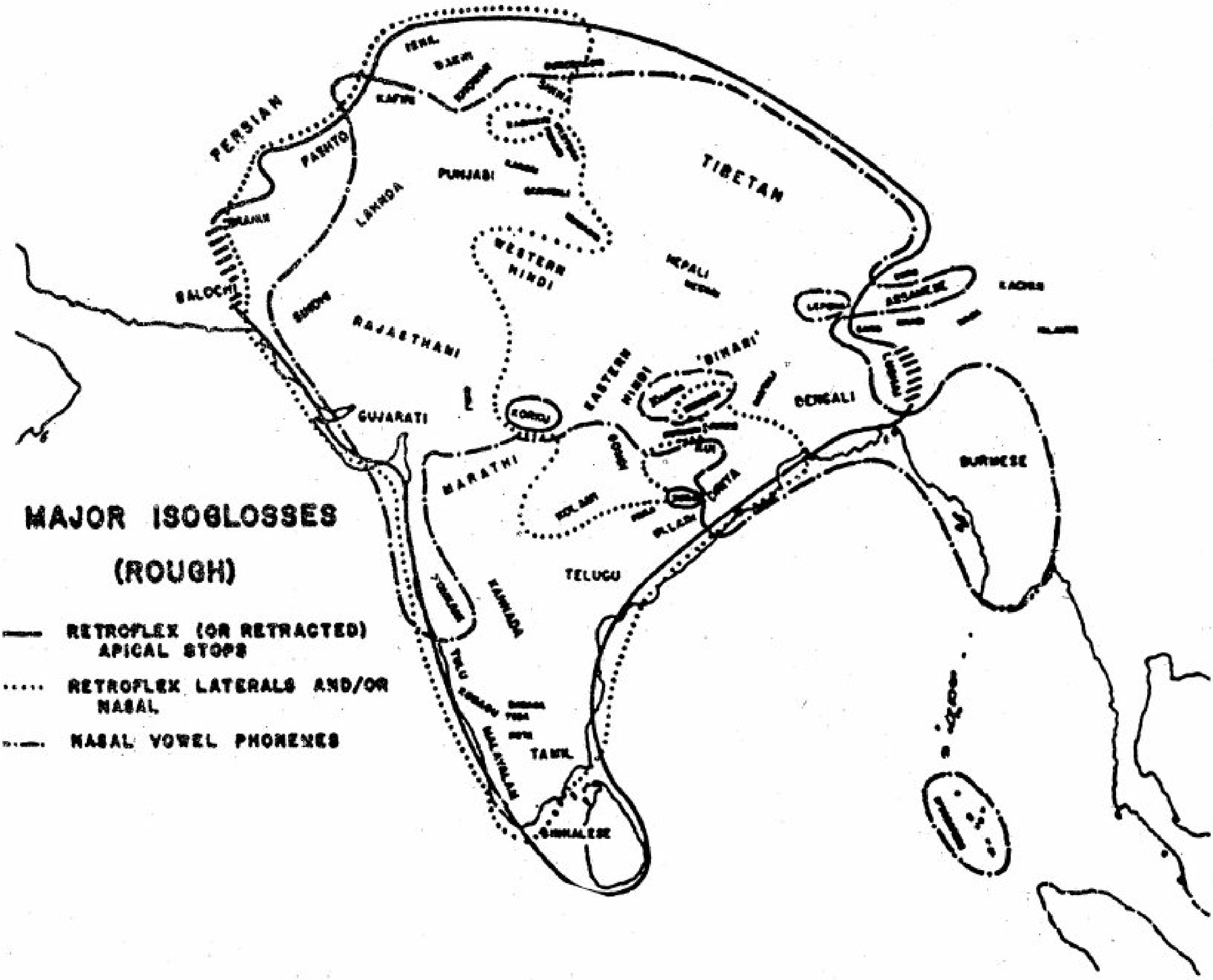

मानचित्र-2 : ध्वनि लक्षणों का वितरण

Source : A.K. Ramanujan & Colin Masia (1969). 'Towards a phonological typology of the Indian linguistic area' In Current Trends in Linguistics, Vol.5, T. Sebeok (Ed.)

(ii) संबंध वाचक उपवाक्य संबंध वाचक सर्वनामों का प्रयोग नहीं करते हैं अपितु कृदन्तपरक विशेषण एवं संज्ञाओं का प्रयोग करते हैं।

(iii) विरोधात्मक क्रिया विशेषण क्रिया का रूप लेते हैं। अत: किसी सामान्य क्रिया की भांति उनमें कर्ता, काल एवं पक्ष की अन्विति होती है। अत: तमिल में वर माट्टान् 'वह नहीं आएगा' पद में माट्टान् तीन व्याकरण्क इकाइयों के मेल से बना है। पहले तो निपेधात्मक 'नहीं' 'माट्टा', दूसरे यह सहायक क्रिया के समान है अत: वर 'आना' के निषेधात्मक भविष्य काल का द्योतक है, और तीसरे- अन् उत्तम पुरुष एकवचन का द्योतक है। इसीलिए इस शब्द का विभाजन माट्टा + अन् किया जा सकता है। तुलना कीजिए की यही वाक्य हिंदी में कितने भिन्न ढंग से गढ़ा गया है।

(iv) क्रिया विशेपण 'शीक्किरमाका' (शीघ्रम + आका) प्राय: संज्ञा शब्द + 'होना' क्रिया के मिश्रित रूप होते हैं। अत: 'जल्दी' क्रिया विशेषण वाक्य में 'जल्दी होना' प्रयोग होगा। इस पद में 'आका' का अर्थ 'होने' से है।

(v) यद्यपि शब्दों की शृंखला निश्चित है परंतु आर्य-भाषाओं की भांति कर्ता-कर्म का अदल-बदल संभव है। हाँ, क्रिया का स्थान सदैव वाक्य के अंत में ही निश्चित है। अत: (i) वाक्य (ii) एवं (iii) में बदला जा सकता है।

(i)	अवन	नेट्ट्ड	अवळइप	पार्तान
	उसने (पु.)	कल	उसको (स्त्री.)	देखा (पु.)

'उसने (पुल्लिंग)' उसको (स्त्रीलिंग) कल देखा' ये शृंखलाएँ भी संभव हैं।

(ii) 3 + 1 + 2 + 4

(iii) 2 + 1 + 3 + 4

(v) इन भाषाओं में, विशेष रूप में तमिल में एक वाक्य में एक ही विधेय क्रिया का प्रयोग हो सकता है। परिणामस्वरूप बाकी क्रियाएँ अ-विधेय क्रिया रूप ले लेती है। अत: मुख्य क्रिया के पहले वाले उपवाक्य भावार्थक संज्ञा, कृदंत क्रियाविशेषण (Adverbial Participle), एवं संबंधवाचक कृदंत क्रिया विशेषण से ओत-प्रोत होते हैं। अत: नीचे दिए गए वाक्य में वान्ता 'आया वाला' या फिर 'आये हुए' अर्थ में लिया जा सकता है।

(क)	नेट्टउ	वन्ता	ओरू	मन्तिरी
	कल	आए हुए	एक	मंत्री

'जो मंत्री कल आए थे।'

1.6 ऑस्ट्रो-एशियाई (मुण्डा) परिवार

हमारे देश की सबसे प्राचीन संस्कृति यदि आज तक कोई जीवित है तो वह है मुण्डा परिवार के रूप में। ऑस्ट्रो-एशियाई जातियाँ ही सही मायने में पूर्ण रूप से भारतीय हैं क्योंकि ये यहीं की जन्मी व पली जातियाँ हैं। बाकी सब जातियाँ जैसे कि द्रविड परिवार, आर्य-परिवार एवं तिब्बत-बर्मी परिवार की जातियाँ किसी न किसी काल में देश की सीमा के बाहर से आईं और फिर बाद में भारतवर्ष को उन्होंने अपना निवास-स्थान बना लिया। पर मुण्डा एवं अन्य संबंधित जातियाँ ही खास भारतीय हैं। कहा जाता है कि एक जमाने में इन जातियों का फैलाव सारे भारतवर्ष में था। भूमि से जुड़े रहने की प्रकृति एवं शांतिप्रियता के कारण यह जाति द्रविड़ एवं आर्यो के युद्ध में टिक नहीं पाई और यह परिवार सिमट कर मुख्य रूप से बिहार, बंगाल, उड़ीसा एवं मध्य प्रदेश के जंगलों एवं ग्रामों में (झारखंड) रह गया। हाँ, जैसे कि पहले बताया जा चुका है, इसकी एक उप शाखा मॉन ख्मेर नाम से जानी जाती है, जिसकी दो मात्र

भाषाएँ 'खासी' मेघालय में बोली जाती हैं एवं 'निकोबारा निकोबार' द्वीपों में। निकोबारी को मुण्डा और मॉन खमेर की कड़ी समझा जाता है।

दुर्भाग्यवश, जितनी ये भाषाएँ प्राचीन हैं उतना ही इन पर कम काम हुआ है। फिर भी यदि इस परिवार की भाषाओं की आपस में तुलना की जाए तो मुण्डा भाषाओं पर अधिक और 'खासी' एवं 'निकोबारी' पर बहुत ही कम शोध हुआ है। पिन्नो का 'The Position of the Munda Language within the Austro-Asiatic family (1963)' एवं 'मुण्डा भाषाओं में क्रिया का तुलनात्मक अध्ययन (1966)' विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त नार्मन ज़ाइड का 1966 का कार्य 'Studies in Comparative Austro Asiatic Linguistics' एवं मुण्डा एवं अ-मुण्डा भाषाएँ (1966) विशेष सारगर्भित शोध हैं। हाल ही में प्रकाशित अब्बी (1977) 'Language of Tribal and Indigenous People of Indian: The Ethnic Space' में अब्बी का खड़िया पर, भट्ट का मुण्डा भाषाओं की संज्ञा-क्रिया के अंतर पर, आ. जाइद का गोरूम पर, स्तारोस्ता का सोरा पर, ना. जाइद का गुतोब, रेमो एवं गताह पर, इश्तियाक का संथाली एवं मुण्डा पर, नागराजा एवं फिलिप्स का 'खासी' पर शोध विशेष चर्चित हो चुका है। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि सबसे पहले इन भाषाओं पर शोध जार्ज अ. ग्रियरसन ने ही किया था जिसका उल्लेख 'Linguistic Survey of India' के चौथे खण्ड में देखा जा सकता है। आइए देखें इस भाषा-परिवार की व्याकरणिक विशेषताएँ।

ध्वनि व्यवस्था

(क) यूँ मूर्धन्य इस परिवार की विशेषता नहीं है परंतु अन्य भारतीय भाषाओं के प्रभाव में आकर सोरा/सवारा को छोड़कर लगभग सभी भाषाओं में मूर्धन्य ध्वनियाँ पाई जाती है।

(ख) श्वासद्वारीय स्पर्श (Glottalized Stops) ध्वनियाँ प्राय: शब्दों के अंत में जुड़ती हैं। इसके अतिरिक्त प्राय: हरेक भाषा में श्वास द्वारीय स्पर्श ध्वनि प्रयोग होता है।

(ग) अनुनासिकता, ठीक आर्य भाषाओं की भांति स्वनिमात्मक है। अर्थात् मौखिक एवं नासिक्य स्वर अर्थ भेदक हैं।

(घ) स्वर-संगति (Vowle harmony) की प्रचुरता है। उदा. खड़िया में ज + ई + ब = जीब क्रिया 'क्रिया' ज + ई + न + ई + ब = जीनीव (संज्ञा) 'छूना', ज + ओ + ब = जोब क्रिया 'चूसना' > ज + ओ + न + ओ + ब = जोनोब (संज्ञा) 'चूसना'।

(ङ.) खासी में नासिका ध्वनियों की प्रचुरता विशेषकर कंठ्य (Velar) नासिक्य की। अत: फंड. 'खास', सिड.अऊ 'सुनना' एवं सिड.रड. 'पुरुष'।

रूप व्यवस्था एवं शब्द रचना

(क) इस परिवार की भाषाओं में शब्द व्याकरणिक इकाइयों को जोड़-जोड़कर बनते हैं। अत: भाषाएँ योगात्मक हैं। देखिए खड़िया का निम्नलिखित वाक्य जहाँ हर व्याकरणिक सूचना को अलग करके देखा जा सकता है :

बोर नोहन ला की माए

बोर - नोह - ना - ला - की - माए

माँग - खा - ना - भूत - सतत- अन्य पु. बहुवचन

वे 'माँग कर' (भीख माँग कर) खाया करते थे।

एक तरह से देखा जाए तो शब्द और वाक्य में भेद करना भी मुश्किल होता है क्योंकि पूरा का पूरा एक पद वाक्य या मिश्र शब्द की भाँति प्रतीत होता है।

(ख) इन भाषाओं में शब्द संरचना के लिए मध्य-प्रत्ययों का प्रयोग प्रचुरता से होता है। अत: खड़िया में

क्रिया		संज्ञा
जीव	>	जी - नी - ब 'स्पर्श'

जोब > जो - नो ब 'चूस'

जुड़ > जु - नु - ड़ 'पूछ'

कोल > को - नो - ल 'गिन'

(ग) लिंग का निर्धारण सजीव/निर्जीव के आधार पर होता, स्त्री/पुरुष के आधार पर नहीं।

(घ) वक्ता एवं संदर्भित व्यक्ति (या वस्तु) के बीच की दूरी के अनुसार संकेतवाचक सर्वनामों (demonstrative pronous) की प्रचुरता है। खड़िया में ग्यारह पुरुषवाचक सर्वनाम (Persnoal Pronouns) हैं।

(ड.) संस्कृत की भांति वचन तीन होते हैं - एक, द्वि एवं बहुवचन।

(च) कारक चिह्नों का अभाव है। पर उनके स्थान पर शब्दों की अदल-बदल से कारकीय संबंधों की सूचना मिलती है। अत: आर्य-भाषाओं की भांति पद-क्रम (Word order) अस्थिर (Free) नहीं हैं।

(छ) सबसे महत्पूर्ण बात यह है कि देश की ये ही भाषाएँ हैं जो पुनरुक्त शब्दों के माध्यम से नए शब्दों की उत्पत्ति करती है। पुनरुक्त शब्द (हर प्रकार के) इन भाषाओं में काफी मात्रा में मिलते हैं और पुनरुक्त शब्द व्यवस्था (reduplication process) इन भाषाओं की व्याकरणिक पद्धति का एक बहुत बड़ा एवं महत्वपूर्ण अंग है। उदाहरण के लिए देखिए खड़िया के कुछ शब्द :

आओं 'रहना' > आओं आओं कड़ 'निवासी'

तेर 'देना' > तेर तेर कड़' 'प्राप्त करने वाला'

डेल 'पहुँचना' > डेल डेल 'आगमन'

नोह 'खाना' (क्रि.) > नोह नोह 'भोजन'

वाक्य विन्यास

(क) इस परिवार की सभी भाषाएँ कर्ता-क्रिया-कर्म के शब्दक्रम का अनुसरण करती है पर पिछले कुछ. सौ सालों में आर्य भाषाओं के प्रभाव के कारण इनमें परिवर्तन आया है। हाँ, कुछेक वाक्य संरचनाओं में पहले वाला क्रम देखने को भी मिल जाता है। खासी अब भी SVO कोटि में है। देखिए :

ऊ:	लेज	शा	का	स्कूल
वो	जाता है	को	निश्चयवाचक	स्कूल

'वो स्कूल (को) जाता है' (का निश्चयावाचक है)

यही कारण है कि इन भाषाओं में क्रिया विशेषण वाक्यांत में आते हैं, अत:

ऊ:	ला	रोड.	या	का	<u>सोज</u>
वो	भूत	पकड़	कर्म को (स्त्री)	निश्चयवाचक	<u>जल्दी</u> से'

'उसने उसको (स्त्रीलिंग) ज़ल्दी से पकड़ लिया'

(ख) क्रिया के परसर्गों से नाना प्रकार के काल एवं पक्ष का बोध होता है। संथाली में 10 काल, 5 वृत्तियों, एवं 5 पक्षों का प्रावधान है। इन भाषाओं का वाक्य विन्यास काफी सरल एवं पारदर्शी होता है। सीखने की दृष्टि से इन भाषाओं को आसानी से सीखा जा सकता है।

1.7 तिब्बत-बर्मी परिवार

इस परिवार की भाषाओं की सबसे मुख्य विशेपता यह है कि वे आपस में बोधगम्य नहीं के बराबर हैं। यही नहीं, जितनी भाषाएँ एवं उपभाषाएँ एवं बोलियाँ इस परिवार में पाई जाती हैं उतनी कहीं और नहीं।

हमारे देश के उत्तर-पूर्वी भाग में बोली जाने वाली ये भाषाएँ शोध का विषय तो रही हैं पर देश के बाहर बोली जाने वाली भाषाओं पर अधिक काम हुआ है। सर्वप्रथम जार्ज ग्रियरसन ने ही इन भाषाओं पर कार्य किया, पर रॉबर्ट शेफर का 1955 में किया गया कार्य जिसमें उन्होंने पहली बार इस भाषाओं का वर्गीकरण किया, विशेष उल्लेखनीय है। बोडो, अंगामी, आओ, भोटिया, मेइति (मणिपुरी), लाहुली, किन्नोरी, डापला, काबुई, मीज़ो आदि भाषाओं पर स्वतंत्र भारत में काफी शोध हुआ है। आइए देखें इस परिवार की भाषाओं की व्याकरणिक विशेषताएँ।

ध्वनि व्यवस्था

(क) ये भाषाएँ तान भाषाएँ हैं (Tone Languages)। अत: विभिन्न प्रकार के तानों से शब्दों में भेद किया जा सकता है। उदाहरणतया देखिए तांड.खुल भाषा में एक ही शब्द विभिन्न तानों के कारण तीन भिन्न अर्थ दे रहा है :

कहुड. 'लाल' (उत्तान)

कहुड. 'सड़ा हुआ' (सम-तान)

कहुड. 'चूना' (नित्तान)

(ख) कंठस्थ स्पर्शों की प्रचुरता ही नहीं है वरन् वे अर्थ भेदक भी हैं। अत: मणिपुरी में मना का अर्थ है 'पत्ता' एवं /मड/ का अर्थ है 'पाँच', ना का अर्थ है 'कान' पर ड.।। का अर्थ है 'मछली'। उसी प्रकार लन 'धन', पर लड. 'धागा'।

(ग) स्वर गुच्छों की प्रचुरता भी दिखाई देती है। अत: मणिपुरी में मऊउन 'चमड़ी, त्वचा', आइन 'नियम', मरूओयो बअ - 'महत्वपूर्ण'।

(घ) घोष स्पर्शी व्यंजन शब्दांत में नहीं आते। यही नहीं, महाप्राण घोषी व्यंजन मात्र उधार लिए शब्दों में ही आते हैं।

रूप एवं शब्द रचना

(क) ये भाषाएँ अयोगात्मक एवं समावेशक (Analytic and Incorporating) प्रवृत्ति की भाषाएँ हैं। अत: शब्द एवं वाक्यों को बड़े करीने से छोटे-छोटे भागों में प्रत्येक व्याकरणिक इकाई के अनुसार तोड़ा जा सकता है। मुण्डा परिवार की भांति ही इन भाषाओं में शब्द-पद एवं वाक्य पद का विभाजन बहुत स्पष्ट रूप से नहीं हो सकता। एक पूरा का पूरा वाक्य एक पद भी है और वाक्य भी। विभिन्न क्रिया-कलाप मात्र उपसर्गों एवं परसर्गों की मदद से उजागर होते हैं। उदाहरणतया तांड.खुल का एक पद देखिए :

लाचुड. नाचप 'आकर खूब जोर से रोना'

यह पद चार भागों में यूँ विभाजित हो सकता है ला 'आना', चुड. 'करवटें लेना' ना 'ढेर सारा', चप 'रोना'। जिस रोने की क्रिया का यहाँ जिक्र किया गया हैं उसका हिंदी में अनुवाद भी मुश्किल है क्योंकि यही एकमात्र भाषा परिवार है जहाँ एक-एक क्रिया को करने के ढंग 50-60 से कम नहीं। अर्थात आप पचास-साठ ढंग से रो सकते हैं, 70 ढंग से हँस सकते हैं, 30-40 ढंग से चल सकते हैं आदि-आदि। कहने का तात्पर्य यह है कि ये भाषाएँ हमारी दिनचर्या में हुई क्रियाओं का कई-कई प्रकार से अवलोकन करती हैं एवं उसको भाषा के माध्यम से उतारती हैं। यही कारण है कि इन भाषाओं में अनुकरणवाचक शब्दों की प्रचुरता है। विस्तार के लिए देखिए अब्बी एवं अहन विक्टर (1977) का शोध कार्य।

(ख) संज्ञा एवं क्रियाओं में भेद भिन्न-भिन्न परसर्ग के प्रयोग से किया जा सकता है। अत: व्याकरण की इन दो इकाइयों को ये भाषाएँ सूक्ष्म (strict) ढंग से नहीं विभाजित करतीं जिस प्रकार हिंदी व अन्य भाषाएँ। अत: मणिपुरी में चा का अर्थ भोजन से भी हो सकता है और भोजन करने की क्रिया अर्थात 'खाने' से भी। प्रश्न परसर्ग का है। चा-बा संज्ञा है पर चा-ली क्रिया है। उसी प्रकार देखिए निम्नलिखित शब्द जो वास्तव में मूल अर्थ में एक ही हैं, परंतु प्रत्ययों के कारण भिन्न-भिन्न व्याकरणिक इकाइयों के बाँटा सकते हैं।

अ - कन - ब   शक्ति से संबंधित

कन - न   शक्तिशाली (वि.)

कन - ब   तेज़ (क्रि.वि.)

कन - ली   शक्तिशाली होना (विधेय)

ना - कन - ली   'वह शक्तिशाली है'

(ग) एक - एक शब्द कई-कई अर्थ संबंधी इकाइयों को जोड़कर बनता है अत: रौंगमई भाषा में गर्मी के लिए शब्द है तिड़ + अनम + गन (यहाँ यह तोड़कर दिया जा रहा है परंतु वास्तव में यह एक शब्द है), यानि 'वर्षा + गर्म + समय'-गर्मी।

वाक्य विन्यास

(क) शब्द क्रम है - कर्ता-कर्म-क्रिया।

(ख) वाक्य में प्रयुक्त क्रिया का मात्र दो कालों में विभाजन किया जाता है + भविष्यत् काल/भूतकाल एवं वर्तमान काल के भेद के लिए क्रिया-विशेषण जैसे शब्दों का प्रयोग होता है। अत: निम्नलिखित वाक्य कल और आज दोनों के लिए प्रयुक्त हो सकता है। भेदक क्रिया विशेषण ही है।

(1) ङ.ग्राङ.   अई   सिनेमा अदू   येङ.-य

कल   मैं   सिनेमा वो   देखा

'कल मैंने सिनेमा देखा'

(2) ङ.सी   अई   सिनेमा अदू   येङ.-य

आज   मैं   सिनेमा वो   देख

'आज मैं सिनेमा देख रहा हूँ'

(ग) चूँकि कारक चिह्न संज्ञा शब्दों के साथ लगते हैं अत: शब्द क्रम में अदल-बदल किया जा सकता है। अत: मणिपुरी में

(i) आई-ना   तोम्बा-दा   लाइरीक   अमा   पी

मैं-कर्ता   तोम्बा-को   किताब   एक   दे

'मैं तोम्बा को किताब देता हूँ/दी थी'

सही वाक्य "तोम्बा दा आई ना लाइरिक ...." रूप में भी बोला जा सकता है। अर्थ की दृष्टि से कोई अंतर नहीं पड़ता।

1.8 भाषा क्षेत्र की परिकल्पना

भारतवर्ष के प्रमुख भाषा-परिवारों की भाषायी विशेषताएँ समझ लेने के बाद एक प्रश्न उठता है। क्या ये सभी भाषाएँ अपने आप में अलग-अलग हैं या कहीं किसी व्याकरणिक पक्ष पर ये भाषाएँ एक-दूसरे की बहनें प्रतीत होती हैं? चिरकाल से चली आ रही द्विभाषिता एवं भाषा-सम्पर्क ने आज यह स्थिति पैदा करा दी है कि भारतीय भाषाएँ भिन्न होने पर भी (याद कीजिए कि देश में 1652 भाषाएँ बोली जातीं हैं।) व्याकरणिक दृष्टि से काफी समान हैं। जब दो भाषाएँ पड़ोसी हो जाती हैं तो यह स्वाभाविक है कि उनमें हर प्रकार का आदान-प्रदान स्थापित हो जाता है। सैकड़ों वर्षों से चली आ रही भाषायी-सम्पर्क स्थिति पहले कुछ समान शब्दावली को और फिर धीरे-धीरे समान भाषा की संरचना के नियमों को जन्म देती है। एक समय ऐसा भी आता है कि दो भिन्न भाषा-परिवार की भाषाएँ आपस में इतनी मिलने-जुलने लगें जितनी वे अपने ही परिवार की अन्य भाषाओं से नहीं। भारत की भाषाओं में ठीक यही स्थिति उत्पन्न हो

गई है। आज हिंदी और तेलुगु में ज्यादा व्याकरणिक समानताएँ हैं अपेक्षाकृत हिंदी एवं अंग्रेजी में (हालांकि अंग्रेजी भी हिंदी की भांति भारोपीय परिवार की सदस्य है)। 1959 में प्रो. एम. वी. एमेनो ने अपने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं चर्चित लेख 'Indian an a Linguistic Area' में सर्वप्रथम इस प्रकार की समानताओं की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित किया था। 1956 के बाद इस विषय पर काफी शोध हो चुका है और भाषा के भिन्न-भिन्न पक्षों का गहनता से अध्ययन करने के बाद मसीका (1974), पीटर हुक (1977, 1982), अब्बी (1992) के शोध से प्रमाणित हो चुका है कि भारतीय कॉलिन भाषाएँ भिन्न-भिन्न परिवारों की एवं भिन्न-भिन्न भू-भागों में बोले जाने के बावजूद भी एक-दूसरे के इतनी समान है कि 'भारत की भाषा' जैसी इकाई में बाँधी जा सकती हैं। अनेकता में एकता का इससे उत्तम उदाहरण सामने न होगा। अर्थात् यदि कोई जानना चाहे कि भारत की भाषाओं की विशेषता क्या है या फिर ऐसा क्या है जो उन्हें विश्व की अन्य भाषाओं से अलग करता हो तो हम निम्नलिखित व्याकरणिक गुणों को उल्लेख करेंगे। इन गुणों को समझने से पहले 'भाषाई क्षेत्र' की परिभाषा समझ लेनी चाहिए।

भाषाई क्षेत्र अथवा 'Linguistic Area' की शब्दावली सर्वप्रथम प्रो. वाल्टेन ने 1943 में की थी। इससे पहले 1928 में सुप्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक त्रुबेत्सकॉय ने Sprachbund (भाषा-गुच्छ) जैसे शब्द का प्रयोग किया था। भाषा-गुच्छ के स्थान पर अब भाषाई-क्षेत्र ही अधिक प्रयोग में लाया जाता है और इसको प्रचलित करने का श्रेय जाता है एम.बी. एमनो' को जिन्होंने सर्वप्रथम 'भारत एक भाषाई क्षेत्र' जैसा महत्वपूर्ण लेख लिखा और कई-कई व्याकरणिक समानताओं का उल्लेख किया। उनके मतानुसार, 'भाषाई-क्षेत्र वह क्षेत्र है जहाँ विभिन्न भाषा-परिवारों की भाषाओं के एक स्थान पर बोले जाने के कारण इनमें कुछ ऐसी व्याकरणगत विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं जो इन भाषाओं के परिवार की अन्य भाषाओं में नहीं मिलतीं।'

अर्थात् ऐसी व्याकरण-गत विशेषताएँ जो एक क्षेत्र-विशेष की विभिन्न परिवार की भाषाएँ आपस में बाँटें, वे 'क्षेत्रीय विशेषताएँ' कहलाती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पारिवारिक रूप से भिन्न-भिन्न होने के बावजूद जब भाषाएँ एक-दूसरे के सम्पर्क में आती हैं तो व्याकरण की दृष्टि से एक-दूसरे के समीप आ जाती हैं। अत: आपस में अनेक भाषाई विशेषताएँ बाँटने लगती हैं। जब एक भाषा, दूसरी भाषा के सम्पर्क में आकर उसकी ओर खिंचती है तो ज़ाहिर है कि वह धीरे-धीरे अपने ही परिवार की अन्य भाषाओं से दूर होने लगती हैं। इस प्रकार, एक भाषा दूसरी भाषा की ओर converge हो जाती है पर अपने परिवार की अन्य भाषाओं में diverge होने लगती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सक्रिय बहुभाषिता का परिणाम 'भाषाई-क्षेत्र' ही होता है। यह प्राय: देखा गया है कि एक विशेष भाषाई-क्षेत्र की भाषाओं का व्याकरण काफी मात्रा में परस्पर मिलता-जुलता है। भारत एक ऐसा ही भाषाई-क्षेत्र है जहाँ निम्नलिखित व्याकरण-गत विशेषताएँ प्राय: हर भाषा में पाई जाती है।

(क) कर्ता-कर्म-क्रिया शब्दक्रम

(ख) कारक चिन्ह जो संज्ञा के पश्चात् लगते हैं, अर्थात् परसर्ग

(ग) मूर्धन्य ध्वनियाँ

(घ) कृदन्त विशेषण

(ड.) शब्द रूपात्मक प्रेरणार्थक क्रियाएँ

(च) पुनरुक्त शब्द संरचना

(छ) अनुकरणवाचक शब्द संरचना

(ज) प्रतिध्वनि शब्दसंरचना

(झ) रंजक क्रिया

(ट) संप्रदानीय संरचनात्मक पद

आइए हम इन के बारे में संक्षेप में अध्ययन करें।

(क) कर्ता-कर्म-क्रिया (SOV) शब्दक्रम

प्राय: सारी की सारी भारतीय भाषाएँ इन क्रम का अनुसरण करती हैं और साथ ही साथ विशेष क्रम में निहित अन्य भाषाओं का भी अनुकरण करती हैं (जैसे विशेषण का विशेष्य से पहले आना, आदि।) हम हर भाषा -परिवार की एक-एक भाषा के उदाहरण लेकर अपने कथन की पुष्टि कर सकते हैं।

1. पंजाबी : मैं माक्की दी रोटी खांदी।

'मैंने मक्की की रोटी खाई'।

2. तेलुगु : कमला पूलु कोस्तुन्नदि।

'कमला फूल तोड़ रही है।'

3. सन्थाली : ऊनी होड़ को तौल के दिया।

उन्होंने (उस) आदमी को बाँध दिया।

4. मणिपुरी : थाड.न थीन दत लेई।

चाकू-से घुपा (कर) विच्छिन्न किया।

'उसके चाकू से मार डाला।'

(ख) परसर्ग

कारक चिन्ह संस्कृत की परंपरा में संयुक्त विभक्ति के रूप में न होकर पृथक रूप में संज्ञा के बाद लगते हैं। देखिए फिर से संबंध कारक चिन्ह /दी/ पंजाबी वाक्य (1) /को/'कर्म कारक चिह्न' सन्थाली में (3), एवं /न। 'करण कारक चिन्ह' मणिपुरी वाक्य (4) - जो संज्ञा के पश्चात् लगे हैं। तेलुगु /पूलु/ फूल में हिंदी की ही तरह कर्मकारक चिह्न का लोप है।

(ग) मूर्धन्य ध्वनियाँ

भारत की लगभग सभी भाषाओं में मूर्धन्य ध्वनियाँ ट, ड, एवं ण हैं। इनके महाप्राण घोष/अघोष रूप अर्थात् ठ, ढ, ड़ केवल आर्य भाषाओं में व ळ दक्षिण की द्रविड़ एवं पश्चिमी भारत की भाषाओं में पाए जाते हैं। देखिए फिर से मानचित्र संख्या 2.

(घ) कृदंत विशेषण

कृदंत-पूर्वकालिक (Conjuctive Participle) प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त होते हैं। जब दो या दो से अधिक क्रियाओं के होने का बोध होता है तो मूल क्रिया के घटने के समय से पहले के व्यापार को कृदंत रूप में (हिंदी में 'कर') सूचित किया जाता है। अत:

1. 'बाबू जी खाना खाकर घूमने गए।' जैसे वाक्य में 'खाना खाना' वाली क्रिया 'घूमने जाने' वाली क्रिया से पहले उद्‌घाटित होती है। अत: कृदंत 'कर' पहली वाली क्रिया में लगता है। किसी-किसी भाषा में एक ही वाक्य में कई पूर्वकालिक कृदन्तों का प्रयोग होता है। अत:

1.1 बाबू जी खाना खाकर, कपड़े बदलकर, छाता लेकर घूमने गए।

ऐसी स्थिति सभी भारतीय भाषाओं में हैं। जहाँ हिंदी में पूर्वकालिक कृदन्त 'कर' लगता है वही मराठी में - ऊन, सन्थाली में - काटे, तेलुगु में - ई, कन्नड़ में ऊ/ई, तमिल में - ऊ एवं मलयालम में - ए/ऊ प्रत्यय क्रियाओं में लगते हैं। कुछ भाषावैज्ञानिक कृदन्त प्रत्ययों को द्रविड़ भाषा की देन मानते हैं। इनके मतानुसार संस्कृत जब द्रविड़ परिवार के सम्पर्क में आई तब संस्कृत में कृदन्तों का जन्म हुआ। द्रविड़ भाषाओं में आज भी कृदन्तों का प्रयोग बहुत व्यापाक है। उदाहरण के तौर पर, 'किसी के निमित्त' के अर्थों में जहाँ हिंदी में कृदन्त का निषेध है, वहाँ द्रविड भाषाओं में विपुलता है। अत: निम्नलिखित वाक्य शब्दश: मलयालम वाक्य का अनुवाद है जो हिंदी भाषी के कानों को अखरता हैं।

(i) नम्बियार कह कर मेरे बेटे को नौकरी मिली। (अर्थात् नंबियार ने कहा, इसलिए ....)

(ङ.) प्रेरणार्थक क्रियाएँ

जिस प्रकार हिंदी में सरल एवं प्रेरणार्थक क्रियाओं का रूप-प्रत्यय योजनमूलक है उसी प्रकार अन्य भारतीय भाषाओं में भी। अर्थात् हिंदी में :

सिल - ना	सिला - ना	सिल - वाना
खिल - ना	खिला - ना	खिल - वाना
रो - ना	रुला - ना	रुल - वाना
पी - ना	पिला - ना	पिल - वाना
कर - ना	करा - ना	कर - वाना

तीसरे कॉलम में दिए गए सब रूपों में कर्ता वास्तविक कर्ता न होकर प्रेरक रूप में प्रयोग होता है। प्रेरणार्थक क्रिया रूपों में - **वाना** प्रत्यय लगता है और मूल धातु में ध्वनि संबंधी कुछ परिवर्तन होते हैं। भारत की अन्य भाषाओं में भी प्रेरणार्थक क्रियाएँ एक विशेष प्रत्यय के जुड़ने से बनती हैं। अत: सिंहली में **यनवा** 'जाना' पर **यन - वा - नवा** 'भेजना'; **हदनवा** 'बनाना' पर **हदन-वा-नवा** 'बनवाना'। मुण्डा परिवार की भाषाएँ उपसर्ग एवं मध्य प्रत्यय का सहारा लेती हैं। अत: खड़िया में **भोरे** 'भरा हुआ', **भो-ब-रे** 'भरना'; सोरा में **सुक्का** 'खुश होना', **अबसुक्का** 'सुख करना' आदि। द्रविड़ भाषाएँ बहुत कुछ आर्य भाषाओं की भाँति ही परसर्गीय-रूपिम का प्रयोग करती हैं। हाँ, इस रूपिम के व्यंजनों में संधि हो जाने की स्थिति में रूप-स्वनिम परिवर्तन आ जाता है। अत: तमिल में परा 'फैलना' पर **पटट्टु**, 'फैलाना', **तुयिल** 'सोना' पर **तुयिन्दु** 'सुलाना' आदि। **प्पू** या - **व** भी ट्टु का ही **allomorph** है। अत: **कीटा** - 'पड़ा होना' पर **कीटा-ट्टू/कीटा-प्पू** 'रखना, डालना'।

(च) पुनरुक्त शब्द संरचना

यह शब्द रचना भारतवर्ष की विशेष एवं महत्वपूर्ण रचना है। इसलिए हम इस पर तनिक विस्तार से गौर करेंगे। शब्द रचना की प्राय: तीन पद्धतियाँ मानी जाती हैं : (1) रूपायन या प्रसिद्दि (inflection;) (2) व्युत्पत्ति (derivation) एवं (3) समास (compounds)। एक चौथी पद्धति जोकि समूचे दक्षिण एशिया एवं दक्षिण-पूर्व एशिया में अत्यधिक प्रचलित है और जिसकी ओर भारतीय एवं पश्चिम के विद्वानों का ध्यान कम गया है वह है पुनरावृत्ति। पुनरावृत्ति से हमारा आशय है किसी भी शब्द कोटि के पूर्ण एवं आंशिक भाग की पुनरावृत्ति जो शब्द के अर्थ में परिवर्तन ले आए। अर्थात् पुनरुक्त शब्द कोटि अपने अ-पुनरुक्त शब्द की तुलना में अर्थपरक भिन्नता लिए होती है। यही नहीं, अ-पुनरुक्त शब्द की भांति पुनरुक्त शब्द भी अपने आप में एक शाब्दिम (lexeme) होता है और प्राय: एक ही संरचनात्मक इकाई भी। मसलन **'बच्चा'** एवं **'बच्चा-बच्चा'** (हर एक बच्चा) या फिर सन्थाली में दाल **'मारना'**; दादाल **'रोज-रोज़ मारना'**। हिंदी का उदाहरण पूर्ण पुनरावृत्ति का है जबकि सन्थाली का शब्द आंशिक पुनरावृत्ति का उदारहण है। सन्थाली का **दादाल** एक इकहरी संरचनात्मक इकाई है क्योंकि कोई भी प्रत्यय इस शब्द के आगे या पीछे लग सकता है। वास्तव में **बच्चा-बच्चा** एवं **दादाल** दोनों ही एक-एक शब्द हैं।

शाब्दिक पुनरावृत्ति को तीन भागों में बाँटा जा सकता है देखिका तालिका:

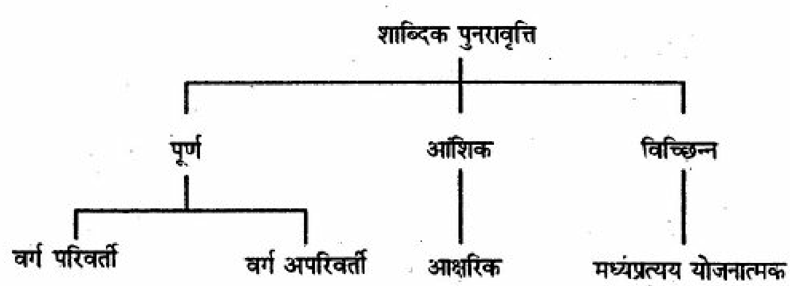

भारतवर्ष की ऐसी कोई भाषा या उपभाषा न होगी जहाँ शाब्दिक पुनरावृत्ति न मिलती हो। और इनमें भी सबसे व्यापक एवं प्रचलित है पूर्ण शाब्दिक पुनरावृत्ति। ऐसी कोई व्याकरणिक कोटि नहीं है जो पुनरावृत्ति

की जकड़ में न हो। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया-विशेषण, क्रिया आदि सभी कोटियाँ बखूबी पुनरक्त रूप में पाई जाती है। हाँ क्रिया की पुनरुक्ति, विशेषकर विधेय क्रिया के रूप में हिंदी एवं अन्य आर्य भाषाओं में नहीं पाई जाती (उदाहरण - मैं घर गया गया नहीं कह सकते) परंतु ऑस्टो-एशियाई में एवं कुछेक तिब्बती-बर्मन भाषाओं में विधेय रूप में क्रिया की द्विरुक्ति संभव है। कई बार ऐसा देखा गया है कि एक ही वाक्य में कई-कई पुनरक्त शब्दों का प्रयोग होता है। जैसे ताइजान्ग (ति.ब.) में:

केई-के	प प-ओई	नन्ग - न - स्ना	सै सै - म
मैं मैं	जा जा	तुम तुम काम	कर कर

'चूँकि तुम काम में व्यस्त हो (करते ही जा रहे हो) मैं तो चली।'

अन्य भाषाओं में जब क्रिया की पुनरुक्ति होती है तो वे क्रिया-विशेषण का कार्य करती है, उदाहरणतः

1. मैं **बैठे बैठे** थक गया।
2. वो **चलते चलते** गिर पड़ा।

चूँकि क्रिया अपने पुनरुक्त रूप में क्रिया-विशेषण का कार्य कर रही है, इसे हम वर्ग परिवर्ती पूर्ण शाब्दिक पुनरावृत्ति कहेंगे। इस कोटि में वे सारे शब्द जो पुनरुक्त रूप में परिवर्तित होने के पश्चात् अपनी व्याकरणिक इकाई को त्याग कर दूसरी व्याकरणिक इकाई में प्रवेश कर जाते हैं, शामिल हैं। मुण्डा भाषाएँ इस विधा से अनेकानेक शब्दों का गठन करती हैं। देखिए तालिका :

खड़िया

क्रिया

बोर 'माँगना' ; बोर बोर 'भीख माँगना'; बोर बोल लेब 'भिखारी' (सं.)

नो 'खाना'; नो नो 'दायाँ हाथ' (सं.)

आओ 'देखना'; आओ आओ 'घूरना'; आओ आओ कर 'घूरने वाला' (सं.)

गोएज 'मरना' ; गोएज गोज 'मरणासन्न' (वि.)

जुंग 'पुछना' ; जुंग जुंग डांग 'सगाई' (सं.)

चोल 'चलना'; चोल चोल 'गमन', 'प्रस्थान' (सं.)

पुनरुक्त शब्दों की व्यापकता देखने के लिए नीचे दिए गए वाक्य बहुत रोचक सिद्ध होंगे जो विभिन्न भारतीय भाषाओं से लिए गए हैं-

आर्य

हिंदी	:	वो बैठे-बैठे थक गया।
बंगला	:	शे बोशे-बोशे हाँपिए ऊठे छे।
कश्मीरी	:	सू थो बीह बीह।
सदरी	:	ऊ बइठे-बइठे थइक गेलक।

तिब्बी-बर्मी

मणिपुरी	:	महाक फम-न फम-न चोक थरमई
पाइते	:	अमा तू तू-लाई अपुक्ता

मुण्डा

मुण्डारी	:	एनहोड़े दूब दूब लागाइन

खड़िया : होकर दोको थक्के गाटका

द्रविड़

कन्नड़ : अवनु कूत्तु-कूत्तु सुस्तानु

कुडुरु : अस बोन्ते बोंन्ते खड़ दियस केरस

(ये सभी वाक्य हिंदी वाक्य का अनुवाद हैं।)

(छ) अनुकरणवाचक शब्द संरचना (Onomatopoeic/Expressive Morphology)

कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि पुनरावृत्ति की लपेट में मात्र एक अक्षर (Syllable) ही आता है जिसका स्वतंत्र रूप में उस भाषा में कोई अस्तित्व नहीं होता। हाँ, पुनरुक्त होकर ही वह शब्द का रूप धारण करता है। उदाहरणतया अनुकरणवाचक शब्द, जैसे सर-सर, कल-कल, फर-फर, ही-ही, चम-चम, दादा, बाबा। इसमें चम, दा, फर, बा अपने आप में शब्द-रूप नहीं हैं, अर्थात् ये स्वतंत्र शब्द के रूप में प्रयुक्त नहीं हो सकते। जहाँ बोल-चाल की भाषा में पाए भी जाते हैं वहाँ वे पुनरुक्त शब्द से छोटे किए हुए रूप की स्थिति में। अर्थात् इस प्रकार की पुनरुक्त शब्द की संरचना में किसी पहले से मौजूद शब्द भाग नहीं लेते हैं वरना पुनरुक्त अक्षर (syllable) ही अपने आप में शब्द का रूप धारण कर लेता है। इसे हम रूपात्मक पुनरावृत्ति (Morphological Reduplication) के नाम से जानते हैं। रूपात्मक पुनरावृत्ति की यह विशेषता है कि पुनरावृत्तिक इकाई एक रूपिम (morpeme) भी है और एक शाब्दिम (lexeme) भी, और एक शब्द भी। हमारे देश की भाषाओं में पाई जाने वाली बंधुतावादी शब्दावली (जैसे दादा, नाना, चाचा, मामा, बाबा आदि) और पंचेंद्रियों की बोधता दर्शाने वाले शब्द रू.पु. से ही गढ़े जाते हैं। यह अजीब और दिलचस्प भाषाई समानता है कि हम सब अपनी-अपनी भावनाओं को और पाँचों इंद्रियों से महसूस करने वाली शक्तियों को रूपात्मक पुनरावृत्ति वाले शब्दों से व्यक्त करते हैं।

अतः हिंदी में **टप-टप**, 'पानी की बूँदों का बरसना', **खी-खी** 'एक तरह का हँसना' **चम-चम** 'चमकना', **चिरपिरा या चरपरा**, तमिल में **गम-गम** 'सुगन्धित' एवं नेपाली में **चयात-चयात** 'चिपचिपा' अनुकरणवाचक शब्द हैं। इस प्रकार के शब्द सभी भाषाओं में पाए जाते हैं। खासी एवं अनेकानेक तिब्बती-बर्मन परिवार की भाषाएँ इस पद्धति से नाना प्रकार के क्रिया विशेषण बनाती हैं। अतः खासी में लगभग 60 तरह के अनुकरण-वाचक शब्द हैं जो मात्र रोने की क्रिया का विशेषण बनते हैं। खासी में **'इयाद बक बक'** जल्दी-जल्दी चलने' को कहते हैं पर **'इयाद दोन-दोन'** 'बच्चे की भांति ठुमकना', **इयाद वेंग-वेंग** 'झूमना', **इयाद तोइन तोइन** 'बेखटके चलना', **इयाद तुईन तुईन** 'हिचकिचाते हुए चलना' आदि नाना प्रकार के विशेषण जोड़े जा सकते हैं।

(ज) प्रतिध्वनि शब्द संरचना (Echo Word Formation)

ऐसे शब्द जिनमें शब्द का एक भाग मात्र पहले शब्द की प्रतिध्वनि हो, उसे प्रति-ध्वनि शब्द कहते हैं। हिंदी में चाय-वाय, पानी-वानी, गाना-वाना, बैठना-वैठना, पंजाबी में रोटी-शोटी, काम-शाम, पढ़ना-शढ़ना, बंगला में खान-पान, चूल-टूल आदि प्रति ध्वनि शब्दों के उदाहरण हैं। इस संरचना में दूसरा शब्द अपने आप में निरर्थक होता है। पर पहले सार्थक शब्द के साथ जुड़ने के बाद शब्द संरचना का अर्थ हम **'आदि'** या **'उससे मिलता-जुलता'** के अर्थ में ले सकते हैं। अतः हम यह कहें कि 'वह कलम-वलम लेने बाज़ार गया है अर्थ 'कलम जैसी चीजें' अर्थात् stationery से भी हो सकता है। द्रविड़ भाषाओं में प्रति-ध्वनि शब्द प्रायः - गि उपसर्ग से बनते हैं। अतः तमिल में पंदु-गिंदु 'गेंद-वेंद', तेलुगु में तोन्दरगा गिन्दरगा 'जल्दी-वल्दी' आदि।

(झ) रंजक क्रिया (Compound Verbs)

दो धातुओं से बनने वाली वे क्रियाएँ जिनमें मूल धातू मात्र एक ही होती है जो कोशीय अर्थ प्रदान करती है एवं दूसरी धातु मूल धातु में कई-कई अर्थपरक विशेषताएँ जोड़ देती है। अतः रंजक कहलाती हैं। उदाहरणतः 'सुंदर दृश्य देखकर वह गा उठी' में उठी रंजक क्रिया है और मूल धातु 'गाना' में 'सहसा या आकस्मिम ढंग से' जैसे अर्थ को जोड़ती है। रंजक क्रियाएँ देश की हर भाषा में पाई जाती हैं। इनके प्रयोग मूलतः चार कार्यों में होते हैं।

(1) पक्ष-द्योतक (Perfectivity) के अर्थ में

(2) व्यावहारिक क्रिया-विशेषण के अर्थ में

(3) अन्य क्रिया-विशेषण के अर्थ में; एवं

(4) अभिवृत्ति के अर्थ में।

आइए हर एक प्रयोग के कुछ उदाहरण देखें। इस बात का ध्यान रहे कि रंजक क्रिया हर भाषा में अलग-अलग प्रकार की हो सकती है।

1. पक्ष-द्योतक (संपूर्ण-वाचक) (Perfect Apect)

हिंदी : बूढ़ा हाथी मर गया। (मर+जाना)

तेलुगु : अतनु मिठाई मोत्तम तीनि वेसाडू

वह सारी मिठाई खा गया (खा + फेंक या डाल)

2. क्रिया-विशेषण (व्यावहारिक)

हिंदी : राजू फिल्म देखकर रो पड़ा। (रो + पड़ा, विशेषता)

मलयालम : राजू सिनिमा कण्डुँ करञ्ञु पोई (रो+जा, विवशता)

3. क्रिया विशेषण (अन्य)

हिंदी : चिट्ठी पढ़ लो। (मन ही मन)

चिट्ठी पढ़ दो। (जोर से ताकि दूसरे भी सुनें)

4. अभिवृत्ति

हिंदी : यह मैं क्या कर बैठी ! (पश्चाताप)

मलयालम : नोक्की कोळ्ळु ! अवल इप्पोल ओरु एलुती तल्लुम

देख लो : अब कविता लिख रही है। (लिख + धकेल, चिढ़ाना, संदिग्ध)

रंजक क्रियाओं का प्रयोग अधिकतर क्रिया के पूर्ण रूप के होने के पक्ष (पूर्णतावाची) से होता है और इसी प्रयोग में यह देश की अनेकानेक भाषाओं में पाई जाती है। इस पक्ष को प्राय: 'जाना' क्रिया आर्य भाषाओं में एवं 'फेंक' और 'थाम' जैसी क्रियाएँ द्रविड़ भाषाओं में उद्घाटित करती है।

(ट) सम्प्रदानीय संरचनात्मक पद (Dative-Subject Constructions)

जब वाक्य में कर्ता सम्प्रदान कारक का चिह्न लिए हुए हो पर कर्म कर्ता की भूमिका में हो तो वाक्य सम्प्रदानीय पद (Dative-Subject Construction) कहलाता है। उदाहरणत: 'राम को प्यार हो गया हैं।' वास्तव कोई आवश्यक नहीं है कि हर भाषा में ऐसे अ-साधक संज्ञा को सम्प्रदान के कारक चिह्न से ही दर्शाया जाए (उदाहरणत: बंगला में संबंधकारक और, हिन्दी में कर्म कारक चिह्न प्रयोग में लाए जाते हैं)। इन पदों की विशेषता यह है कि इनमें कर्ता साधक नहीं होता अपितु साध्य होता है पर होता कर्ता के स्थान पर, वाक्य के शुरू में। इस अ-साधक कर्ता को कोई भी तिर्यक चिह्न लग सकता है पर अर्थपरक दृष्टि से यह कर्ता या तो अनुभवकर्ता (experencer) होता है या प्राप्तिकर्ता 'benefactor' या 'recipient' या फिर मात्र उसका अस्तित्व भर होता है। ऐसी संरचना में कर्ता 'ऐच्छिक' रूप से कुछ नहीं करता। देखिए नीचे दिए गए उदाहरण।

हिंदी	:	मुझे नींद आ रही है।	(तिर्यक रूप, संप्रदानकारक)
कन्नड़	:	ननगे निद्दे बरुत्तिदे	(तिर्यक रूप, संप्रदानकारक)
खासी	:	डा स्नअऊ समथ्या	(साधारण रूप)

बंगला : ओर लोज्जा होच्चे (तिर्यक रूप, संबंधकारक)

'उसको शर्म आ रही है।'

वे सारी क्रियाएँ जो हमारे शारीरिक एवं मानसिक अनुभवों को लक्षित करती हैं, वाक्य में प्रयुक्त कर्ता को अ-साधक रूप में, जो किसी न किसी तिर्यक रूप में दिखाई देता है, उद्घाटित करती हैं। अत: 'राम को गुस्सा आया/बुखार आया/शर्म आई/प्यास लगी/नींद आई' में राम जो अ-साधक है तिर्यक रूप में कर्म कारक चिह्न 'को' लिए हुए है।

उपरोक्त विशेषताएँ इस बात की तो द्योतक हैं ही कि हमारा देश बहुभाषी भी रहा है एवं अनेक भाषा-भाषियों में आदान-प्रदान भी होता रहा है। इसके साथ-साथ इस कथ्य को भी उजागर करता है कि आज भारतीय भाषाओं की एक पृथक अस्मिता है जो हमें विश्व की अन्य भाषाओं से अलग हटकर विश्लेषण करने पर बाध्य करती है। भारत की अनेक भाषाओं की अपनी-अपनी विशेषताएँ तो हैं ही, साथ-साथ इन सभी भाषाओं में ऐसे गुण भी हैं जो भारत के 'भाषा-क्षेत्र' के अपने निजी विशेष भाषा संबंधी गुण हैं। इस अर्थ में भारतीय भाषाएँ एक-दूसरे को एक कड़ी में जोड़ती हैं और हमारे समान चिंतन और समान अभिवृत्ति को उजागर करती है।

1.9 सारांश

संसार की कुल भाषाओं की संख्या लगभग 4000 है। इस भाषाओं के वर्गीकरण के दो आधार हो सकते हैं:

क) आकृतिमूलक वर्गीकरण

ख) पारिवारिक वर्गीकरण

पारिवारिक वर्गीकरण के आधार हैं - आधारभूत शब्दावली, उच्चारण की विशेषताएँ, रूप तत्व, शब्द रचना और वाक्य संरचना के तत्व। यह माना जाता है कि एक परिवार की भाषाओं में ये तत्व समान रूप से मिलते हैं। आकृतिमूलक वर्गीकरण भी परिवार की संकल्पना में सहयोग देता है। परिवार की संकल्पना के आधार पर भाषा वैज्ञानिकों ने संसार में निम्नलिखित नौ परिवारों की बात की है:

1. भारोपीय परिवार
2. सामी-हामी परिवार
3. द्रविड़ भाषाएँ
4. आस्ट्रिक
5. फिनो-उग्रिक
6. अल्ताई
7. चीनी-तिब्बती परिवार
8. काकेशियन भाषा परिवार
9. अमेरिकी भाषाएँ

भारत में लगभग 1650 भाषाएँ बोली जाती हैं। ये भाषा विश्व के चार प्रमुख भाषा परिवारों से संबद्ध है।

भारत के भाषा परिवार निम्लिखित हैं :

1. भारतीय आर्यभाषाएँ (भारोपीय परिवार की शाखा)
2. द्रविड़ भाषा परिवार

3. मुंडा या कोल भाषाएँ (आस्ट्रिक परिवार की शाखा)

4. तिब्बत-बर्मी भाषाएँ (तिब्बत-चीनी परिवार की शाखा)

इन चारों परिवारों की अपनी-अपनी विशेषताएँ है। तिब्बत-चीनी भाषा परिवार की भाषाएँ अयोगात्मक (analytic) कहलाती हैं, क्योंकि इन भाषाओं में संज्ञा, क्रिया आदि शब्दों के प्रत्यय, उपसर्ग आदि लगने के रूप परिवर्तन नहीं होता। तान (tone) का उच्चारण इस परिवार की दूसरी बड़ी विशेषता हैं।

शेष तीन परिवार योगात्मक (synthetic) हैं, क्योंकि इनमें धातु से प्रत्यय आदि की सहायता से शब्द के विभिन्न रूप बनते हैं। आर्य भाषाएँ संश्लिष्ट हैं, क्योंकि धातु और रूप तत्व इतने मिल जाते हैं कि उन्हें पहचाना नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए - संस्कृत के/बालकभ्य:/ में धातु 'बालक', पुल्लिंग, बहुवचन, संप्रदान विभक्ति चारों अर्थ तत्व मिलजुल गए हैं और उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। हिंदी जैसीं आधुनिक भाषाओं में संश्लिष्टता कुछ कम है और रूप तत्व मूल अलग लिखे जा रहे हैं।

द्रविड़ भाषाएँ अश्लिष्ट योगात्मक (agglutinating) हैं। अर्थात् इनमें धातु में प्रत्येक व्याकरणिक अर्थ के लिए रूप जुड़ते जाते हैं। जैसे

वीडु	+	कळ	+	ऐ
घर		बहुवचन		कर्मकारक

मुंडा भाषाएँ मूलत: कर्ता-क्रिया-कर्म के पदक्रम वाली थी, लेकिन अन्य भाषाओं के प्रभाव के कारण अब कर्ता-कर्म-क्रिया का पदक्रम प्रचलित हो चला है। शब्द के बीच में मध्य प्रत्यय इसकी विशेषता है।

इकाई के अंत में उन विशेषताओं का उल्लेख किया गया है, जो प्राय: सभी भाषाओं में दिखाई देती है। जैसे

1. प्राय: सभी में कर्ता-कर्म-क्रिया का क्रम है।

2. सभी में (कश्मीरी छोड़कर) परसर्ग का प्रयोग होता है।

3. मूर्धन्य ध्वनियाँ

4. प्रेरणार्थक क्रियाएँ

5. रंजक क्रियाएँ

ये विशेषताएँ प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में है। शब्द रचना के संदर्भ में 6) पुनरुक्त शब्द 7) अनुकरणवाचक शब्द और 8) प्रतिध्वनि शब्द आदि की संरचना भी अखिल भारतीय है। वाक्य संरचना के संदर्भ में 9) /को/ वाले कर्ता के वाक्य (जैसे मुझे किताबा मिली/मुझे दुख है आदि) भी भारत की भाषाओं की ही विशेपता है।

1.10 अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के लगभग 250 शब्दों में उत्तर लिखिए।

   i) संसार के भाषा परिवारों का परिचय दीजिए।

   ii) भारतीय आर्य भाषा परिवार का परिचय दीजिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के लगभग 500 शब्दों में उत्तर लिखिए।

   iii) भाषा के भाषा परिवारों का वर्णन कीजिए।

   iv) भारत की भाषाओं की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

इकाई 2 भारोपीय परिवार और भारतीय आर्य भाषाएँ

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 भारोपीय परिवार की भाषाएँ

 2.2.1 भारोपीय परिवार की भाषाओं का वर्गीकरण

 2.2.2 भारत-ईरानी उपवर्ग

2.3 भारतीय आर्यभाषाएँ

 2.3.1 संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय

 2.3.2 भाषाओं का सामान्य परिचय

2.4 भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण

2.5 भारतीय आर्यभाषाओं की विशेषताएँ

2.6 सारांश

2.7 अभ्यास प्रश्न

2.0 उद्देश्य

हमारे लिए यह जानना उपयोगी होगा कि हिंदी का विश्व की भाषाओं से क्या संबंध है? इस प्रश्न के संदर्भ में ही हिंदी भाषा के आदि, सुदूर स्रोत, जो उसे संसार की अन्य भाषाओं से संबद्ध करते हैं, उन पर विचार करने का अवसर मिलेगा और इससे हम हिंदी को उसके व्यापक परिप्रेक्ष्य में रख सकेंगे। हिंदी की जननी संस्कृत है। संस्कृत का ग्रीक, लैटिन, अवेस्ता से ऐतिहासिक अर्थात् पारिवारिक संबंध है। इस भाषाओं के इतिहास का अध्ययन एक दूसरे के अध्ययन के बिना अधूरा है। विश्व की भाषाओं का जो ऐतिहासिक-पारिवारिक वर्गीकरण किया जाता है, उसमें संस्कृत का संबंध भारोपीय परिवार की भाषाओं से है। इस दृष्टि से भारोपीय भाषाओं की अवधारणा को समझना हमारे लिए आवश्यक है जिससे हम भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास जान सकें और उनमें हिंदी की स्थिति की बात समझ सकें।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारोपीय परिवार की संकल्पना और उसके उद्‌भव की व्याख्या कर सकेंगे;
- भारोपीय भाषाओं की विशेषता को बता सकेंगे;
- भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण का सकेंगे;
- भारतीय आर्य भाषाओं का स्वरूप और उनके परस्पर संबंधों का परिचय दे सकेंगे; और
- भारतीय आर्य भाषाओं में हिंदी का स्थान निर्धारित कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

विश्व की भाषाओं के वर्गीकरण के अंतर्गत आर्य परिवार की भाषाओं को भारोपीय भाषा परिवार कहा जाता है जिसके अंतर्गत भारतीय आर्य भाषा परिवार भी आता है। भारतीय भाषा का नाम पहले इंडो-जर्मनिक रखा गया था क्योंकि हिंदुस्तान और जर्मनी की भाषाओं में आनुवंशिक साम्य देखा गया था

लेकिन बाद में पता चला कि जर्मनी की सीमा से बाहर भी अनेक भाषाएँ इसी परिवार की हैं, जैसे आयरलैंड और वेल्स में कैल्टी भाषाएँ जो जर्मनी परिवार से भिन्न हैं। इसीलिए बाद में इसका नाम इंडो-कैल्टिक रखा गया। परंतु यह भी उपयुक्त नहीं लगा। बाद में भारत और यूरोप के नाम को लेकर अंग्रेजी में इंडो-यूरोपियन नाम रखा गया जिसको हिंदी में भारत-यूरोपीय अथवा संक्षेप में इन दोनों शब्दों को मिलाकर भारोपीय परिवार कहा जाता है। आर्य जाति के लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषाएँ इस परिवार के अंतर्गत आती है इसलिए इससे कभी-कभी आर्य परिवार ही कहा जाता है। इस भाषाओं के अभिलेखबद्ध पूर्व रूप संस्कृत, अवेस्ता, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं में दिखाई देते हैं। इसके आधार पर अनुमान किया गया कि इन सब भाषाओं का भी कोई मूल रूप रहा होगा। उसे ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के विद्वानों ने तुलनात्मक पद्धति के आधार पर पुनर्रचित किया और उसे मूल भारोपीय भाषा कहा।

भारोपीय भाषा परिवार के अंतर्गत भारत-ईरानी भाषा वर्ग की अलग विशिष्टता है। इस वर्ग में एक ओर ईरान की आर्य भाषाएँ और दूसरी ओर भारत की आर्य भाषाएँ सम्मिलित की गई हैं। ईरान की भाषाओं में पश्चिम उपशाखा, फारसी और पूरब की उपशाखा अवेस्ता कहलाती है। इसके अलावा पश्तो, बलोची, पामीरी, कुर्दी जैसी भाषाएँ भी इसके अंतर्गत आती है। इसी की एक उपशाखा दरदी कहलाती है। भारत की कश्मीरी भाषा इसी भाषा के अंतर्गत है।

भारत में आर्यों के आगमन के पश्चात् भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास प्रारंभ होता है। वर्तमान युग तक इसके विकासक्रम को तीन युगों में रखा जाता है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर 500 ई.पू. तक प्राचीन भारतीय आर्य भाषा, 500 ई.पू. से 1000 ई. तक मध्य भारतीय आर्य भाषा तथा 1000 ई. से वर्तमान काल तक आधुनिक भारतीय आर्य भाषा। आर्य भाषा ऋग्वेद की भाषा में प्रतिबिम्बित दिखाई देती है। इसी भाषा का विकसित रूप बाद में संस्कृत कहलाया। संस्कृत शब्द से संकेत मिलता है कि व्यवहार में प्रचलित बोलियों में व्याकरणिक संस्कार करके मानक भाषा को एक परिनिष्ठित रूप दिया गया। पाणिनि ने संस्कृत के वैदिक और लैकिक नाम से दो रूपों का उल्लेख किया है। बाद में पाणिनि द्वारा परिनिष्ठित संस्कृत में ही बाल्मीकि, व्यास, कालिदाल आदि ने विपुल साहित्य का सर्जन किया है।

एक समय में संस्कृत भाषा अपने रूप में स्थिरीकृत हो गई। उस समय के बाद संस्कृत भाषा का बोलचाल का रूप समाप्त हो गया और वह जिस रूप में थी, उसी रूप में स्थिर होकर साहित्यिक भाषा मात्र रह गई। इसी संदर्भ में इस भाषा का श्रेण्य (Classical) भाषा की संज्ञा दी जाती है।

संस्कृत भाषा में बोलचाल के स्तर उत्पन्न परिवर्तनों के कारण इन भाषा का नामकरण बदलता गया। संस्कृत से पालि, पालि से प्राकृत भाषाएँ और प्राकृत भाषाओं से अपभंश भाषाओं का विकास क्रम बना। अपभ्रंश भाषाओं से हिंदी, पंजाबी, गुजराती, बांग्ला आदि आधुनिक भाषाओं का विकास हुआ जो ई. 1000 के बाद से परिलक्षित होता है।

एक मूल संस्कृत भाषा से लगभग 20 प्रमुख आधुनिक आर्य भाषाओं के निकलने के पीछे कई कारण हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि किस तरह से ये भाषाएँ अपनी अलग अस्मिता ग्रहण करती हैं। इन्हीं व्यक्तिगत विशेषताओं के संदर्भ में विद्वानों ने इन भाषाओं को अपने-अपने ढंग से वर्गीकृत करने का यत्न किया है।

2 .2 भारोपीय परिवार की भाषा

आपने पिछली इकाई में पढ़ा कि संसार के लगभग 9 प्रमुख भाषा परिवार हैं। भारोपीय परिवार इनमें सबसे बड़ा सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके बोलने वाले अमेरिका से न्यूज़िलैंड तक विस्तृत भूभाग में बसे हैं। भारोपीय परिवार की भाषाएँ बोलने वालों की संख्या विश्व में सबसे अधिक है।

प्रारंभ से आज तक इस परिवार का नाम विवादास्पद रहा है। इसके नाम प्रमुख हैं :

1. **इंडोजर्मेनिक :** पहले इस भाषा परिवार के पूर्वी छोर पर भारत व पश्चिमी छोर पर जमर्नी के होने के कारण जर्मन विद्वानों ने इंडोजर्मेनिक नाम दिया था। बाद में कुछ विद्वानों ने इसे इंडोकेल्टिक नाम दिया परंतु इस नाम से इस परिवार की सही रूपरेखा स्पष्ट नहीं होती है।

2. **आर्य परिवार:** इस परिवार को बाद में आर्य परिवार भी कहा गया, परंतु फ्रांस आदि देशों ने इस नाम के विरुद्ध दो तर्क उपस्थित किये-

(क) इस परिवार की भापाओं के बोलने वाले केवल आर्य जाति के होंगे, ऐसा भ्रम होता है।

(ख) आर्य शब्द का व्यवहार सामान्यत: इस परिवार की हिंदी-ईरानी शाखा के लिए अधिक उचित है, क्योंकि इन दोनों देशों के लोग अपने को आर्य कहते हैं।

इसी प्रकार जफेटिक, सैमेटिक, हैमेटिक के वजन पर इसको जेमेटिक नाम भी दिया गया पर अवैज्ञानिक होने के कारण यह नाम अमान्य रहा। साथ ही अनेक जेमेटिक कहलाने वाले लोगों की भापा भारोपीय परिवार से दूर है। बाइविल में इसी आधार पर मनुष्यों का वर्गीकरण किया गया है।

इस प्रकार कुछ विद्वानों ने इस परिवार को सांस्कृतिक काकेशियन नाम भी दिया परंतु यह नाम प्रभावित नहीं हुआ। भारोपीय या इंडोयूरोपीयन नाम आजकल प्रचलित है। यह नाम क्षेत्र के आधार पर है। परंतु अब अमरीका, अफ्रीका के वहुत से भागों में भी इस परिवार की भापाएँ बोली जाती हैं। जैसे - अंग्रेजी, डच, स्पेनिश, फ्रेंस। परंतु इस परिवार के अन्य नामों की तुलना में यह अधिक सार्थक है। इसीलिए यही प्रचलित हैं।

2.2.1 भारोपीय परिवार की भाषाओं का वर्गीकरण

भारोपीय भापा परिवार की भापाओं का व्याकरण और ध्वनि के आधार पर सेंतम् और केंतुम दो वर्गों में बाँटा गया है। यह वर्गीकरण बान ब्रैडके द्वारा किया गया है। इस परिवार की पश्चिमी शाखा और पूर्वी शाखा थी परंतु 20वीं शती में तोखारी भापा निकल पड़ी जो पूर्व में होने पर भी केंतुम वर्ग की है। इसलिए यह विभाजन स्थिर नहीं रह सका। इस वर्गीकरण का आधार है 100 ((सौ) के लिए प्रयुक्त शब्द। प्राय: पूर्व की भापाओं में इन शब्द का /शतम्/ उच्चारण मिलता है, जबकि पश्चिम् में /केंटुम्/ का उच्चारण इसी तरह अन्य शब्दों में भी /च/ और /क/ या /ह/ विभेदीकरण है, जिससे इन शब्दों से वर्गीकरण का नामकरण हुआ है। उदाहरण केंद्र - सेंटर, सप्त-हप्त आदि। आइए दोनों वर्गों की भापाओं का विवरण देखें।

(क) केंटुम वर्ग

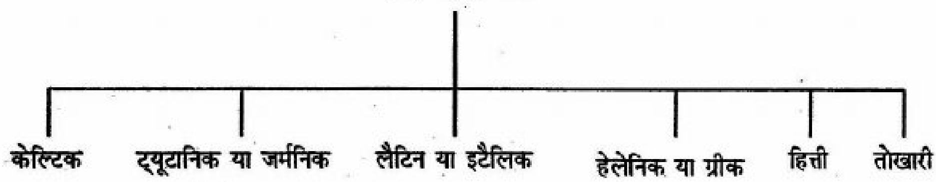

1. **केल्टिक:** आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व इस भापा की शाखाएँ यूरोप के विस्तृत क्षेत्रों में बोली जाती थीं, किन्तु अब आयरलैंड, स्काटलैंड, मानद्वीप तथा कार्नवाल के कुछ भागों में इसका क्षेत्र शेष रह गया है। केल्टिक में आदिम भाषा का कब कहीं /ब/ तथा कहीं /क/ के रूप में विद्यमान है। इस शाखा का इटैलिक से घनिष्ठ संबंध है।

   इस शाखा के तीन वर्ग माने जाते हैं :

   क) गाली

   ख) गोइडेली-आइरिश, स्काच, मेंक्स

   ग) ब्रादानी

2. **ट्यूटेनिक या जर्मेनिक :** जर्मन शब्द का अर्थ है पड़ोसी। यह भारोपीय परिवार में सबसे महत्वपूर्ण शाखा है। अंग्रेज़ी, जर्मन, डच आदि इसी की भापाएँ हैं। इसका प्राचीन रूप गाथिक आदि भापाओं में मिलता है। प्राचीन सामग्री के आधार पर इस शाखा के अंतर्गत भाषाओं के तीन समूह हैं।

   क) **उत्तरी ट्यूनिक :** इसकी दो शाखाएँ हुई -

   1) पश्चिमी स्कैंडिनेवी

   2) पूर्वी स्कैंडिनेवी

ख) **पूर्वी समूह :** इसकी मुख्य भाषा गाथक हैं। भारोपीय की पुरानी बातें इसमें सुरक्षित हैं। यह भाषा संस्कृत के निकट मानी जाती है।

ग) **पश्चिमी समूहः** इसकी तीन शाखाएँ हैं।

1) **इंग्लिश :** इंग्लिश का नाम आंगल जाति के नाम पर पड़ा। आज यह 25 करोड़ व्यक्तियों की भाषा हैं साथ ही अंतर्राष्ट्रीय भाषा भी है।

2) **जर्मन :** इसकी दो शाखाएँ हैं।

क) उच्च जर्मन

ख) निम्न जर्मन

3) **डच :** यह मुख्य रूप में हॉलैंड की भाषा है।

इस भाषा की सभी भाषाएँ श्लिष्ट योगात्मक से अयोगात्मक होती जा रही हैं।

3. **इटैलिक/लैटिन :** इसको लैटिन (लातिनी) भी कहते हैं। यह भाषा इस परिवार की प्राचीन भाषाओं में से है और अब भी वर्तमान है। इसी से रोमांस भाषाएँ निकली हैं। लैटिन रोम की भाषा थी। रोम साम्राज्य के छिन्न-छिन्न होने पर इसका साहित्यिक महत्व तो काफी समय तक रहा, परंतु कालांतर में बोल-चाल की भाषाओं ने इसको पराजित कर दिया। फ्रेंच, इतालवी,स्पैनिश, पुर्तगाली और रोमेनियन प्रमुख लातिनी (Romance) भाषाएँ हैं।

4. **हेलेनिक/ग्रीक :** इसको ग्रीक शाखा भी कहते हैं। केंतुम समुह में यह शाखा सबसे प्राचीन है। महाकवि होमर के इलियड और ओडिसी महाकाव्य इसी के प्राचीन उदाहरण हैं। सुकरात तथा अरस्तू ने भी अपने विचार इसी भाषा में व्यक्त किये थे। इस भाषा का आधुनिक रूप यूनान देश की बोलियों में प्राप्त है।

ग्रीक और संस्कृति में बहुत समानताएँ हैं। ग्रीक में मूल स्वर सुरक्षित हैं तो संस्कृत में मूल व्यंजन। समास और वाच्य भी दोनों में समान हैं। लकारों की समृद्धि संस्कृत में अधिक है।

5. **हित्ती :** 16वीं शती के उत्तरार्द्ध मे बोगजकुंई की खुदाई में इसका रूप कीलाक्षरों में मिला था। ऐसा विवाद है कि भारोपीय परिवार से कुछ शब्द उधार लेकर इस भाषा ने अपनाए। विभक्तियाँ और सर्वनाम संस्कृत और लैटिन से बहुत अंशों से मिलते हैं। परंतु अनेक विद्वान इस भाषा को मूल भारोपीय भाषा से भी प्राचीन मानते है।

6. **तोखारी :** अंग्रेजी फैंच, रूसी तथा जर्मन विद्वानों ने पूर्वीय तुर्किस्तान के तुरकान प्रदेश में 20वीं शदी के आरंभ में कुछ ग्रंथ पाए जो भारतीय लिपि (ब्राह्मी तथा खरोष्ठी) में थे। फलस्वरूप यह भाषा भारोपीय परिवार की सिद्ध हुई। बोलने वाले तोखार लोग थे। इसलिए यह तोखारी कहलाई।

इस भाषा में स्वरों की जटिलता कम है। संधि नियम संस्कृत जैसे हैं। विभक्तियाँ भी आठ हैं। शब्द भंडार संस्कृत के समीप है।

पितृ-पाचृ, मातृ-माचृ

इस भाषा की प्राप्त सामग्री के अध्ययन से पता चलता है कि इनमें दो बोलियों का प्रयोग हुआ है।

(ख) शतम् वर्ग

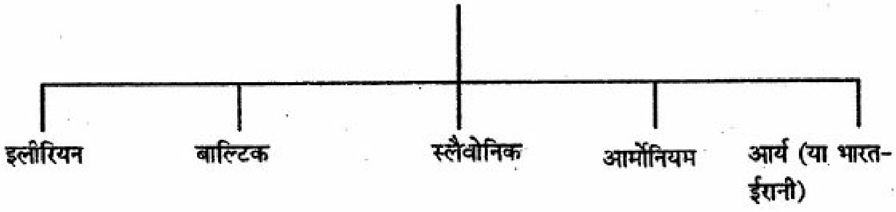

1. **इलीरियन :** इसका क्षेत्र इटली के आस-पास है। इसकी एक शाखा अल्बेलियन है। उसी के वि में कुछ सामग्री प्राप्त है। इसलिए इस शाखा को अल्बेलियन भी कहा जाता है। इसके बोलने वाले अल्बेरिया और ग्रीस में रहते हैं। अल्बेलियन साहित्य लगभग 17 वीं सदी से प्रारंभ होता है। इसके पूर्वका रूप इस भाषा का नहीं मिलता। अत: इसका ऐतिहासिक अध्ययन नहीं किया जा सकता। इस भाषा ने तुर्की, लैटिन, ग्रीक आदि के भी शब्द लिए हैं। इसलिए यह भी जानना कठिन है कि इसके अपने शब्द कितने हैं।

   बहुत दिनों तक विद्वान इसे स्वतंत्र शाखा मानने को तैयार नहीं थे। परंतु किसी से पूर्णत: मेल न खाने पर इसे अलग माना ही गया है।

2. **बाल्टिक :** इस वर्ग की तीन भाषाएँ हैं :

   क) **प्राचीन काल :** इसका स्थान प्राचीन प्रशा प्रदेश है। 15वीं सदी के बाद की तथा 16वीं सदी की लिखी हुई पुस्तकें इसमें मिलती हैं। यह भाषा 17वीं सदी में समाप्त हो गई।

   ख) **लिथुआनिया:** इसका क्षेत्र प्रशा के उत्तर पूर्व में है। इसका साहित्य 16वीं सदी के बाद से आरंभ होता है। इसकी प्रसिद्ध पुस्तक महाकवि दोनेलेटिस की सीजन्स है। इसका रचना काल 1750 है। वैज्ञानिकों की दृष्टि से यह भाषा बड़ी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसका विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ है। इसी कारण आज भी यह मूल भारोपीय भाषा से अधिक दूर नहीं। इसमें अब भी एस्टि (अस्ति) एवं जीवा जैसे रूप मिलते हैं। वैदिक संस्कृत की भाँति इसमें अभी भी संगीतात्मकता और द्विवचन हैं।

   ग) **लैट्टिश :** यह रूस के पश्चिमी भाग में लेटविया राज्य की भाषा है। यह लिथुआनियन से अधिक विकसित है। इसमें भी साहित्य का अध्ययन 16वीं सदी में हुआ है। इस भाषा के अधिक विकसित होने के कारण बाल्टिक शाखा को लेट्टिश शाखा भी कहते हैं।

3. **स्लेवोनिक :** यह एक विस्तृत भाषा वर्ग है – पूर्वी यूरोप का एक बड़ा भाग इसमें आता है। दूसरी तीसरी सदी तक इस भाषा को बोलने वाले एक सीमित क्षेत्र में रहते थे। 5 वीं सदी के बाद से ये लोग इधर- उधर फैलने लगे। 9वीं सदी तक रूस, पौलैंड, बलगारिया इसके प्रभाव में आ गये। इसके तीन भाग किये जा सकते हैं।

   क) **पूर्वी शाखा :** इसकी भी तीन भाषाएँ हैं (1) महारूसी, (2) श्वेत रूसी और (3) लघु रूसी। रूसी रूस की प्रधान भाषा है। 18वीं सदी के पूर्व तक यह बहुत अस्त-व्यस्त थी। उसके बाद इसे टकसाली रूप मिला। श्वेत रूसी रूस के दक्षिण में बोली जाती है। लघु रूसी का दूसरा नाम रूथेनियन भी है। इसके कुछ बोलने वाले आस्ट्रिया में भी मिलते हैं।

   ख) **पश्चिमी शाखा :** इसकी प्रधान भाषा चेक है। यह प्रधानत: बोहेमिया की भाषा है। अत: इसका नाम बोहेमियन भी है। इसका नियमित साहित्य 12वीं सदी से मिलता है। इस शाखा में पोलिश भाषा भी आती है। इसका मूल क्षेत्र अब केवल पोलैंड हैं।

   ग) **दक्षिणी शाखा:** इसकी प्रसिद्ध भाषा बल्गेरियन है। इसके प्राचीन रूप को चचर् स्लैवोनिक कहा जाता है। इसमें बाइबिल का अनुवाद 6वीं सदी के मध्य में हुआ था। वर्तमान बल्गेरियन पूर्णत: वियोगात्मक हो गई है। इसके शब्द ग्रीक, अल्बेनियन, रूमेनियन तथा तुर्की के शब्दों की तरह है। इसका प्रधान क्षेत्र बलगेरिया के अतिरिक्त यूरोपीय तुर्की तथा ग्रीस आदि भी हैं।

4. **आरमेनियन :** कुछ लोग इस शाखा को आर्य शाखा के अंतर्गत रखना चाहते हैं, क्योंकि इसके अनेक शब्द ईरानी से मिलते हैं। परंतु ये शब्द केवल उधार लिये गये हैं। 5वीं सदी में आर्मिनिया पर ईरान के युवराज का राज्य था। इसी कारण इसमें ईरानी शब्दों का बाहुल्य है। इस भाषा की योगात्मकता और ध्वनि आदि ईरानी से नितांत भिन्न है। इसके नवीन रूप का प्रयोग धार्मिक कार्यों में अब भी होता है। इस भाषा को आर्य और ग्रीक के बीच की कड़ी कहा जाता है।

   वर्तमान आर्मेनियन के प्रधान दो रूप हैं। एक का प्रयोग एशिया में होता है और दूसरे का यूरोप में। एशिया में बोली जाने वाली का नामा अरास्ट है और यूरोप में बोली जाने वाली को स्तुंबल कहते हैं। स्तंबुल में साहित्य रचना भी होती है। यही इसकी प्रधान बोली है।

2.2.2 भारत-ईरानी उपवर्ग

शतम् वर्ग की एक महत्वपूर्ण शाखा भारत-ईरानी भाषाओं का है। इसके बोलने वालों की संख्या विश्व की आबादी का लगभग 20 प्रतिशत है। ईरान की फ़ारसी, अफ़गानिस्तान की पश्तो, पाकिस्तान की भाषाएँ, उत्तर भारत की आर्य भाषाएँ, नेपाल की नेपाली, बांग्लादेश की बांग्ला, श्रीलंका की सिंहली भाषाएँ इसी शाखा में आती है।

भारोपीय परिवार की यह महत्वपूर्ण और अत्यंत प्राचीन शाखा है। ऋग्वेद के समान पुराना और समृद्ध साहित्य इस परिवार की किसी अन्य भाषा में नहीं मिलता। इसकी कुछ ऋचाएँ ढाई हज़ार वर्ष ई.पू. की लिखी मानी जाती हैं। पारसियों का धर्म ग्रंथ जेंद अवेस्ता भी लगभग 7वीं सदी ई.पू. का है। इस शाखा की भाषाओं ने भाषा-विज्ञान के अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री प्रदान की है। विद्वानों की मान्यता है कि जब आर्य जाति अन्य भारोपीयों का साथ छोड़ने के बाद आगे बढ़ी तो कुछ लोग ईरान में रुक गये और कुछ आगे बढ़कर भारत में आ बसे। इस प्रकार इसकी भारतीय और ईरानी दो प्रमुख शाखाएँ हो गईं। इन दोनों को भारोपीय परिवार की अलग-अलग शाखा मानना वैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि ये दोनों बहुत सी बातों में साम्य रखती हैं, जिससे स्पष्ट है कि ये दोनों एक शाखा के रूप में थीं। वास्तव में इस शाखा के तीन भाषा समूह हैं :

1. ईरानी
2. दरद
3. भारतीय

1. **ईरानी :** ईरानी भाषा का प्राचीनतम साहित्य पारसी धर्म-गंथ जेंद अवेस्ता है। इसकी भाषा ऋग्वेद से बहुत कुछ मिलती है। इसके अतिरिक्त छठी सदी ई.पू. के कुछ शिलालेख भी ईरानी में मिलते हैं। पश्तू, परतू, बलूची, आधुनिक फारसी आदि इसी शाखा की भाषाएँ हैं। मूल रूप में ईरानी शाखा के दो भेद हैं। ईरानी के ऐतिहासिक क्रम तीन रूप हैं:

   प्राचीन ईरानी

   मध्यकालीन ईरानी

   आधुनिक ईरानी

   हम यहाँ प्राचीन ईरानी की बात करेंगे। इसके भी दो रूप हैं :

   अवेस्ता

   प्राचीन फ़ारसी

   अवेस्ता : ज़रथुश्त्र के उपासक पारसी अवेस्ता को उसी तरह महत्व देते हैं, जैसे भारतीय आर्य वेदों को देते हैं। अवेस्ता का अर्थ है 'शास्त्र' या 'ज्ञान ग्रंथ'। अवेस्ता में गाथाएँ लिखी गई थीं जो वेदों के समान मानी जाती है। अवेस्ताा में ईश्वर को अहुरमज़्दा (असुरमेधा:) कहा गया है। अवेस्ता में सोम, मित्र, वरुण अर्यता आदि देवताओं का उल्लेख है।

   अवेस्ता की भाषा संस्कृत के काफ़ी निकट है। इसमें भी आठ कारक, तीन वचन, तीन लंग हैं। क्रिया रचना में भी साम्य है।

   ध्वनि परिवर्तनों को ध्यान में रखकर देखें तो संस्कृत और अवेस्ता में साम्य देख सकते हैं। जैसे :

अवेस्ता	**संस्कृत**
आ-दिम् पेरेसत् ज़रथुश्त्रो	आ तं (अ)पृच्छत् जरठोष्ट्र :
"को नरै अही?"	"को नरो असि"

[उससे ज़रथुश्त्र ने पूछा – आप कौन पुरुष हैं?]

प्राचीन फ़ारसी भी संस्कृत भाषा से बहुत मिलती थी। यह भाषा साम्य आधुनिक फ़ारसी तक में परिलक्षिता होता है। फ़ारसी के सैकड़ों शब्दों के समान रूप भारतीय भाषाओं में देखे जा सकते हैं। ऐसे शब्द हैं :

कुर्दन (करना), खरीदन (क्रीत), बर्फ़ (वप्र), दस्त (हस्त-हाथ), खुदा (स्वधा), दुख्तर (दुहितृ-पुत्री), अस्व (अश्व), साया (छाया), कुछ उपसर्ग जैसे बे (वि-) जैसे बेचारा, बेकार, पा (पांद-'पैर') जैसे पाजामा।

मध्यकालीन फ़ारसी भाषा का नाम पहलवी है। यह अपभंश से बहुत मिलती है। इसका आरंभिक ग्रंथ महाकवि फ़िरदौसी का शाहनामा है।

आधुनिक ईरानी में फ़ारसी आधुनिक भाषा और बलूचिस्तान की बलूची भाषाएँ शामिल हैं। आधुनिक फ़ारसी ने अरबी लिपि अपनाई है और अरबी भाषा से सैकड़ों शब्द ग्रहण किये हैं। फ़ारसी की अपनी काव्य परंपरा हैं, जो उर्दू भाषा में भी अपनाई गई है।

2. **दरद :** यह संस्कृत का शब्द है, इसका अर्थ पर्वत है। इस परिवार की प्रमुख भाषा कश्मीरी है। इसका प्रभाव मराठी, सिंधी, पंजाबी पर भी है। पश्तो की भाँति दरद भी भारतीय और ईरानी के बीच की भाषा है। पश्तो ईरानी की ओर झुकी है, तो दरद भारतीय की ओर। प्राचीन काल में दरद भाषाओं को भारतीय परिवार का समझा गया था और उन्हें पैशाची प्राकृत की संज्ञा दी गई थी। परंतु अब इसे भारतीय आर्य भाषाओं से भिन्न एक स्वंतत्र उपभाषा माना जाता है।

3. **आर्य :** इस उपवर्ग में कश्मीरी के अतिरिक्त भारत में बोली जाने वाली अन्य आर्य भाषाएँ यथा संस्कृत, हिंदी बांग्ला, गुजराती आदि आती हैं। इस उपवर्ग को इस कारण भारतीय आर्य भाषाएँ (Indo-Aryan languages) भी कहा जाता है।

2 .3 भारतीय आर्य भाषाएँ

भारतीय आर्य भाषाएँ भारतीय उपमहाद्वीप के 5 देशों में बोली जाती हैं, जिनमें पाकिस्तान की उर्दू, नेपाल की नेपाली, बांग्लादेश की बांग्ला और श्रीलंका की सिंहली शामिल है।

इन सब भाषाओं का विकास संस्कृत भाषा से हुआ है, संस्कृत से हिंदी तक के विकास क्रम को हम विस्तार से आगे की इकाइयों में पढ़ेंगे। इस इकाई में आर्य भाषाओं के इतिहास और वर्तमान स्थिति का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

26.3.1 संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय

भारोपीय भाषा परिवार की आर्य उपशाखा की भारतीय आर्य भाषा का परिवार सर्वाधिक महत्वपूर्ण शाखा है। हिंदी का संबंध इसी शाखा से है। भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास लगभग साढ़े तीन हजार वर्षों का इतिहास है। दीर्घकाल को विकास की दृष्टि से तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है।

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल (1500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक)
2. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल (509 ई.पू. से 1000 ई.पू. तक)
3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषा काल (1000 ई.पू. से वर्तमान समय तक)

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का समय 1500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक माना जाता है। विकास की दृष्टि से इस काल की भाषा के दो रूप मिलते हैं।

1. वैदिक संस्कृत
2. लौकिक संस्कृत

वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत

ऋग्वेद की भाषा की तुलना यदि लौकिक संस्कृत से की जाए तो स्पष्ट अंतर प्रातिपादिकों की विभक्तियों में तथा धातु रूपों में मिलता है।

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ लगभग पन्द्रह सौ वर्षों तक इस देश में प्रचलित रही।

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा

आदिकाल (पालि)	मध्यकाल (प्राकृत)	उत्तरकाल (अपभ्रंश)

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का आदिकाल

इस काल के अंतर्गत पालि एवं अशोक के शिलालेखों की भाषाएँ आती हैं। पाली में संस्कृत के ऋ, ॠ, लृ, ऐ और औ स्वर लुप्त हो गए। ह्रस्व ए (ऍ) और ह्रस्व ओ (ऑ) अविर्भाव हो गया। ये ह्रस्व ऍ और ऑ वैदिक संस्कृत की किसी विभाषा में प्राप्त ए हो।

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का मध्यकाल

इसके अंतर्गत विभिन्न साहित्यिक प्राकृतें आती हैं। प्राकृतें विभिन्न जनपदों की लोक भाषाएँ थीं। प्राकृत भाषा के सर्वप्रथम व्याकरण, 'प्राकृत-प्रकाश' में वररुचि ने चार प्राकृत भाषाओं का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया है।

1. महाराष्ट्री 2. पैशाची 3. मागधी 4. शौरसेनी

प्राकृतों के प्रसंग में बहुत से नामों का उल्लेख मिलता है, किंतु पाँच प्रमुख हैं :

1. महाराष्ट्री (महाराष्ट्र)
2. पैशाची (सिंध)
3. मागधी (मगध)
4. शौरसेनी (मथुरा के आस-पास)
5. अर्ध मागधी (कोसल)

जो ध्वनियाँ पाली में थीं, वे ही प्राकृत में भी प्राप्त होती है। सिर्फ शौरसेनी में 'न' के स्थान पर 'ण' और 'य' के स्थान पर 'ज' प्राप्त होता है। मागधी प्राकृत में तालव्य 'श' है, 'स' नहीं।

मध्यकालीन.भारतीय आर्य भाषाओं का उत्तर काल

साहित्यिक प्राकृतों के अनन्तर उनके समकक्ष ही प्रचलित लोक व्यावहारिक भाषाओं का साहित्यिक स्वरूप विविध अपभ्रंशों के नाम से विकसित हुआ। नेमि सिंधु ने अपभ्रंश के तीन भेद किए हैं:

1. उपनागर
2. आभीर
3. ग्राम्य

परवर्ती व्याकरणों ने इन्हीं तीन भेदों को (1) नागर (2) उपनागर (3) ब्राचड़ की संज्ञा दी है। अपभ्रंश के तीन भेद पश्चिमी, पूर्वी और दक्षिणी नाम से भी किए गए हैं। हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण ग्रंथ 'सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन' में अपभ्रंश भाषा के जिस रूप का उल्लेख किया है, वह अन्य व्याकरणों द्वारा उल्लेखित नागर अपभ्रंश का ही रूप कहा जा सकता है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का आरंभ 10वीं शताब्दी से माना जाता है। अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से आधुनिक भारतीय भाषाएँ निकली हैं और उनका विकास अपभ्रंश के रूपों से हुआ है। हम इसके बारे में विस्तार से अगली इकाई में अध्ययन करेंगे।

2.6 सारांश

विश्व के विभिन्न भाषा परिवारों में भारोपीय भाषा परिवार अनेक दृष्टियों से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यद्यपि इस भाषा परिवार के कई नाम प्रचलित हुए परंतु अब सर्वत्र भारोपीय भाषा परिवार स्वीकृत है।

इस भाषा परिवार के अंतर्गत भारत-ईरानी भाषा वर्ग की अपनी अलग विशेषताएँ हैं और इसी की उपयोगिता भारतीय आर्यभाषा परिवार कहलाती है जिसके अंतर्गत भारत में बोली जाने वाली समस्त आर्य भाषाएँ परिगणित की जाती है।

भारोपीय परिवार को ध्वनि व्यवस्था के आधार पर केंतुम और शतम् दो वर्गों में रखा गया है। सामान्यत: केंतुम इस परिवार की पश्चिमी शाखा का प्रतिनिधित्व करती है तो शतम् पूर्वी भाषाओं को संकेतित करती है।

भारतीय आर्य भाषा को ऐतिहासिक दृष्टि से तीन काल खंडों में विभाजित किया जाता है।

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ
2. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ
3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को मध्यकालीन आर्य भाषा के तृतीय सोपान अपभ्रंश से विकसित माना जाता है। दसवीं शताब्दी के आस-पास अपभ्रंश भाषा से आधुनिक अन्य भाषाएँ क्रमश: विकसित हुईं। इन भाषाओं का वर्गीकरण डॉ. ग्रियर्सन, सुनीती कुमार चटर्जी आदि विद्वानों ने किया है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में हिंदी भाषा और साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल में संस्कृत आदि अखिलभारतीय भाषाओं की जो भूमिका थी आज लगभग वही भूमिका हिंदी निभा रही है। जैसे - संस्कृत मूलत: मध्य प्रदेश की भाषा थी और उसके साहित्य के विकास में भारत के सभी प्रांतों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है वैसे ही आधुनिक हिंदी भी मध्य देश की भाषा के कारण अंतर प्रांतीय व्यवहार की भाषा बन गई है और उसके साहित्य के विकास में देश के सभी राज्यों का उल्लेखनीय योगदान है।

अनेक हिंदीतर विद्वानों, कवियों और लेखकों ने न केवल मौलिक साहित्य सृजन कर हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि की अपितु सभी भारतीय भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य का हिंदी में अनुवाद भी किया है। इस प्रकार न केवल हिंदी भाषा अखिल भारतीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है, अपितु उसका साहित्य संपूर्ण साहित्य का प्रतिनिधित्व करता है।

2.7 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के लगभग 250 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1. भारोपीय परिवार के 'केंटुम', 'शतम्' वर्गों का परिचय दीजिए।
2. भारतीय आर्य भाषाओं के विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

निम्नलिखित प्रश्न का लगभग 500 शब्दों में उत्तर दीजिए।

3. भारतीय आर्य भाषाओं का विवरण दीजिए।

इकाई 3 संस्कृत से अपभ्रंश तक

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 संस्कृत

3.2.1 नामकरण

3.2.2 संस्कृत साहित्य

3.2.3 भाषा अध्ययन

3.2.4 संस्कृत भाषा का परिचय

3.3 पालि

3.3.1 नामकरण

3.3.2 पालि साहित्य का उद्भव और विकास

3.3.3 भाषा का परिचय

3.4 प्राकृत

3.4.1 नामकरण और क्षेत्र

3.4.2 साहित्य का परिचय

3.4.3 भाषा का परिचय

3.5 अपभ्रंश

3.5.1 नामकरण

3.5.2 साहित्य का परिचय

3.5.3 भाषा का परिचय

3.5.4 अपभ्रंश और हिंदी साहित्य का संबंध

3.6 सारांश

3.7 अभ्यास प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस खंड की 27 वीं इकाई 'संस्कृत से अपभ्रंश तक' में प्राचीन भारतीय भाषाओं के उद्भव एवं विकास तथा उनकी व्याकरणिक संरचना का परिचय दिया गया है। इस इकाई में आप संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के चरणबद्ध विकास का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- संस्कृत के साहित्यिक एवं भाषिक पक्ष का अध्ययन कर सकेंगे;
- संस्कृत के व्याकरणिक पक्ष का अध्ययन करके अन्य परवर्ती भाषाओं के साथ उसके तादात्म्य को समझ सकेंगे;
- पालि भाषा का इतिहास, उसकी व्याकरणिक संरचना, तथा पालि साहित्य के विभिन्न पक्षों की जानकारी पा सकेंगे;
- पालि और प्राकृत के नामकरण की व्याख्या कर सकेंगे तथा पालि प्राकृत के अंतर को समझा सकेंगे;
- प्राकृत भाषा और साहित्य का अध्ययन करने के बाद आपको यह समझने में आसानी होगी कि किस तरह एक भाषा और साहित्य अपने पूर्ववर्ती एवं परवर्ती भाषा और साहित्य को प्रभावित करते हैं;
- अपभ्रंश की भाषागत विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे;

- हिंदी साहित्य एवं भापा तथा अपभ्रंश साहित्य एवं भापा के संबंधों को बता सकेंगे;
- भापा के क्रमिक विकास एवं उनमें होनेवाले परिवर्तनों को समझा सकेंगे;
- इकाई में दिए गए चारों साहित्यों का अध्ययन तथा उनकी परंपरा का निर्धारण कर सकेंगे।

3 .1 प्रस्तावना

'संस्कृत से अपभ्रंश तक' नामक इस इकाई में प्राच्य भारतीय भाषाओं तथा साहित्य की विविध विधाओं का सामंजस्य किया गया है। भारतीय साहित्य में अधिकाधिक अध्ययन सामग्री हमें संस्कृत पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश के साहित्य से मिलती है, जिसमें गद्य, पद्य, साहित्य, व्याकरण आदि का समावेश पूर्ण रूप से है। यदि हम संस्कृत भापा और साहित्य का अध्ययन करें तो हमें इसमें प्रचुर साहित्य का भंडार मिलता हैं। संस्कृत के विद्वानों माघ, कालिदास, दण्डी, भामह, पाणिनी तथा पतंजली आदि का अक्षय भंडार हमें भारतीय कला, साहित्य दर्शन एवं व्याकरण में मिलता है।

किसी भी पूर्ववर्ती भाषा का विकास उसकी परवर्ती भापाओं पर अमिट छाप छोड़ता है। यदि हम संस्कृत की परवर्ती भापाओं, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश से होते हुए हिंदी भापा पर विचार करें तो उपर्युक्त सभी भाषाओं पर संस्कृत का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। जब संस्कृत भापा और साहित्य अपने चरमोत्कर्ष पर थी, तब वह सामान्य जन की भी भाषा बनी। बौद्ध धर्म के उदय के साथ पालि भापा का विकास हुआ और उसमें बहुत से महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना हुई, जिसमें बुद्ध के उपदेश के संकलन को त्रिपिटक नाम दिया गया। इसकी भाषा पालि थी बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार में बौद्ध भिक्षुओं के भ्रमण से बौद्ध धर्म पूरे विश्व में फैला और इसी के साथ पालि भाषा का भी विस्तार हुआ।

पालि भापा जब उच्च वर्ग की भाषा बन गई, तब प्राकृत भाषा का जन्म हुआ, जो उस समय जनता की भापा बन गई। लेकिन आगे चलकर जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी ने इसे प्रोत्साहित किया और इस भाषा में साहित्य की रचना हुई तथा इसका व्याकरण भी बनाया गया। प्राकृत में कच्चायन व्याकरण काफी समृद्ध और महत्वपूर्ण व्याकरण माना जाता है। प्राकृत के कई क्षेत्रीय रूप विकसित हुए।

प्राकृत जब जन भाषा बनी और उसमें जन साहित्य की रचना होने लगी, तब यह धीरे-धीरे समूचे भूमंडल पर फैली और इसी से अपभ्रंश भाषा का प्रचार हुआ। प्राकृत के विभिन्न रूपों से अपभ्रंग के भी कई क्षेत्रीय रूप विकसित हुए। अपभ्रंश में सर्वप्रथम साहित्य रचना विद्यापति पदावली में मिलती है। इसके साहित्य में मधुरता और गेयता भरपूर मिलती है। जन भाषा होने के कारण इसका प्रचार-प्रसार विस्तृत भू-भाग में हुआ। उसके भापिक रूप में भी परिवर्तन आया, अपभ्रंश अपनी साहित्यिक और भापिक विशेषताओं के कारण भारतीय आर्य भापाओं के संपर्क में आयी और धीरे-धीरे इसका स्वरूप बदलता गया। यह अपने परिवर्तित स्वरूप और जन साहित्य की भाषा होने के कारण आधुनिक आर्य भापाओं के निकट आयी।

3 .2 संस्कृत

संस्कृत भारतीय आर्य भापा की सबसे प्रमुख और सबसे पुरानी भाषा है। यही सारी भारतीय भाषाओं के साहित्य और व्याकरण का उत्स है। इसके काल का प्रश्न अनुत्तरित है। परंपरागत भाषावैज्ञानिक इसे अनादि मानते हैं। इसके मूल के बारे में भी गहरा विवाद है। कुछ विद्वान इसे बाहर से आयी हुई भाषा कहते हैं, भारतीय विद्वान इसी भूमि से इसका उद्भव मानते हैं।

3.2.1 नामकरण

संस्कृत, ग्रीक, लैटिन भापाएँ भारोपीय भापा संसार के वृहद् परिवार का आदि कालीन भाषाएँ हैं। पहले इनकी मूल स्थिति बोलचाल की भाषाओं के रूप में थी। तत्कालीन बोलचाल की भापाओं की ये उपभाषाएँ या प्रशाखाएँ भी थीं। प्राचीन जीवित भाषाओं के शब्दों को लेकर वैयाकरणों ने उन्हें विशिष्ट नियमों से बाँध दिया। इन विशिष्ट नियम से बँधा स्थिर स्वरूप ही संस्कृत, ग्रीक तथा लैटिन के निर्माण और विकास का कारण हुआ।

संस्कृत का अर्थ है, सम + कृ + क्त अथवा परिष्कृत, निर्दोष और शुद्ध भाषा। इसी कारण आचार्य दण्डी ने अपने काव्यादर्श में इसे देववाणी के नाम से अभिहित किया है। **'संस्कृत नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिः'** इसे देव भाषा, दैव वाणी, गीर्वाण वाणी आदि नामों से भी पुकारा गया है।

प्राचीन काल में संस्कृत भाषा का स्वरूप व्याकरण के नियमों से अधिक बँधा नहीं था। "छन्दसि बहुलम" इस सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक भाषा में जना: जनास: आदि व्याकरण के नियम विकल्प से लगते थे। पाणिनि के समय (ई. पूर्व 500 ई. पू.) यह भाषा व्याकरण के नियमों से बँधकर परिभाषित रूप में विकसित हुई और इसका नाम संस्कृत पड़ा। यहां संस्कृत शब्द का तात्पर्य है सुगठित, सँवारी हुई आदि।

द्वितीय सहस्राब्दी ई. पू. में किसी समय भारत यूरोपीय जातियों ने ईरान, एशिया माइनर और उत्तर पश्चिम भारत के विस्तृत भूभागों पर अपना अधिकार जमा लिया था। उनकी गतिविधियों और वंशमूलक संबंधों की समस्याओं का आज तक समाधान नहीं हो पाया है। लेकिन भाषागत प्रमाणों के आधार पर हम एक मानव समुदाय की कल्पना कर सकते हैं, और उसे आर्य नाम दे सकते हैं। उसी मानव समुदाय की भाषा को हम भारत और ईरान की भाषाओं की मूल भाषा कह सकते हैं। इन भारतीय भाषाओं के संबंध में प्राचीनतम साक्ष्य ऋग्वेद है। संस्कृत में वैयाकरणों ने अनियमित प्रयोगों के पृथक्करण और वैकल्पिक रूपों के अप्रयोग के मार्ग को अपना लिया, लेकिन उन्होंने किसी नवीन शब्द रूप को कदाचित ही प्रचलित होने दिया। इस प्रकार उन्होंने एक सुव्यवस्थित और विशुद्ध भाषा को जन्म दिया, जो सच्चे अर्थों में 'संस्कृत' थी।

रामायण में भी उसे संस्कृत कहा गया है। भाषा की विशुद्धता की रक्षा में याज्ञिक धर्म ने भी महत्वपूर्ण भाग लिया। इस बात की पुष्टि महाभाष्य में पतञ्जलि (150 ई.पू.) के इस कथन से भी होती है कि किसी समय कुछ ऐसे ऋषि अपनी बोलचाल की भाषा में यद्, वा, नस् के स्थान पर यर्, वा, णस् जैसे अपशब्दों का प्रयोग करते थे। वैयाकरणों के निष्कर्षों को चौथी शताब्दी ई.पू. में पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' में संकलित किया गया है।

3 .2.2 संस्कृत साहित्य

संस्कृत संसार की प्राचीनतम परिष्कृत भाषा है। भारतीय मनीषियों का समस्त चिंतन-मनन, शोध और उसका विश्लेषण संस्कृत भाषा में ही है। भारत के साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक जीवन की व्यवस्था भी इसी भाषा में प्राप्त होती है। भारत की समस्त प्रांतीय भाषाओं में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। संस्कृत भाषा का साहित्य अत्यंत विस्तृत एवं समृद्ध है। साहित्य शब्द का अर्थ है शब्द और अर्थ का समन्वय। 'सहितयोः शब्दार्थयोः भावं साहित्यम्'। व्यापक अर्थ में साहित्य से अभिप्राय उन ग्रंथों से है जो किसी भाषा विशेष में रचे गए हैं। अंग्रेजी भाषा में 'लिटरेचर' शब्द से भी यही अर्थ ग्रहण किया जाता है। लेकिन यदि हम उसका संकुचित अर्थ लें तो साहित्य शब्द का प्रयोग काव्यादि के लिए भी किया जाता है। काव्य आदि केवल मनोरंजन के साधन नहीं हैं। मानव समाज एवं जीवन के लिए काव्य की बहुत उपादेयता है। भर्तृहरि ने तो साहित्य काव्यादि से विहीन व्यक्ति को मनुष्य न मानकर पशु कहा है। साहित्य समाज को प्रतिफलित करता है। साहित्य ही संस्कृति का वाहक और धारक है। साहित्य समाजिक भावना तथा सामाजिक विचार की विशुद्ध अभिव्यक्ति होने के कारण, यदि समाज का आईना है, तो सांस्कृतिक आचार और विचार का प्रबल प्रचारक होने के लिए संस्कृति के संदेश को जनता के हृदय तक पहुँचाने के कारण साहित्य संस्कृति का वाहक होता है। विश्व की अन्य भाषाओं की तरह संस्कृत साहित्य भी इन सभी विशेषताओं से युक्त है। लेकिन संस्कृत साहित्य की अपनी कुछ विशिष्ट विशेषताएँ हैं, जिनके कारण वह आज भी गौरवान्वित है। प्राचीनता, व्यापकता, विशालता धार्मिकता, सांस्कृतिक तत्व रसोन्मेषकारिणी कला इन सभी दृष्टियों से संस्कृत साहित्य अनुपम रहा है। प्राचीनता की दृष्टि से देखने से यह पता चलता है कि पाश्चात्य एवं पूर्ववर्ती सम्पूर्ण विद्वत् जगत 'ऋग्वेद' को विश्व का सर्वप्राचीन ग्रंथ स्वीकार करता है। सामान्यतया संस्कृत साहित्य में धार्मिक ग्रंथों का बाहुल्य माना जाता है। मनुष्य के प्राप्तव्य चार लक्ष्यों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का सुन्दर समन्वित विकास संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होता हैं।

इससे स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य जीवन के केवल आध्यात्मिक पक्ष को ही चित्रित नहीं करता, बल्कि लौकिक अथवा भौतिक पक्ष को भी समान रूप से चित्रित करता है। संस्कृत साहित्य में 'सत्यं शिवं सुंदरम्' का अद्भुत एवं प्रीतिकर समन्वय एवं सामंजस्य उपलब्ध होता हैं। 'वाक्यं रसात्मकम् काव्यम्' के

रूप में भी संस्कृत साहित्य ने औचित्य तथा आनंद को एक साथ स्थापित किया।

इतने प्राचीन व्यापक तथा विशाल संस्कृत साहित्य के स्वरूप तथा समय आदि की दृष्टि से इसे दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(1) वैदिक संस्कृत

(2) लौकिक संस्कृत

वैदिक साहित्य में संहिता, आरण्यक, उपनिषद् तथा वेदांग आते हैं और लौकिक साहित्य में काव्य, नाटक, गद्य, कथा, गीति तथा चंपू ग्रंथों को लिया जाता है। संस्कृत साहित्य के इन दोनों भागों में वैदिक तथा लैकिक भाषा में वर्ण्य विषय, व्याकरण, छंद आदि की दृष्टि से पर्याप्त परस्पर भिन्नता है। दोनों का अलग-अलग विस्तार इतना अधिक है कि दोनों भागों के इतिहास पर विद्वानों ने बृहदाकार ग्रंथ लिखे हैं। इसमें हम वैदिक तथा लौकिक भाग का संक्षिप्त लेकिन सारगर्भित अंश आपको देंगे, जिससे आपको संस्कृत की मुख्य परंपरा को समझने में आसानी होगी। आप संस्कृत की पूर्ण परंपरा को समझ सकेंगे और उसपर अपना विचार प्रस्तुत कर सकेंगे।

वैदिक साहित्य

यह सर्वविदित तथ्य है कि संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा मानी जाती है और वैदिक संस्कृति संसार की प्राचीनतम संस्कृति। वैदिक साहित्य के सर्वप्रथम ग्रंथ वेद हैं। भारतीय संस्कृति के इतिहास में इसका अत्यंत महत्वपूर्ण एवं गौरवपूर्ण स्थान है। वेद शब्द विद्-ज्ञान सत्तायां लामे च विचारणे विद् धातु में घञ् प्रत्यय जोड़कर बनाया गया है जिसका अर्थ ज्ञान है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपनी ऋग्वेद भाष्य भूमिका में वेद शब्द को 'विदत्ति जानन्ति, विद्यते भवन्ति', आदि इस प्रकार व्याख्या की है। अर्थात् जिनके द्वारा या जिनमें सारी सत्य विधाएँ जानी जाती हैं, विद्यमान, हैं या प्राप्त की जाती हैं, वही वेद है। सायणाचार्य ने वेद की व्याख्या करते हुए बताया है कि इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट परिहार के अलौकिक उपाय को बतलाने वाला ग्रंथ वेद है। वेदों को संहिता भी कहा जाता है। वेद की व्युत्पत्तियों से यह सिद्ध होता है कि वेद ज्ञान के वे अक्षय कोष हैं, जिनमें सभी विषयों का समावेश है। मनुस्मृति में कहा गया है कि वेद समस्त धर्म का मूल है। वेद परमात्मा के निःश्वास माने जाते हैं। वेदों का साहित्यिक महत्व भी कुछ कम नहीं है। महाकाव्य, गीतिकाव्य, ऐतिहासिक काव्य, गद्य, नाट्य, आख्यान साहित्य इत्यादि काव्य की सभी विधाओं की उत्पत्ति में वेदों का सक्रिय योगदान रहा है। सभी प्रकार का ज्ञान विज्ञान वेदों में ही निहित है। इहलौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों की प्राप्ति के स्थान वेद ही हैं।

वैदिक साहित्य के चार वेदों के अलावा ब्राह्मण, आरण्यक और वेदांग भी वैदिक साहित्य में समाविष्ट हैं।

(1) ऋग्वेद

(2) सामवेद

(3) यजुर्वेद

(4) अथर्ववेद

वेद का काल निरूपण

वेद का रचनाकाल निश्चित करने के प्रयास में अनेक कठिनाइयाँ हैं। उसमें प्रामाणिक अंतः साक्ष्य और बहिः साक्ष्य का प्रायः अभाव है। किसी प्रकार की तिथि अथवा संवत्सर का भी कोई उल्लेख नहीं हैं। वेदों के समय की पूर्व सीमा जानने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि ऋग्वेद स्वयं ही मानव जाति का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ है। मैक्समूलर ने वेद की रचना बुद्ध से पूर्व रचित होने के कारण इसके सूत्रकाल का प्रारंभ 600 विक्रमपूर्व माना है। उन्होंने माना है कि :

1. विक्रमपूर्व 1200 से 1000 छन्दः काल - ऋग्वेद तथा सामवेद
2. विक्रमपूर्व 1000 से 800 मंत्रकाल - यजुर्वेद तथा अथर्ववेद
3. विक्रमपूर्व 800 से 600 ब्राह्मण काल - ब्राह्मण ग्रंथ तथा उपनिषद्

4. विक्रमपूर्व 600 – सूत्रकाल – सूत्र साहित्य (वेदांग)।

सामवेद में ऋग्वेद के मंत्रों को स्वर सहित उच्च ध्वनि से गाने की विधि दी गई है। इसमें देवताओं की स्तुति की जाती है। यजुर्वेद में इस बात का विवरण है कि ऋचाओं यानी ऋग्वेद के अंगों का यज्ञों में किस प्रकार और किस प्रयोजन से विधिवत् प्रयोग किया जाए।

अथर्वेद में जीवन के भौतिक तत्वों का वर्णन है।

ब्राह्मण ग्रंथ वेदों की रचना के बाद लिखे गए और इनके रचना काल के बारे में भी निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। ब्राह्मण ग्रंथ वेदों के वर्व्य को बढ़ाते हैं और व्याख्या द्वारा उनका विस्तार करते हैं। चारों वेदों के नौ ब्राह्मण ग्रंथ हैं।

आरण्यक ग्रंथों में यज्ञ की आध्यात्मिकता का वर्णन है। आज आठ आरण्यक ग्रंथ उपलब्ध है। उपनिषदों को वेदों का निचोड़ कहा जाता है, जो आत्मतत्व और ब्रहमज्ञान का विवेचन करते हैं। यों कह सकते हैं कि वेदों (संहिताओं) और ब्राह्मणों मे यज्ञ के कर्मकांडीय पक्ष का सन्निवेश है, तो आरण्यों और उपनिषदों में यज्ञ के ज्ञान के आध्यात्मिक पक्ष का समाहार है। इस तरह चारों तरह के ग्रंथ कर्म मार्ग और ज्ञान मार्ग का समन्वय करते हैं। चारों वेदों से संबंधित 108 उपनिषदों का उल्लेख है, आज लगभग 20 ग्रंथ उपलब्ध हैं। प्रमुख उपनिषद हैं केन, तैत्तरीय कठ, मुंडक, प्रश्न ऐतरेय छांदोग्य।

वेदांग वैदिक साहित्य की अंतिम कड़ी हैं। कुल छह वेदांग हैं जिनके कर्ण्य का आगे उल्लेख किया जा रहा है।

1) शिक्षा - वेद पाठ के उच्चारण की शिक्षा

2) कल्प - यज्ञ के विधि-विधान, कर्मानुष्ठान का ज्ञान

3) व्याकरण - वेद की भाषा का रचना और अर्थ संबंधी विवेचन

4) निरूक्त - शब्द ज्ञान और शब्द की व्युत्पत्ति

5) ज्योतिष - यज्ञ की सफलता के लिए अनुकूल तिथि, समय की गणना

6) छन्द - वैदिक छन्दों का वर्णन।

लौकिक साहित्य

लौकिक साहित्य के बाद लगभग ई.पू. 500 से लौकिक साहित्य का समय शुरू होता है। लौकिक साहित्य में निम्नलिखित शामिल हैं।

1. इतिहास और पुराण
2. कथा साहित्य और काव्य (श्रव्य काव्य)
3. रूपक और नाट्यशास्त्र (दृश्य काव्य)
4. भाषा संबंधी साहित्य (छन्द, व्याकरण, काव्य शास्त्र)
5. दर्शन
6. वाङ्मय (धर्म, अर्थ, काम संबंधी शास्त्र; चिकित्सा, गणित, ज्योतिष आदि।)

इतिहास ग्रंथ

वाल्मीकिकृत रामायण और व्यासकृत महाभारत को इतिहास ग्रंथ माना जाता है ये दोनों लौकिक संस्कृत की दो प्रथम कृतियाँ है और रामायण को संस्कृत का 'आदि काव्य' कहा जाता है। 'इतिहास' का शाब्दिक अर्थ है 'ऐसा था'। इस दृष्टि से ये दोनों ग्रंथ पूर्ण रूप से इतिहास के ग्रंथ न होते हुए भी, न सिर्फ़ धार्मिक या आध्यात्मिक ग्रंथ थे, न काल्पनिक कथाएँ। हम यह मानते हैं कि राम और कृष्ण अवतार थे, धरती पर धर्म की रक्षा के लिए उनका अवतार हुआ था और इन ग्रंथों में उनके जीवन का आख्यान हैं।

रामायण का रचना काल भी पर्याप्त विवाद का विषय रहा है। भारतीय तथा पश्चात्य विद्वानों ने रामायण के रचना काल को निर्धारित करने का पर्याप्त प्रयत्न किया, लेकिन किसी एक समय को मानने में सभी एकमत नहीं हैं। परम्परागत विश्वासों से परे यदि हम तार्किक बुद्धि का आश्रय लें, तो रामायण का वर्तमान परिनिष्ठित स्वरूप ईसा पूर्व 5वीं शती तक स्थिर होने के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं अर्थात् बुद्ध से पहले वाल्मीकि रामायण का वर्तमान रूप स्थिर हो चुका था।

भारतीय जनमानस की धार्मिक आस्था का मुख्य आधार यह रामायण तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, परिस्थितियों पर विशद प्रकाश डालता है। भारत में राष्ट्रीय जीवन के निर्माण में रामायण का बहुत बड़ा योगदान है।

रामायण की लोकप्रियता में उसकी सहज शैली, असाधारण वर्णन शक्ति एवं जीवंत चरित्र चित्रण का भी बहुत बड़ा योगदान है। इस महाकाव्य में सभी रस प्राप्त होते हैं। वाल्मीकि रामायण का प्रचार-प्रसार केवल भारत वर्ष तक ही सीमित नहीं है। यह संपूर्ण भारत में लोकप्रिय होकर जावा, सुमात्रा, बाली, स्याम, आदि देशों तक फैला। वाल्मीकि रामायण का भारत के परवर्ती साहित्य के ऊपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा और सभी भाषाओं के प्रसिद्ध कवियों, नाटककारों तथा चंपू रचनाकारों ने अपनी रुचि के अनुसार रामायण के विभिन्न अंशों को ग्रहण किया।

महाभारत में तत्कालीन साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि विषयों का समावेश है। महाभारत एक अत्यंत श्रेष्ठ आचार संहिता का भी निदर्शन उपस्थित करता है। महाभारत के रचयिता परम्परा से व्यास मुनि माने जाते हैं। इनका पूरा नाम कृष्ण द्वैपायन व्यास था। महाभारत के अंत:साक्ष्य से प्रमाणित है कि व्यास कौरवों और पांडवों के जीवन की सभी प्रमुख घटनाओं से प्रत्यक्षत: परिचित रहे। वर्तमान महाभारत में एक लाख श्लोक प्राप्त होते हैं इसलिए इसका नाम 'शतसाहस्री संहिता' भी है। महाभारत का रचना काव्य अत्यंत विवादास्पद रहा है। ये श्लोक संभवत: एक ही बार नहीं किये गये बल्कि सैकड़ों वर्षों की अवधि में इसके श्लोक जुड़ते गये, जिस कारण इसके तीन रूप बने। प्रारंभिक लघु रूप (जय), विस्तृत रूप (भारत) और वर्तमान रूप (महाभारत)।

पुराण

इतिहास ग्रंथों के बाद लौकिक साहित्य में महत्वपूर्ण ग्रंथ पुराण हैं। पुराण धार्मिक ग्रंथ हैं। ये अवतारों और धार्मिक कथाओं के काव्य हैं। 'पुराण' का तात्पर्य है 'प्राचीन'। इससे इनको रचना काव्य का थोड़ा संकेत मिलता है। ई.पू. 300 से लेकर ई 15 वीं सदी तक पुराण लिखे गये और इनके कलेवर में प्रक्षेपण (परवर्ती लेखकों द्वारा अंश जोड़ा जाना) के कारण विस्तार, परिवर्तन भी होता गया। आज 18 पुराण प्राप्त हैं – मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, भागवत, ब्रह्मांड, ब्रह्मवैवर्त, विष्णु, नारद, गरुड, वायु, अग्नि, पद्म, लिंग, स्कंद और भविष्यत्। इनमें भागवत सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जो परवर्ती कृष्ण भक्ति साहित्य का प्रेरणा स्रोत है। विष्णु और नारद पुराण में भक्ति के दार्शनिक पक्ष का विवेचन है।

संस्कृत काव्य

साहित्य शास्त्रियों ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। इस काव्य के मुख्यतया दो भेद किए गए हैं। दृश्य काव्य तथा श्रव्य काव्य जिसका विवरण नीचे गया है।

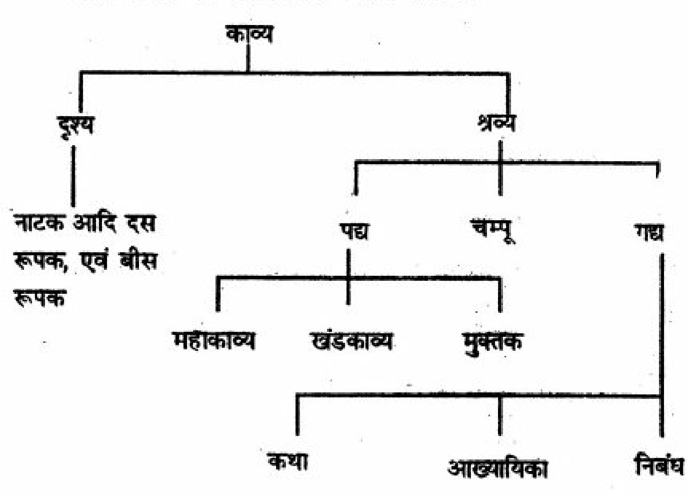

संस्कृत के साहित्यकारों में कालिदास का नाम अग्रगण्य है। इनका समय विवादस्पद है और अनुमानत: वे ई. पहली सदी से छठी सदी के बीच रहे होंगे। कुमार संभव और रघुवंश इनके महाकाव्य हैं। 'अभिज्ञान शाकुंतलम', 'मालविकाग्नि मित्रम' और 'विक्रमोर्वशीयम' इनके नाटक हैं और 'मेघदूत' और 'ऋतु संहार' इनकी काव्य कृतियाँ हैं। अन्य प्रमुख साहित्यकार हैं भारवि ('किरातार्जुनीयम्) माघ (शिशुपाल वधम्)। कवि बाणभट्ट ने गद्य में 'कादम्बरी' नामक कथा लिखी, जो विश्व का पहला उपन्यास माना जा सकता हैं। उन्हीं का 'हर्ष चरित' संसार की पहली जीवनी भी है।

ज्योतिष, गणित, चिकित्सा शास्त्र आदि क्षेत्रों में लौकिक संस्कृत में मौलिक और विपुल साहित्य प्राप्त होता है।

3.2.3 भाषा का अध्ययन

भारतीय वाङ्मय के अध्ययन-अनुशीलन से विदित होता है कि ऋषि मुनियों के समय तक व्याकरण शास्त्र की अनेक विधाएँ प्रकाश में आ चुकी थीं। गार्ग्य, गालव, शाकटायन, शाकल्य आदि भाषा शास्त्रियों द्वारा प्रवर्तित व्याकरण शास्त्र की यह महान् थाती पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि के हाथा में आयी। भाषा का जो विस्तृत स्वरूप तत्कालीन भारत की करोड़ों जनता द्वारा बोला जाता था, उसे इस मुनित्रय ने अपनी महान् कृतियों में बाँधा। उनके बाद संस्कृत के सैकड़ों वैयाकरणों ने वार्तिक, वृत्ति, व्याख्या और टीकाओं द्वारा व्याकरण ज्ञान की इस परंपरा को आगे बढ़ाया। वार्तिक, वृत्ति आदि मूल व्याकरण ग्रंथों की व्याख्या करते हैं और व्याकरण के दार्शनिक चिंतन के पक्ष को उभारते हैं।

पाणिनि और उनकी कृत्ति अष्टाध्यायी

संस्कृत में व्याकरण चिंतन वेदों जितना पुराना है। हमने वेदांगों की चर्चा के संदर्भ में चर्चा की थी कि उच्चारण, शब्द निर्माण, वाक्य की अभिव्यक्ति, शब्दार्थ, छंद आदि को वेदांगों में स्थान दिया गया। लेकिन वेदों की संस्कृत भाषा में काल गति के कारण परिवर्तन हुए और विविध प्रयोगों के स्थान पर मानकीकरण की आवश्यकता पड़ी। पाणिनि ने इसी परिप्रेक्ष्ण में प्रख्यात संस्कृत व्याकरण 'अष्टाध्यायी' का प्रणयन किया, जो लौकिक संस्कृत का अत्यंत संक्षिप्त, सूत्रबद्ध, वैज्ञानिक व्याकरण है। इसकी वैज्ञानिकता ने विश्व भर के भाषावैज्ञानिकों को चमत्कृत कर दिया। यह माना जाता है कि पाणिनि के व्याकरण के सूत्र सीधे कंप्यूटर के प्रोग्राम के रूप में व्यवहार में लाये जा सकते हैं।

पाणिनी ने आठ अध्यायों में निबद्ध 'अष्टाध्यायी' में व्याकरणिक नियमों और अपवादों का विस्तृत वर्णन नहीं दिया है, बल्कि शब्द और वाक्य की रचना को 4000 सूत्रों में प्रस्तुत किया। इनके 14 मूलभूत सूत्र हैं, जिनमें हम माहेश्वर (महेश्वर की कृपा से प्राप्त) सूत्र कहते हैं। इन सूत्रों को समझना भी कठिन है, इसीलिए इनकी व्याख्या करते हुए अन्य वैयाकरणों ने कारिका, वृत्ति आदि व्याख्या के ग्रंथ लिखे। 'सिद्धांत कौमुदी' और उसकी भी व्याख्या करने वाली 'लघु सिद्धांत कौमुदी' आदि पाणिनि के व्याकरण के व्याख्या ग्रंथ है।

कात्यायन

महाभारत में कात्यायन को एक वर्तिकार के रूप में स्मरण किया जाता हैं किंतु कात्यायन का नाम व्याकरणशास्त्र के महान् प्रतिभाशाली आचार्य पाणिनि और महाभाष्यकार पतंजलि के साथ लिया जाता है। इस मुनित्रय की व्याप्ति और ख्याति व्याकरण शास्त्र के चारों ओर बिखरी पड़ी है। कात्यायन ने पाणिनि व्याकरण की पूर्ति के लिए वार्तिकों की रचना की थी। इन वार्तिकों की मान्यता पाणिनि के सूत्रों जैसी ही है। इनका पूरा नाम वररुचि कात्यायन था। कात्यायन शाखा का अध्ययन महाराष्ट्र में प्रचलित है, इसलिए लगता है कि कात्यायन दाक्षिणात्य थे। इनका समय 2700 वर्ष वि. रखा गया है।

इन्होंने काव्य, नाटक, व्याकरण, धर्मशास्त्र आदि कई विषयों पर ग्रंथ लिखे हैं जिनमें प्रमुख वार्तिक पाठ, स्वर्गारोहण काव्य, भ्राज संज्ञक श्लोक, स्मृति कात्यायन और उभय सारिका भाज।

पतंजलि

पतंजलि एक महान् विचारक मनस्वी विद्वान थे। व्याकरण के क्षेत्र में नए युग का आरंभ कर अपनी असामान्य प्रतिभा की छाप वे आगे की पीढ़ियों पर छोड़ गये। उनको पाणिनीय व्याकरण का अद्वितीय व्याखाता कहा जाता है। पाणिनि के वे कटु आलोचक थे। इस प्रकार की निर्भीकता और स्वच्छ आचरण

ही पंडित्य का अलंकरण होता है। पाणिनि के विवेक, व्यक्तित्व और विचारों ने पतंजलि को इतना ऊँचा उठाया, इसकी अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त है कि उन्होंने पाणिनि को चमकाया।

पतंजलि व्याकरण के साथ-साथ सांख्य, योग, न्याय, आयुर्वेद, कोशकला, रसायन आदि के अधिकारी विद्वान थे। अनेक विद्वानों ने प्रामाणिक रूप से पतंजलि का जन्म 1200 वि. पूर्व माना है। लेकिन कुछ विद्वानों ने इस मत का विरोध किया है। उनके विभिन्न कृतियों का उल्लेख मिलता है, जिसमें महानंद काव्य, चरक परिष्करण ग्रंथ, कोश ग्रंथ, सांख्य शास्त्र, रस शास्त्र और लौह शास्त्र। इसके अतिरिक्त तीन अन्य ग्रंथ भी हैं, सामवेदीय निदान सूत्र, योग सूत्र और महाभाष्य 'महाभाष्य'। व्याकरणशास्त्र का विश्वकोश है।

इन वैयाकरणों के अतिरिक्त वररुचि, शवरस्वामी, हर्षवर्धन, शांतनवाचार्य और शन्तनु आदि वैयाकरणों ने लिंगानुशासन, गणपाठ, उणादि सूत्र, फिट् सूत्र और धातु पाठ आदि विभिन्न ग्रंथों को लिखकर व्याकरण शास्त्र का सर्वांगीण विकास किया।

व्याकरणशास्त्र का सर्वेक्षण करने पर हमें ऐसा लगता है कि संसार के किसी भी साहित्य में भाषाशास्त्र पर इतना गंभीर विचार नहीं किया गया है।

27.2.4 संस्कृत भाषा का परिचय

वाक्य संरचना: हिंदी की तरह संस्कृत में भी वाक्य कर्ता, कर्म, क्रिया आदि पदबंधों से मिलकर बनता है।

रामः फलं खादति।

राम फल खाता है (या) खा रहा है।

(संस्कृत में फल कर्म तथा द्वितीया विभक्ति है)

संस्कृत में पदक्रम बहुत लचीला है। इसे बिना अर्थ में परिवर्तन किए हम अंग्रेजी Mohan killed Sohan को Sohan killed Mohan के पदक्रम से नहीं बदल सकते, क्योंकि कर्ता और कर्म बदल जाते हैं। संस्कृत में हम पदक्रम बदलकर वाक्य बना सकते हैं और उनके अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता है जैसे :

रामेण रावणः हतः।

रामेण हतः रावणः।

रावण रामेणः हतः। अर्थात रावण राम से मारा गया (या) राम ने रावण को मारा।

संस्कृत के इन वाक्यों में राम कर्ता है तथा वाच्य के कारण तृतीया विभक्ति में है। 'रावण' कर्म है तथा प्रथमा विभक्ति में है।

इसका एक प्रमुख कारण है संस्कृत का हर संज्ञा शब्द अपने कारकीय संबंध के साथ प्रकट होता है। 'बालकः' कर्ता कारक है, 'बालकम्' कर्म कारक है। इसलिए वाक्य में पद वाक्य में कहीं भी आएँ, अपने कारकीय संबंध प्रकट करते हैं और अर्थ की अभिव्यक्ति में कोई कठिनाई नहीं होती। आगे हम संज्ञा शब्दों के कारकों की रचना का परिचय प्राप्त करेंगे।

संस्कृत के संज्ञा रूप

संस्कृत भाषा के सभी शब्दों का निर्माण धातु (root) याने शब्द के मूल रूप तथा प्रत्ययों के जोड़ से होता है। संज्ञा पदों का निर्माण सुप् प्रत्यय (सुबंत) जोड़ने से होता है और क्रिया पदों का निर्माण तिङ् प्रत्यय (तिड़ंत) जोड़ने से। धातु रूप की अंतिम ध्वनि के आधार पर अलग-अलग प्रत्यय जुड़ते हैं।

संस्कृत के संज्ञा धातु कई प्रकार के हैं। इन्हें 'गण' की संज्ञा दी जाती है। जैसे राम शब्द अकारांत है, मुनि शब्द इकारांत है संस्कृत में तीन लिंग भी हैं। लिंग के अनुसार भी शब्द रूप अलग हो जाते हैं जैसे 'पति' पुल्लिंग इकारांत शब्द है। 'मति' इकारांत स्त्रीलिंग शब्द है और वारि (पानी) इकारांत नपुंसक लिंग है। इनकी रूपावालियाँ अलग हैं।

संज्ञा पद और कारक

संस्कृत के संज्ञा शब्द सभी तीन वचनों में प्रयुक्त होते हैं।

कर्ता	एकवचन	-	बालकः	एक लड़का
	द्विवचन	-	बालकौ	दो लड़के
	बहुवचन	-	बालकाः	कई लड़के (तीन या अधिक)

हर वचन के आठ कारक हैं। यहाँ हम 'राम' शब्द के तीन वचनों में आठ कारकों के रूप देखेंगे। मूल रूप/राम्/ मानकर हम उन कारक चिह्नों को भी दिखा रहे हैं, जिन्हें हम विभक्ति कहते हैं।

अकारान्त पुल्लिंग शब्द रूप – 'राम' शब्द

कारक	विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	विभक्ति चिह्न		
कर्ता	प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः	अः	औ	आः
कर्म	द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्	अम्	औ	आन्ः
करण	तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः	एन	आभ्याम्	ऐः
संपदान	चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः	आय	आभ्याम्	एभ्यः
अपादान	पंचमी	रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः	आत्	आभ्याम	एभ्यः
संबंध	षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणात्	अस्य	अयोः	आनाम्
अधिकरण	सप्तमी	रामे	रामयोः	रामेषु	ए	अयोः	एसु
संबोधन	अष्टमी	हे राम!	हे रामौ!	हे रामाः!	अ	औ	आः

नोटः र के कारण ।न। का ।ण। बनता है, ।स। का ।ष। बनता है।

इस तरह हर संज्ञा शब्द के तीन वचनों और आठ कारकों में कुल 24 रूप बनते हैं।

कारकीय रचना की दृष्टि से संस्कृत जटिल भाषा है। अलग-अलग संज्ञा शब्दों के साथ अलग-अलग विभक्ति चिह्न प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण के तौर पर आकारांत स्त्रीलिंग शब्द 'लता' के कारकों और विभक्ति चिह्नों का अवलोकन कीजिए और 'राम' शब्द से इसकी तुलना कीजिए। इसके लिए ।लत्। को मूल रूप मान लें।

लता अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	विभक्ति चिह्न		
प्रथमा	लता	लते	लताः	आ	ए	आः
द्वितीया	लताम्	लते	लताः	आम्	ए	आः
तृतीया	लतया	लताभ्याम्	लताभिः	अया	आभ्याम्	आभिः
चतुर्थी	लतायै	लताभ्याम्	लताभ्यः	आयैः	आभ्याम्	आभ्यः
पंचमी	लतायाः	लताभ्याम्	लताभ्यः	आयाः	आभ्याम्	आभ्यः
षष्ठी	लतायाः	लतयोः	लतानाम्	आयाः	अयोः	आनाम्
सप्तमी	लतायाम्	लतयोः	लतासु	आयाम्	अयोः	आसु
अष्टमी	हे लते!	हे लते!	हे लताः!	ए	ए	आः

आपने ध्यान दिया हो कि कुछ विभक्ति चिह्नों को छोड़कर शेष भिन्न है। संस्कृत में पुल्लिंग शब्दों के लगभग 10 मूल रूप हैं जैसे राम (अ), सखा (आ) मुनि (इ), साधु (उ) गौ (औ), मरुत् (हलंत), विद्वान् (हलंत), दाता (तृ), पिता (तृ)। स्त्रीलिंग शब्दों के लगभग 10 मूल रूप हैं, जैसे लता (आ), मति (इ), नदी (ई), माता (तृ), धेनु (उ), वधू (ऊ), नौ (औ)। और नपुंसक लिंगों के 10 मूल रूप हैं। जैसे फलम् (अम्), आत्मन् (हलंत), शशि (इ), मधु (उ), जगत् (हलंत), पयः (अयः) आदि। इन सभी मूल रूपों के विभक्ति चिह्नों के समुच्चय (sets) अलग-अलग हैं। इस कारण संस्कृत भाषा के संज्ञा शब्दों का प्रयोग जटिल हो जाता है। इस जटिलता के कारण संस्कृत भाषा को क्लिष्ट कहा जाता है, जहाँ मूल रूप और विभक्ति चिह्न का श्लेष कुछ हद तक जटिल प्रक्रिया है।

संज्ञा शब्दों की तरह सर्वनामों के भी 24 रूप बनते है। पुल्लिंग सः (वह) के रूप देखिए।

कर्ता	सः	तौ	ते
कर्म	तम्	तौ	तान्
करण	तेन	ताभ्याम्	तैः

वाक्य में सर्वनाम और विशेषण की संज्ञा से अन्विति होती है। अर्थात निम्नलिखित वाक्यों में समान लिंग और वचन के सर्वनाम और संज्ञा शब्द ही प्रयुक्त हो सकते हैं। उदारहण के लिए

पुल्लिंग	सः ज्येष्ठः बालः	वह बड़ा लड़का है।
	तौ ज्येष्ठौ बालौ:वे दो बड़े लड़के हैं।	
	ते ज्येष्ठाः बालाः	वे बड़े लड़के हैं।
स्त्रीलिंग	सा ज्येष्ठा बाला	वह बड़ी लड़की है।
	ते ज्येष्ठे बाले	वे (दो) बड़ी लड़कियाँ हैं।
	ताः ज्येष्ठाः बालाः	वे बड़ी लड़कियाँ है।

इसी तरह तम बालं (उस लड़के को), तेन बालेन (उस लड़के ने) आदि रूपों में भी इस श्लिष्टता को देख सकते हैं।

संस्कृत के क्रिया रूप

श्लिष्टता के लक्षण संस्कृत में सब से अधिक क्रिया में प्रकट होते हैं। हिंदी जैसी आधुनिक भाषाएँ क्रिया रचना दृष्टि से अश्लिष्ट (analytic) कही जाती हैं, क्योंकि यहाँ क्रिया रचना बहुत आसान है। उदाहरण के लिए हिंदी में क्रिया के मूल रूप (धातु) में काल के लिंग वचन के रूप जोड़ने पर क्रिया की निष्पत्ति हो जाती है। जैसे

धातु	काल (लिंग, वचन शब्दों के साथ)	
कर, लिख, पढ़, सुन	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
जा, आ, बता	एक. ता है	ती है
सी, खे, खो, बो,	बहु. ते हैं	ती हैं

हिंदी में काल के रूप भी सीमित है। प्रमुख काल है नित्य वर्तमान (करता है), सामान्य वर्तमान (कर रहा है), भविष्यत् (करेगा), सामान्य भूत (किया)। इसके साथ कुछ काल वृत्ति सूचक रूप हैं करता था, करता हो, करता होगा, करता होता आदि।

हिंदी की तुलना में संस्कृत की क्रिया रचना अधिक जटिल है। संस्कृत में हर क्रिया के हर काल के तीन पुरुषों और तीन वचनों में नौ रूप बनते हैं। जैसे

सः (बालः) पठति - लड़का पढ़ता है का उदारहण लें। इसके नौ रूप इस तरह बनेंगे।

		एकवचल	द्विवचन	बहुचनन
III Person	अन्य पुरुष	पठति	पठत:	पठन्ति
II Person	मध्य पुरुष	पठति	पठथ:	पठथ:
I Person	उत्तम पुरुष	पठामि	पठाव:	पठाम:

कृ धातु से हर क्रिया 3 वाक्यों में आ सकती है। जैसे वह के संदर्भ में दो वाक्यों का अवलोकन कीजिए। पुल्लिंग, तीन वचनों में

कर्तृवाच्य (वह करता है)	करोति	कुरुत:	कुर्वन्ति
कर्म वाच्य (किया जाता है)	कुर्यति	कुर्येते	कुर्यन्ते

संस्कृत में दो पद हैं – परस्मैपद, जहाँ दूसरों के संदर्भ में चर्चा की जाए और आत्मने पद, जहाँ अपने संदर्भ में चर्चा की जाए।

काल वृत्ति और प्रयोग

'स: पठति' – वह पढ़ता है सामान्य वर्तमान की क्रिया है। अगर इसी को हम भूतकाल में कहना चाहें तो रूप बनेंगे

अपठत् अपठताम् अपठन्

भविष्यत काल के भी 9 रूप इसी तरह बनेंगे

पठिष्यति पठिष्यत: पठिष्यन्ति

हर काल या वृत्ति के इन नौ रूपों को लकार कहा जाता है। वर्तमान काल **लट्** लकार है, भविष्यत् काल **लृट्** लकार है सामान्य भूतकाल **लङ्** लकार है। लोट् लकार आज्ञार्थ है। इस तरह हर क्रिया के दस लकार हैं और सामान्य धातु, प्रेरणार्थक, इच्छार्थक, अतिशयता एवं पुनरुक्ति ये पाँच प्रयोग हैं।

इस तरह 9 पुरुष-वचन रूपों, 15 काल आदि रूपों, 3 वाच्यों और 2 पदों के संयोजन से संस्कृत में हर क्रिया धातु के लगभग 540 रूप बन सकते हैं। इसकी तुलना में हिंदी में करता, किया, करेगा, करे आदि के विभिन्न लिंग-वचन-पुरुष भेदों के लगभग 27 ही रूप बनते हैं। इतनी बड़ी संख्या से इतनी कम संख्या में बदलाव अचानक ही नहीं हुआ। पालि, प्राकृत और अपभ्रंशों में क्रम से सरलीकरण की प्रक्रिया से रूप कम होते गये, जिसे हम आगे के प्रकरणों में देखेंगे। संस्कृत में हर व्याकरणिक विशेषता के लिए अलग क्रिया रूप की आश्यकता थी। हिंदी भाषा में मूल धातु से /है, था/ आदि सहायक क्रियाओं को अलग करने और सक, चुक आदि वृचि सूचक क्रियाओं को धातु से अलग करने के कारण यह संभव हुआ है। इसी संदर्भ में हम हिंदी की क्रिया को संस्कृत की तुलना में अश्लिष्ट (analytic, न जुड़ा हुआ) कहते हैं।

अंत में संस्कृत की क्रिया रचना की एक और विशेषता की चर्चा करेंगे, जो विभेदीकरण प्राकृत में ही समाप्त हो गया। संस्कृत के क्रिया धातु लगभग 200 हैं, जिन्हें दस अलग वर्गों में बाँटा गया है। ये गण कहलाते हैं। भू (होना) धातु से भ्वादि गण, अद् (खाना) धातु से अदादि गण आदि। इसकी रूपावलियाँ भिन्न हैं। इस कारण छात्र को हर गण के अनुसार सारे रूप जानना आवश्यक हो जाता है। पालि भाषा में 10 की जगह 6 गण रह गये और प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिंदी में सिर्फ़ एक ही धातु रूप रह गया। अर्थात हिंदी में धातु रूप जो भी हो (कर, लड़, हो, खो, खो, आदि) उनके क्रिया रूप हर जगह एक जैसे बनते हैं।*

* नोट: जा से भूतकाल 'गया' बनना अपवाद है। ऐसे अपवाद हिंदी में अति सीमित हैं।

3.3 पालि

3.3.1 नामकरण और क्षेत्र

पालि के विकास के अध्ययन की सामग्री पालि साहित्य तथा अशोक के अभिलेखों में प्राप्त होती है। पालि में बौद्ध धर्म के थेरवाद अथवा हीनयान सम्प्रदाय के धार्मिक साहित्य की रचना हुई है।

वास्तव में 'पालि' शब्द किसी भाषा का द्योतक नहीं है। पालि का अर्थ है 'मूलपाठ' अथवा 'बुद्धवचन'। पालि के स्वरूप पर विचार करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि पालि भाषा भारत के किसी प्रदेश की भाषा रही होगी या यह भाषा भारत के किस प्रदेश की भाषा का आधार थी।

पं. विष्णु शेखर भट्टाचार्य पालि शब्द को संस्कृत 'पंक्ति' शब्द से निकला हुए मानते हैं। वह इसके ध्वनि परिवर्तन का क्रम पंक्ति पन्ति>पत्ति>पट्ठि>पल्लि>पालि से माना है। हमें बौद्ध साहित्य में पालि के अर्थ में 'पङ्क्ति' शब्द मिलता है। जो इस बात की पुष्टि करता है कि उपरोक्त ध्वनि परिवर्तन उचित है। कुछ विद्वानों का मानना कि 'पालि' गाँवों की भाषा थी और संस्कृत नगरों में बोली जाती थी।

मैक्स वालेसर ने पालि शब्द की व्युत्पत्ति 'पाटलिपुत्र' से मानी है। उनका मानना है कि ग्रीक में 'पाटलिपुत्र' को 'पालिबोथ्र' लिखा गया है। भिक्षु जगदीश कश्यप ने 'पालि' महाव्याकरण में पालि शब्द की व्युत्पत्ति 'परियाम' (सं. पर्याय) शब्द से किया है, जिसे आज हम पालि भाषा कहते हैं। यह उसका प्रारंभिक नाम नहीं है। भाषा विशेष के अर्थ में पालि शब्द का प्रयोग अपेक्षाकृत नवीन है। कम से कम ईसा की चौदहवीं शताब्दी से पूर्व उसका इस अर्थ में प्रयोग नहीं मिलता है। पालि शब्द का सबसे पहला व्यापक प्रयोग हमें आचार्य बुद्धघोष (चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी) की अट्ठकथाओं और उनके विशुद्ध भाग में मिलता है। आचार्य बुद्धघोप के कुछ ही समय पूर्व लंका में लिखे गए दीप वंश ग्रंथ में भी (चौथी शताब्दी की रचना) पालि शब्द का प्रयोग बुद्ध वचन के अर्थ में ही किया गया है। आचार्य बुद्ध घोष के बाद भी सिंहल देश में पालि शब्द का प्रयोग उपर्युक्त दोनों अर्थों में होता रहा। पालि शब्द का प्राचीनतम रूप हमें 'परियाय' शब्द में मिलता हैं। 'परियाय' शब्द त्रिपिटक में अनेक बार आया है।

पालि भाषा के विषय में सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि यह किस प्रदेश की मूल भाषा थी? सिंहली परंपरा उसे मागधी या मगध की भाषा मानती है। प्रोफेसर आर डेविड्स का आधार कौशल प्रदेश में छठी और सातवीं शताब्दी ईसवी पूर्व में बोली जाने वाली भाषा मानते हैं।

बेस्टर गार्ड इसे उज्जयिनी प्रदेश की बोली मानते है। लेकिन आर.ओ. फ्रैंक इसका उद्गम स्थान विंध्य प्रदेश मानते हैं। कुछ विद्वान इसे कलिंग देश की भाषा मानते हैं क्योंकि यह लंका का समीपी राज्य था।

3.3.2 पालि साहित्य का उद्भव और विकास

भगवान बुद्ध के सभी उपदेश मौखिक थे। यद्यपि लेखन कला का आविष्कार भारत में बुद्ध युग के बहुत पहले ही हो चुका था। फिर भी बुद्ध के उपदेश भगवान बुद्ध के समय में ही लेखबद्ध कर लिए गए हों, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। पालि साहित्य का विस्तार पालि या पिटक साहित्य और अनुपालि या अनुपिटक साहित्य में होता है। पालि या पिटक साहित्य तीन भागों में विभक्त है। सुत्त पिटक, विनय पिटक और अभिधम्म पिटक। बौद्ध धर्म का प्राचीनतम रूप त्रिपिटकों में मिलता है। त्रिपिटक के जो नाम ऊपर बताए गए हैं, वे वास्तव में सुप्त, विनय और अभिधर्म के बिगड़े हुए रूप हैं। ये तीनों ग्रंथ बौद्ध धर्म के आधार ग्रंथ हैं। इसकी भाषा वैदिक संस्कृत के काफी निकट है। इसलिए विद्वानों का मत है कि त्रिपिटकों की भाषा वैदिक संस्कृत से प्राप्त की गई है। विद्वानों का यह भी मत है कि संस्कृत से पालि और पालि से प्राकृत का सीधा क्रम नहीं है। इसमें वैदिक संस्कृत से पालि का विकास क्रम चलता रहा और लौकिक संस्कृत से प्राकृत का एक अलग क्रम चलता रहा जो दोनों पालि और प्राकृत को अलग करता है।

यद्यपि बौद्ध वचनों के सभी उपदेश मौखिक थे, लेकिन अशोक के शिलालेखों में पायी गई भाषा पालि के विषय में जानकारी देती है। इसे अशोक के शिलालेखों की भाषा कह सकते हैं। शिलालेखों पर पालि भाषा लिखने का सम्राट अशोक का एक ही उद्देश्य था कि इससे पूरी जनता को आदेश दे तथा विस्तृत रूप से धर्म की सूचना जनता के बीच पहुँचाए। इस शिलालेखों का समय ई.पू. दूसरी-तीसरी शताब्दी माना जा

सकता है। स्थानीय बोलियों के आधार पर हमें इस भाषा के तीन रूप मिलते हैं पूर्वी, पश्चिमी और उत्तरी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बोलचाल के स्तर पर पालि के अलग-अलग रूप रहे होंगे।

पालि कृतियों में 'मिलिन्द पन्ह' के बाद आचार्य बुद्धदत्त की कृतियों का स्थान आता है। इन्होंने 'अभिधर्म पिटक' की अट्ठकथाओं का संक्षेप अभिधम्मावतार और 'विनय पिटक' की अट्ठकथाओं का संक्षेप 'विनय विनिच्छय' में किया है। आचार्य बुद्धदत्त के ही समय में अनुपिटक साहित्य के एक महान् व्याख्याकार बुद्धघोष हुए। बुद्धघोष के समय जिन बौद्ध विद्वानों ने महात्मा बुद्ध के विषय में अपनी साहित्य रचना की उनमें अश्वघोष, नागार्जुन, वसुबंधु और दिङ्.नाग प्रमुख हैं। बुद्धघोष ने सिंहली में अनूदित अट्ठकथाओं का अनुवाद मागधी में किया और व्याख्या ग्रंथ का नाम 'विसुद्धिमग्गा' रखा। उन्होंने 'समन्त पासादिका', 'कंरवा वितरणी' के अतिरिक्त प्रथम चार निकायों पर भी अट्ठकथाएँ लिखीं जिनमें से 'दीघनिकाय' पर 'सुमंगल विलासिनी', मज्झिम निकाय पर 'पपंचसूदनी', संयुक्त निकाय पर 'सारत्थप्प कासिनी', और अंगुत्तर निकाय पर 'मनोरथ पुरणी' प्रसिद्ध हैं। अनुराधापुर महाविहार की परंपरा पर उन्होंने अभिधम्म पिटक के सात ग्रंथों पर अट्ठकथाएँ लिखीं जिनके नाम हैं, अट्ठशालिनी संमोह विनोदिनी और पंचध करणट्ठक। पालि भाषा में उपलब्ध 'जातकट्ठवण्णना' किसी सिंहली पुस्तक का अनुवाद है।

बुद्धघोष के बाद अट्ठकथाकार के रूप में थेर धम्मपाल का नाम उल्लेखनीय है। बुद्धघोष द्वारा 'खुद्दकनिकाय' के अछूते छह ग्रंथों पर उन्होंने संयुक्त रूप से 'परमत्थदीपनी' ग्रंथ लिखा जिसका मूल आधार सिंहली कथाएँ थी। उन्होंने बुद्धघोष के विसुद्धिमग्गा पर भी 'परमत्थमंजूषा' नामक शोधपूरक टीका लिखी।

पालि काव्य

पालि साहित्य के क्षेत्र में काव्यों की रचना बहुत कम हुई है। मानव जीवन की व्यापक एवं गहन अनुभूतियों का पहला दर्शन हमें त्रिपिटकों में दिखाई देता है। त्रिपिटकों में संकलित भगवान् तथागत के ऊँचे विचारों का विश्लेषण किया गया है। यद्यपि उसमें काव्य संबंधी सभी गुण पाए जाते हैं लेकिन हम उसे काव्य न कहकर काव्यों के उपजीवी, पालि काव्यों का जन्मदाता कह सकते हैं। विषय की दृष्टि से पालि में दो प्रकार के काव्यों की रचना हुई (1) वर्णनात्मक, (2) आख्यानात्मक। पहली श्रेणी के काव्य ग्रंथों में 'कस्सप' का अनागतवंश (प्राग्-बुद्धघोष) भिक्षुकल्याण प्रियकृत 'तेलकाटहगाथा', बुद्धरक्षित का 'जिनालंकार', मेघंकरकृत 'जिनचरित'। दूसरी श्रेणी के आख्यान काव्यों में प्रथम संस्कर्ता 'स्थविर रट्ठपाल' तथा द्वितीय संस्कर्ता भिक्षु वैदेह स्थविर कृत 'रसवाहिनी', वरमी राजा वोदोपय (बुद्धप्रिय) के आग्रह से लिखा गया गद्य ग्रंथ 'राजाधिराज विलासिनी' का नाम उल्लेखनीय हैं।

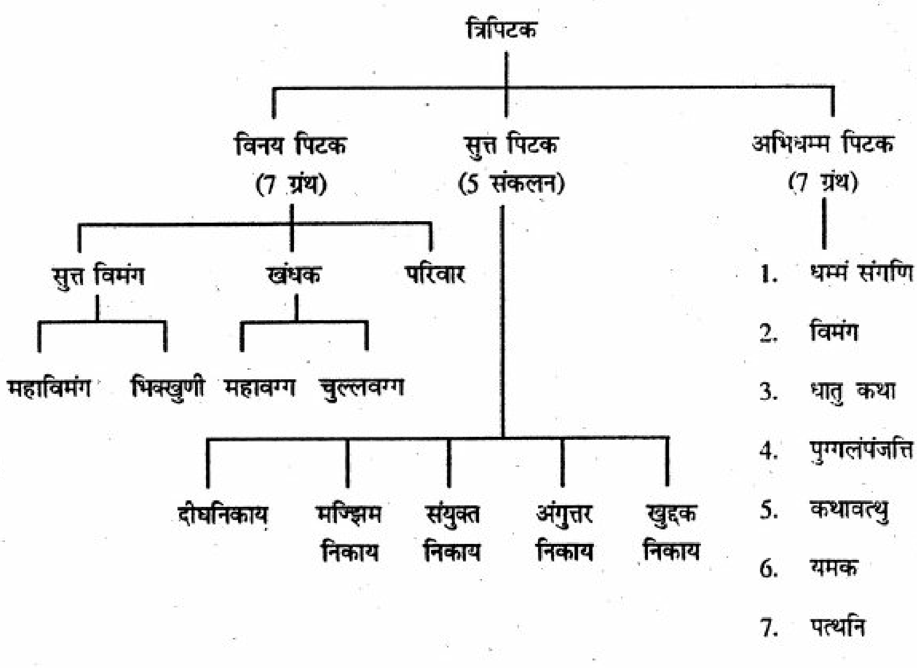

त्रिपिटक

भगवान से बद्धत्व प्राप्त करने से लेकर परिनिर्वाण प्राप्त करने के बीच उन्होंने जो कुछ भी कहा, उसी

का संग्रह त्रिपिटक में है। त्रिपिटक बौद्ध धर्म का अनुश्रुति ग्रंथ है। 300 ई.पू. मगध में उन्हें संकलित किया गया था। पवित्र बौद्ध ग्रंथ इतनी अधिक भाषाओं में मिलते हैं कि कोई एक व्यक्ति यह नहीं सकता कि वह उन सभी ग्रंथों से परिचित है। ये भाषाएँ पालि, संस्कृत, चीनी, तिब्बती, जापानी, अपभ्रंश और अन्य अनेक मध्य एशियाई भाषाएँ हैं।

3.3.3 भाषा का परिचय

लगभग पाँचवीं शताब्दी ईसवी तक पालि भाषा में किसी भी प्रकार के व्याकरण ग्रंथ की रचना नहीं हुई थी। आचार्य बुद्धघोष ने जितनी भी निष्पत्तियाँ या प्रयोग दिए हैं, उनका आधार पाणिनी व्याकरण ही था। प्रो. बलदेव उपाध्याय ने पालि में उपलब्ध व्याकरण को तीन शाखाओं में विभक्त किया है।

(1) कच्चायन व्याकरण

(2) मोग्गालायन व्याकरण

(3) अग्गवंसकृत 'सद्दनिति'

पालि के ध्वनि समूह का परिचय

कच्चायन के अनुसार पालि में 41 ध्वनियाँ थीं, लेकिन मोग्गलायन इसमें 43 ध्वनियाँ मानते हैं। लेकिन कहा जाता है कि पालि में कुल 47 ध्वनियाँ हैं।

संस्कृत से तुलना करने का ऋ, ॠ, ऐ, औ स्वरों का प्रयोग पालि भाषा में नहीं मिलता है। पालि में दो नए स्वर ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' मिलते हैं। विसर्ग पालि में नहीं मिलता है। श, ष पालि में नहीं मिलते। 'ळ' व्यंजन का प्रयोग पालि में होता है लेकिन लौकिक संस्कृत में इसका प्रयोग नहीं मिलता है। मिथ्या सादृश्य के कारण 'ठद्' का प्रयोग 'ल्' के स्थान पर भी देखा जा सकता है। स्वतंत्र स्थिति में 'ह्' प्राण ध्वनि व्यंजन है। किंतु य्, र्, ल्, व् या अनुनासिक में संयुक्त होने पर।

पालि में संस्कृत की कई ध्वनियों में परिवर्तन आया। ऋ का उच्चारण खत्म हो गया। जैसे नृत्य > निच्च, वृद्ध > बुड्ढो। श् ष/ के स्थान पर स का उच्चारण परिवर्तन हुआ। विसर्ग का स्थान स्वर।ओ। ने ले लिया। जैसे देव: 'देवो संस्कृत में तीन लिंग और तीन वचन थे इस प्रकार संज्ञा के आठ कारकों में 24 रूप बनते थे। पालि में द्विवचन समाप्त हो गया। इस प्रकार पालि में 16 रूप बनते थे।

स्वर ध्वनि

स्वरों में ह्रस्व 'एँ, ओं' का विकास हुआ। इस प्रकार का विकास बलाघात के कारण पाया गया। ऋ, ॠ, ऌ प्राय: समाप्त हो गए। ।ऋ। का पालि में प्राय: 'अ' हुआ।

अ	हृदय	>	हदय	इ	ऋण	इण
अ	कृषि	>	कसि	उ	पृथवी	पुथवी

ऌ का उ हो-गया क्लृप्त > कुत्त।

ऐ औ विलुप्त हो गये। 'ऐ' का 'ए' (ऐरावण > एरावण) 'औ' का 'ओ' (गौतम > गोतम) अथवा ओं हो गया।

व्यंजनों में वैदिक की तरह ही पालि में भी /ळ/ /ळह/ ध्वनियाँ थीं। विसर्ग, जिह्वामूलीय उपध्मानीय भी समाप्त हो गए। वैदिक तथा संस्कृत में श्, ष्, स् तीन थे। पालि में तीनों के स्थान पर 'स्' हो गया।

घोषीकरण

स्वर मध्य अघोष, व्यंजन घोष हो जाता है। जैसे मकर मगर।

पालि में तद्भव शब्द अधिक हैं, तत्सव शब्द कम पाए जाते हैं। परवर्ती साहित्य में कुछ विदेशी शब्द भी हैं।

पालि भाषा में संस्कृत से क्रमिक विकास का उल्लेख किया जा सकता है। पालि साहित्य में आद्यंत एक रूप नहीं मिलता है। त्रिपिटक भाषा का प्राचीनतम रूप है। जो भाषा त्रिपिटक के गद्य भाग में मिलती है वहाँ रूप कम हैं और भाषा में एकरूपता मिलती है।

उत्तर कालीन काव्य ग्रंथों में जैसे, दीपवंस, महावंस की भाषा में संस्कृत का काफी प्रभाव है।

3 .4 प्राकृत

3 .4.1 नामकरण और क्षेत्र

भारतीय आर्य भाषाओं के इतिहास को देखने से पता चलता है कि समस्त आर्य भाषा के विकास का मूल संस्कृत है। संस्कृत भारत की सबसे प्राचीन वेरण्य (क्लासिकल) भाषा है, जिसका मानक रूप हम वेदों, पुराणों और अन्य आर्ष ग्रंथों में देखते हैं। संस्कृत कभी जन भाषा के रूप में प्रचलित थी, लेकिन धीरे-धीरे बौद्धों के प्रयास से संस्कृत का एक अन्य भाषा रूप आया, जो पालि भाषा के रूप में विकसित हुआ तथा उसमें बौद्ध साहित्य की रचना हुई। इसी क्रम मे भाषा परिवर्तन के साथ प्राकृत भाषा का जन्म हुआ, जिसमें जैन साहित्य लिखा गया। जब संस्कृत लोक व्यवहार की भाषा से अलग होकर शिष्ट जनों की भाषा बन गई तब उसका स्थान प्राकृत ने ले लिया और धीरे-धीरे भारत वर्ष में प्राकृत का साम्राज्य स्थापित रूपों में भारत की लोकमान्य भाषा बनकर जनसामान्य तक पहुँची। इस युग में संस्कृत से भिन्न जितनी भी भाषाएँ थीं उनका सामूहिक रूप प्राकृत भाषा थी जो विकसित हो रही थी।

प्राकृत शब्द 'प्रकृतेरागतम्' व्युत्पत्ति के अनुसार प्रकृति से आने वाली भाषा है। प्रकृति का अर्थ स्वभाव, अशिक्षित जनता, अनपढ़ जीवन यापन करने वाला वह मानव समूह है, जो व्याकरणिक भाषा ज्ञान के अभाव में अपनी बात दूसरे तक पहुँचाता था। रुद्रट ने व्याकरण विहीन बोली जाने वाली भाषा जो सहज और स्वाभाविक रूप से वचन व्यापार है, को प्रकृति माना है और यही प्रकृति 'प्राकृत' के रूप में धीरे-धीरे विकसित होकर आगे बढ़ी अर्थात् प्रकृति जन्य भाषा ही प्राकृत है। कुछ अन्य विद्वानों ने इसकी व्याख्या करते हुए बताया है कि प्राकृत का अर्थ "प्राक् कृतम्" अर्थात् प्राचीन काल में बोली जाने वाली भाषा। कुछ अन्य विद्वानों ने प्राकृत भाषा का व्याकरण लिखकर प्राकृत पद की व्युत्पत्ति करते हुए बताया है कि "प्रकृतेः आगतम्" प्रकृति से आयी हुई भाषा। यहाँ उन विद्वानों ने प्रकृति का आशय संस्कृत माना है। प्राक् कृत का अर्थ है पहले से किया गया।

प्राकृत भाषा लौकिक संस्कृत से उत्पन्न नहीं हुई है क्योंकि प्राकृत के अनेक शब्द और प्रत्ययों का मेल वैदिक भाषा के साथ अधिक देखने को मिलता है। वैदिक साहित्य में भी प्राकृत के अनुरूप अनेक शब्द और प्रत्ययों के प्रयोग पाए जाते हैं। जैसे – प्राकृत में अनेक जगह संस्कृत ऋ कार के स्थान पर 'उकार' पाया जाता है। जैसे ऋतु-उदु, वृंद-वुंद।

इस अर्थ में कुछ विद्वान संस्कृत और आधुनिक भाषा के बीच के सभी रुपों को प्राकृत (Prakrits) माना है और तीन कालों में इसका विभाजन किया है।

1. पूर्वकालीन प्राकृत – (पालि और प्राचीन मागधी) 500 ई.पूर्व से 100 ई. पूर्व तक।
2. मध्यकालीन प्राकृत – (शौरसेनी, मागधी और उसके भेद) 100 से 600 ई तक)।
3. उत्तरकालीन प्राकत – (अपभ्रंश के रुप) 600 ई से 1100 ई तक।

इस प्रकार 500 ई. पूर्व से लेकर ग्यारहवीं शती के समय की कालक्रम की दृष्टि से भले ही उनमें पूर्वापर संबंध रहा हो, किंतु उनमें कहीं-न-कहीं आपसी संबंध अवश्य है।

परिव्राजकों के इधर से उधर भ्रमण तथा ऋषि-मुनियों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन से प्राकृत ने अपना संपूर्ण रूप विकसित किया। उसने अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त की और साहित्य के क्षेत्र में भी उसे पूर्ण रूप से अपनाया गया। इस युग में कथाकारों ने भी अनेक उत्तम कृतियों का निर्माण किया।

प्राकृत भाषा के प्रथम वैयाकरण के रूप में उज्जैन के विक्रमादित्य की राज सभा के प्रमुख विद्वान वररुचि

का नाम आता है। बोलचाल की भाषाएँ ज्यों-ज्यों संस्कृतमय होती गईं, अनेक साहित्यिक शैलियाँ प्रकाश में आने लगीं। प्राकृत जैसे-जैसे जन भाषाओं से अलग हटती गई, वैसे-वैसे उसका साहित्यिक रूप भी संस्कृत ने ले लिया। धीरे-धीरे सभी संकर भाषाओं के साहित्य रूपों को संस्कृत ने अपने में मिला लिया। धीरे-धीरे गुप्त युग में पहुँच कर संस्कृत भाषा ने अपनी पूरी स्थिति कायम कर ली। गुप्त काल के बाद हर्ष का साम्राज्य स्थापित हुआ और मथुरा के आसपास का प्रदेश शौरसेनी नाम से विख्यात हुआ। शौरसेनी को अपभ्रंश के रूप में प्रतिष्ठित होने का अवसर पुनः गुर्जर प्रतिहारों द्वारा किया गया।

शौरसेनी अन्य प्राकृतों की अपेक्षा संस्कृत के अधिक निकट है और महाराष्ट्री भी उसी का एक रूप थी जो गंगा-यमुना दो-आब के विस्तृत भू-भाग की राजभाषा थी। गद्य के लिए शौरसेनी और पद्य के लिए महाराष्ट्री अधिक उपयुक्त थी। ये मध्यकालीन प्राकृतें ज्यों-ज्यों प्रामाणिक संस्कृत के निकट आती गयीं त्यों-त्यों आम बोलचाल की भाषाओं से उनकी दूरी बढ़ती गई।

3.4.2 साहित्य का परिचय

जिस प्रकार प्राचीन भारतीय आर्य भाषा को साधारणतया संस्कृत कहा जाता है, उसी प्रकार मध्य भारतीय आर्य भाषा के लिए प्राकृत शब्द का व्यवहार किया गया है। प्राकृत वैयाकरणों ने जिस भाषा का विवेचन किया है वह लोकभाषा पर आधारित अवश्य थी परंतु वह संस्कृत के आदर्श पर चलकर आगे केवल साहित्यिक रचनाओं की भाषा रह गई थी। इस प्रकार प्राकृतों का प्रयोग संस्कृत नाटककार तेरहवीं शताब्दी तक करते रहे।

शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग संस्कृत नाटकों में स्त्री पात्र और विदूषक किया करते थे। इसी प्रकार मागधी मूलतः मगध की भाषा थी। संस्कृत नाटकों में इसका प्रयोग निम्न श्रेणी के पात्र किया करते थे। अर्ध मागधी काशी-कोसल प्रदेश की भाषा थी। जैन आचार्यों ने इस भाषा में शास्त्रों की रचना की। मागधी का प्रयोग संस्कृत नाटकों में किया गया है। मध्य एशिया से प्राप्त अश्वघोष के नाटक 'शारिपुत्र प्रकरण' में मागधी का प्रयोग किया गया है। साहित्यिक प्राकृतों में महाराष्ट्री प्राकृत सर्वाधिक विकसित है। प्राकृत वैयाकरणों ने इसको आदर्श प्राकृत माना है। संस्कृत नाटकों में प्राकृत पद्य रचना महाराष्ट्री प्राकृत में हुई है। महाराष्ट्री प्राकृत में महाकाव्य एवं खंड काव्यों की रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। 'सेतुबंध' तथा 'गउडवहो' काव्य की रचना महाराष्ट्री प्राकृत में हुई है। 'गाथा सत्तसई' की भाषा भी महाराष्ट्री प्राकृत मे है। पैशाची प्राकृत की कोई साहित्यिक रचना सुरक्षित नहीं रह सकी है। कहा जाता है गुणाढ्य की 'वृहत्कथा' (वड्डकहा) मूलतः पैशाची में लिखी गई है लेकिन इसका मूल पाठ लुप्त हो गया है।

3.4.3 भाषा का परिचय

ऊपर यह उल्लेख किया जा चुका है कि प्राकृतों के पाँच रूप हैं। इन सबकी अपनी अलग-अलग व्याकरणिक विशशेताएँ हैं।

स्वर मध्य 'द ध्' (मूल तथा त् थ् के परिवर्तित रूप) सुरक्षित हैं। जैसे आगतः > आवदो, कृतः कुदो (जिससे हिंदी 'किया' बना)

'य' प्रत्यय का प्रतिरूप 'ई अ' हो जाता है, जैसे - गमीअदि (गम्यते)

इसमें 'र' ध्वनि का सर्वथा अभाव है। 'र' के स्थान पर सर्वत्र 'ल्' पाया जाता है। जैसे राजा > लाजा। लेकिन अर्ध मागधी में शौरसेनी एवं मागधी दोनों के लक्षण मिलते हैं। इसमें 'र', 'ल' दोनों ध्वनियाँ विद्यमान हैं। कहीं-कहीं ऊष्म व्यंजन ध्वनि के स्थान पर 'ह' हो गया है। जैसे पाषाण > पाहाण।

"कृ" धातु रूप वैदिक भाषा के समान मिलते हैं। जैसे कृणोति > कुणइ। क्रिया के कर्म वाच्य का 'य' प्रत्यय इज्ज, जैसे पृच्छयते > पुच्छिज्जई। पूर्णकालिक क्रिया का रूप 'ऊण' प्रत्यय के योग से बनता है। जैसे - सं. पृष्टवा > पुच्छिऊण।

सघोष व्यंजनों के स्थान पर समान अघोष व्यंजनों का प्रयोग जैसे नगर > नकर, राजा > राच।

पैशाची में स्वर मध्यग स्पर्श व्यंजनों का लोप नहीं होता है।

पालि और प्राकृत में भेद

पालि भाषा की तुलना में प्राकृत में संज्ञा शब्दों रूप कम हो गए हैं। पालि में 16 रूपों की तुलना में

प्राकृत में 12 रूप रह गए हैं। पालि में ही द्विवचन के आठ रूप समाप्त हो गए थे। पालि भाषा में क्रिया कुल रूपों की संख्या 240 है जबकि प्राकृत भाषा में इन रूपों की संख्या घटकर केवल 72 ही रह गई।

प्राकृतों का विकास (1-500 ई.) पालि के बाद का है। हम कह सकते हैं कि पालि प्राकृत की प्रथम अवस्था का नाम है। भाषा तत्व की दृष्टि से पालि और प्राकृतों में अनेक समानताएँ हैं। पालि और प्राकृत भाषाओं का ध्वनि समूह प्राय: एक-सा ही है। ऋ, ॠ, लृ ऐ और औ का प्रयोग पालि और प्राकृतों में समान रूप से नहीं पाया जाता। केवल अपभ्रंश में ऋ ध्वनि अवश्य मिलती है। पालि और प्राकृतों में ऋ ध्वनि अ, इ, उ स्वरों में से किसी एक में परिवर्तित हो जाती है। ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' का प्रयोग पालि और प्राकृत दोनों में मिलता है। विसर्ग का प्रयोग पालि और प्राकृत दोनों में नहीं मिलता है। श, ष, की जगह मागधी को छोड़कर सभी प्राकृतों और पालि में 'स्' हो जाता है। मूर्धन्य ध्वनि 'ह' पालि और प्राकृत दोनों में पायी जाती है।

3 .5 अपभ्रंश

3 .5.1 नामकरण

अपभ्रंश भाषा का समय 500 ई. से 1000 ई. तक माना जाता है जबकि 15वीं शताब्दी तक इसमें साहित्य रचना होती रही है। प्राय: विद्वान अपभ्रंश शब्द का अर्थ 'अपभ्रष्ट' या बिगड़ी हुई भाषा मानते हैं। इसके अनेक नाम पाए जाते हैं। अवब्भंस, अवहंस, अवहट्ट, अवहट, अवहत्थ आदि। इसे उस काल में बोलचाल की भाषा माना जाता था। कवि विद्यापति ने इस भाषा की विशेषता बताते हुए कहा है कि 'देसिल बचना सब जन मिट्ठा, ते तैसन जम्पञों अवहट्टा' अर्थात् देश की भाषा सभी लोगों को मीठी लगती है। इसलिए इसे अवहट्ठ भाषा कहा जाता है। इसके अतिरिक्त इसे देशी भाषा, आभीरोक्ति, आभीरी आदि नामों से संबोधित किया जाता रहा है।

अपभ्रंश भाषा का समय 500 ई. से 1000 ई. तक माना जाता है, जबकि 15वीं शताब्दी तक इसमें साहित्य रचना होती रही है। अपभ्रंश शब्द का प्राचीनतम प्रामाणिक प्रयोग पतंजलि (150 ई. पू. लगभग) के महाभाष्य में मिलता है। भर्तृहरि (5वीं सदी) के 'वाक्यपदीय' (काण्ड 1, कारिका 148का वार्तिक) से यह ज्ञात होता है कि 'व्याडि' नामक संग्रहकार ने भी अपभ्रंश शब्द का प्रयोग किया था, जो महाभाष्यकार पतंजलि से पहले हुए थे। 'भरत' (दूसरी सदी) ने अपने नाट्यशास्त्र में अपभ्रंश के लिए इसी अर्थ में 'विभ्रष्ट' शब्द का प्रयोग किया था। अपभ्रंश मध्यकालीन आर्य भाषाओं और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं (हिंदी बंगला, मराठी, गुजराती आदि) के बीच की कड़ी है।

समय

ऊपर कहा जा चुका है कि अपभ्रंश का काल मोटे तौर से 500 ई. से 1000 तक माना गया है, लेकिन लोगों ने इसका काल 600 ई से 1100 ई. तक माना है। कुछ लोगों ने इसका समय 7वीं सदी से 13वीं सदी तक माना है। डॉ. सुकुमार सेन ने अपनी पुस्तक (A Comparative Grammar of Middle Indo Aryan) में यह माना है कि अपभ्रंश का काल 1 ई. से 600 ई. तक है। अपभ्रंश के प्रयोग का सबसे प्राचीन उदाहरण 'भरत' के नाट्यशास्त्र (300 ई.) में मिलते हैं। भरत ने 'आभीरोक्ति' को 'उकार' बहुला बताया है और उसका उदाहरण इस प्रकार दिया है -'मोरुल्लउ', 'नच्चन्तउ'।

पहली और दूसरी सदी के निकट कोई अपभ्रंश रचना हमें नहीं मिलती है। उपर्युक्त सभी तिथियों को ध्यान में रखते हुए अपभ्रंश का जन्म 500 ई. के आस-पास मान सकते हैं। अपभ्रंश के अंतिम समय को हम 1000 ई. के आस-पास मान सकते हैं। हम सभी जानते हैं कि भाषा जन्म से ही साहित्य की भाषा नहीं बन जाती है, उसको साहित्य की भाषा बनने में सैकड़ों साल लग जाते हैं, इसलिए यह कहना उचित नहीं है कि अपभ्रंश अपने आरंभ से ही साहित्य की भाषा रही होगी, उसको विकसित होने में काफी समय लगा होगा इसलिए उसका समय 500 ई. के आस-पास मानना उचित ही होगा। इस प्रकार हम अपभ्रंश का समय 500 ई. से 1000 ई. या 600 ई. से 1200ई. तक मान सकते हैं।

क्षेत्र विस्तार

भरत ने अपने नाटयशास्त्र में 'उ' कार बहुला भाषा का प्रयोग सिंधु सौवीर और इन क्षेत्रों के आश्रित देशों

के लोगों के लिए माना है। इससे यह पता चलता है कि भरत के समय तक उस समय के प्रयोग में आने वाली भाषा में अपभ्रंश की विशेषताएँ भारत के उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों में प्रकट हुई। ईसा की दसवीं शताब्दी में राजशेखर ने अपनी पुस्तक 'काव्य मीमांसा' में अपभ्रंश का विस्तार क्षेत्र संपूर्ण मरुभूमि बताया है अर्थात् यह मरुभूमि अवश्य ही राजस्थान का क्षेत्र रहा होगा। एल.एम.दे अपभ्रंश का स्थान 'मादानक' भागलपुर से 9 मील दक्षिण में स्थित 'मदरिया' स्थान मानते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजशेखर के समय तक अपभ्रंश का विस्तार क्षेत्र 'राजपूताना' और पंजाब रहा होगा। अपभ्रंश में लिखित जो साहित्य आज हमें मिलता है उसका रचना स्थान राजस्थान, गुजरात, पश्चिमोत्तर भारत, बुंदेलखंड, बंगाल और सुदूर दक्षिण तक प्रतीत होता हैं। इन स्थानों को देखने से प्रतीत होता है कि ग्यारहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश का प्रचार-प्रसार समस्त उत्तर भारत और दक्षिण में हुआ था। अपभ्रंश इस विस्तृत क्षेत्र की जन भाषा थी, इसलिए इन प्रदेशों की भाषाओं पर अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

3 .5.1 अपभ्रंश साहित्य

अपभ्रंश साहित्य का विकास मालवा, गुजरात तथा राजस्थान में हुआ। अत: इस प्रदेश की अपभ्रंश तत्कालीन साहित्यिक भाषा बन गई और बंगाल तथा दक्षिण तक में इस भाषा में साहित्य रचना हुई। यही कारण है कि अपभ्रंश साहित्य में एक ही प्रकार की परिनिष्ठित अपभ्रंश भाषा मिलती है। अपभ्रंश के प्रचार-प्रसार में 'आभीर' जाति का संबंध बहुत गहरा है इसे सिंधु के पश्चिम में निवास करने वाली जाती कहा गया है। गूर्जरों का संबंध आभीर जाती से जोड़ा गया है। इन जातियों के प्रसार के साथ-साथ अपभ्रंश भाषा का भी प्रचार-प्रसार बढ़ा और मध्य भारतीय आर्य भाषा प्राकृत की स्थिति को छोड़कर अपभ्रंश की ओर बढ़ी। अपभ्रंश के लिए 'आभीरी' भी एक नाम है।

अपभ्रंश का जो साहित्य हमें प्राप्त होता है उसमें भाषागत भेद बहुत कम है। नागरी प्रचारिणी पत्रिका में 'पुरानी हिंदी' शीर्षक लेख में स्वर्गीय पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने अपभ्रंश को 'पुरानी हिंदी' नाम,दिया है। रामचंद्र शुक्ल ने प्राकृत की अंतिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिंदी साहित्य का विकास माना हैं। राहुल सांकृत्यायन ने हिंदी काव्यधारा (1954) में अपभ्रंश काव्य का संग्रह प्रकाशित करते हुए उसकी भाषा को हिंदी का प्राचीन रूप कहा है। इस प्रकार हिंदी साहित्य की परंपरा प्राकृत की अंतिम अपभ्रंश अवस्था से ही मानी जाती है। वास्तव में विक्रम की आठवीं, नवीं और दसवीं शताब्दियों में अपभ्रंश साहित्य का उत्कर्ष युग माना जाता है तथा पुष्पदंत चतुर्मुख तथा बौद्ध सिद्ध इसी युग के प्रतिभाशाली कवि माने जाते थे। साहित्यिक अपभ्रंश में अधिक सहायक है। हिंदी साहित्य के सभी विद्वान इस मत को स्वीकार करते है, कि पुरानी हिंदी का संबंध अपभ्रंश के साथ बहुत घनिष्ठ है। हम यह अध्ययन कर चुके हैं कि विभिन्न अपभ्रंशों से ही आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म हुआ। अपभ्रंश की सभी रचनाएँ हिंदी भाषी प्रदेश के मध्य भाग के चारों ओर निर्मित हुई।

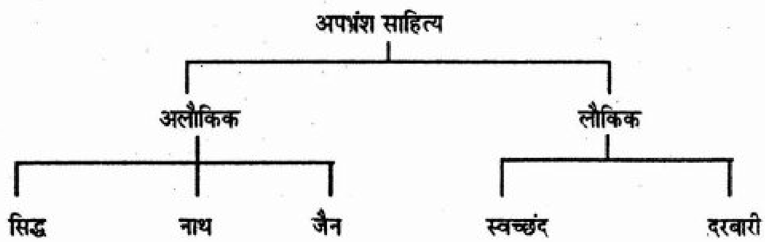

3 .4.4 अपभ्रंश और हिंदी साहित्य का संबंध

सिद्धों की कृतियाँ मागधी अपभ्रंश तथा जैन कवियों की रचनाएँ नागर अपभ्रंश के अंतर्गत विभाजित की जा सकती हैं। आधुनिक लोक भाषाओं से पहले सम्पूर्ण उत्तरी भारत गुजरात और महाराष्ट्र में साहित्य रचना के लिए अपभ्रंश भाषा को ही अपनाया जा रहा है। हिंदी का संत काव्य अपभ्रंश कालीन सिद्ध और नाथ पंथी साहित्यकारों की विचारधारा का परवर्ती विकसित रूप है। 'रास', 'रासक' और 'रासो' अपभ्रंश और गूर्जर हिंदी के लोकप्रिय काव्य हैं। रास परम्परा की 18 और रासो और रासक परंपरा की 24 काव्य कृतियाँ इस समय उपलब्ध हैं। रास कोमल भावनाओं के काव्य हैं, जबकि रासो अथवा रासक में जिन घटनाक्रमों का आधार युद्ध है, वहाँ भावनाएँ कठोर हो गई हैं। माणक रासो जैसा विनोद प्रधान काव्य तथा 'संदेश रासक' जैसा विरह गाथा प्रधान काव्य भी इसी परंपरा की कृतियाँ हैं। पन्द्रहवीं शती के आस-पास

भाषा का एक नया स्वरूप जन्म ले रहा था और पुरानी परंपराएँ नए प्रयोगों के साथ प्रयुक्त हो रही थीं। अपभ्रंश कालीन कवियों ने साहित्य को एक नया स्वरूप प्रदान किया। सोलहवीं शताब्दी के हिंदी साहित्य में दो धाराओं के संगम ने भक्ति काव्य में पद साहित्य का मार्मिक स्वरूप ग्रहण कर लिया। आधुनिक हिंदी साहित्य में अपभ्रंश भाषा और उसकी काव्य चेतना ही नहीं बल्कि उस समय की जनचेतना और जनजीवन भी विद्यमान है।

अपभ्रंश की अनुलेखन विधि पूर्णतः प्राकृत एवं संस्कृत की अनुगामिनी रही है। ऐ औ (ह्रस्व) जैसी नयी ध्वनियों के लिए नए चिन्ह नहीं बनाए गए। उस समय लेखक ह्रस्व ऐ और ध्वनियों के लिए 'इ उ' का व्यवहार करते थे। इसी प्रकार 'अ' के विकृत एवं संवृत भेदों की भिन्नता को दिखाने के लिए किसी भी प्रकार का नया चिन्ह प्रयोग में नहीं लाया गया। अनेक आधुनिक आर्य भाषाओं (बंगला, अवधी) में 'अ' का उच्चारण भिन्न रहा होगा लेकिन लिखित साहित्य में इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है। इसी प्रकार लुप्त मध्य व्यंजन के स्थान पर कहीं-कहीं 'अ' मिलता है, लेकिन कहीं-कहीं 'य' श्रुति का समावेश किया गया।

अपभ्रंश के प्रमुख रूप

अपभ्रंश के कितने रूप हैं, यह प्रश्न बड़ा ही विवादास्पद रहा है। हम जानते हैं कि प्राकृत भाषा के कई रूप थे - शौरसेनी, पैशाची, अर्धमागधी, मागधी, महाराष्ट्री आदि। उम्मीद यों की जानी चाहिए कि शौरसेनी प्राकृत से शौरसेनी अपभंश और मागधी प्राकृत से मागधी अपभ्रंश बने। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। मार्कंडेय ने प्राकृत सर्वस्व में अपभ्रंश के तीन ही भेद गिनाये हैं - नागर अपभ्रंश वर्गमान राजस्थान और गुजरात के क्षेत्र में प्रभावित थी और यही प्रमुख भाषा रूप थी। हेमचंद्र ने अपना व्याकरण इसी रूप को आधार बनाकर लिखा। ब्राचड अपभ्रंश का प्रयोग पंजाब-सिंध में और उपनागर अपभ्रंश इन तीनों के बीच में। फिर मगध तथा पूर्वी क्षेत्रों में कौन-सा बोली रूप था? यह तो नहीं हो सकता है कि देश के पूर्व में कोई अप्रभ्रंश नहीं थी और सीधे प्राकृत से आधुनिक भाषाओं का विकास हुआ है। अपभ्रंश प्राकृत और आधुनिक भाषाओं के बीच की कड़ी है और वह विलुप्त नहीं हो सकी। यही कहा जा सकता है कि पश्चिम की अपभ्रंश बोलियाँ/रूप साहित्यिक महत्व के कारण प्रस्फुटित हुए, लेकिन उस समय साहित्य के अभाव के कारण पूर्व के रूप प्रच्छन्न रहे।

अपभ्रंश के विकास में उसके प्रमुख रूपों की चर्चा करना आवश्यक है। इस भाषा के प्रमुख रूप इस प्रकार हैं।

शौरसेनी प्राकृत

शौरसेनी प्राकृत से विकसित यह अपभ्रंश उत्तर में पहाड़ी बोलियों के क्षेत्र, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग, पूर्वी पंजाब, राजस्थान और गुजरात में बोली जाती थी। इसे पश्चिमी अपभ्रंश या नागर अपभ्रंश भी कहा जाता है। पाहुण दोहा, उपदेश तरंगिणी, सनत्कुमार चरिअ इसकी साहित्यिक कृतियाँ हैं। इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं क्, ख्, त्, थ् क्रमशः ग्, घ्, द्, ध् हो जाते हैं। जैसे नाक > णाग, सुख > सुघु, पतितु > पदिदु।

उपनागर

इसके अंतर्गत वैदर्भी, कैकेयी, गौडी, पांडय तथा सिंहली का उल्लेख मिलता है। यहाँ कैकेयी में प्रतिध्वन्यात्मक शब्द, वैदर्भी में - उल्ल प्रत्यय युक्त शब्दों के आधिक्य का उल्लेख है।

दक्षिणी अपभ्रंश

दक्षिणी अपभ्रंश का क्षेत्र महाराष्ट्र माना है। पुष्पदंत ने इसमें साहित्य रचना की है। इनका नाम महापुराण तथा कन कामर करकंडचरिउ आदि है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं। अन्य अपभ्रंशों में प का ख् या क्ख् हो जाता है, लेकिन इसमें प् का छ् होता है।

आकारांत पुल्लिंग एकवचन तृतीया पश्चिमी में - एँ होता है किंतु इसमें एण हो जाता है। वर्तमान उत्तम पुरुष एकवचन में पश्चिमी में उँ होता है, जबकि इसमें - मि होता है। अन्य पुरुष बहुवचन में - न्ति (पश्चिमी में) - हि हो जाता है।

पूर्वी अपभ्रंश

इसका प्रमुख क्षेत्र बंगाल, बिहार, आसाम, उड़ीसा था। सरहपा और कण्डपा के दोहे की रचना इसी भाषा में हुई हैं।

व्याकरणिक परिचय

अपभंश का व्याकरणिक परिचय इस प्रकार है:

इस युग में संस्कृत तथा प्राकृत से प्राप्त अन्त्य स्वरों का ह्रास हुआ।

उपान्त्य स्वरों की मात्रा सुरक्षित रही। आद्य अक्षरों में क्षतिपूरक दीर्घीकरण से द्वित्व व्यंजन के स्थान पर एक व्यंजन का प्रयोग हुआ।

इसमें समीपवर्ती स्वरों का संकोच हुआ।

स्वरों का प्रयोग अनुनासिक होता था तथा संगीतात्मक स्वराघात समाप्त हो चुका था इसमें बलात्मक स्वराघात विकसित हो चुका था।

हम जानते हैं कि अपभ्रंश उकार बहुला भाषा थी, जिसे, हम 'ललित विस्तार' तथा प्राकृत 'धम्मपद' में देख सकते हैं। अपभ्रंश में इसकी बहुलता मिलती है, जिसका स्वरूप हमें 'ब्रजभाषा एवं अवधी' में मिलता है। जैसे अंगु, मूलु, पियासु आदि शब्दों में देखा जा सकता है।

स्वर ध्वनियाँ

ह्रस्व - अ, इ, उ, ऐ, औ

दीर्घ - आ ई ऊ ए ओ।

स्म का म्ह (अस्मै - अम्ह) य का ज (युगल का जुगल) ड, द, न र, के स्थान पर 'ल' (प्रदीप्त - पलित्त आदि) रूप में ध्वनि विकास की बहुत सी प्रकृतियाँ मिलती हैं।

(विशेषत: परवर्ती अपभ्रंश में) समीकरण के कारण उत्पन्न द्वित्वता में एक व्यंजन बच गया और पूर्ववर्ती स्वर में क्षतिपूरक दीर्घीकरण हो गया है। (सं. तस्य, प्रा. तस्स अप. तासु, कस्य > कस्स > कासु, कर्म > कम्म > कामु)

अपभ्रंश में स्वर के आदि अक्षर के स्वर को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति पायी जाती है क्योंकि स्वराघात प्राय: आदि अक्षर पर ही पड़ता था। परंतु आदि अक्षर को स्वरों में मात्रिक परिवर्तन अथवा लोप के उदाहरण भी मिलते हैं गहिर < गंभीर, ढक्क < ढक्का, दँक तलाउ < तड़ाग, गाम < ग्राम झाणी < ध्यान इत्यदि में आदि स्वर सुरक्षित हैं। परंतु कासु < कस्सु < कस्य, तासु < तस्य इत्यादि में मात्रि परिवर्तन है।

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के व्यंजनांत प्रातिपदिक पालि के समय से ही लुप्त होने लगे थे। अपभ्रंश ने अंतिम व्यंजन का लोप कर दिया यथा, आत्मन् > अप्प जगत् > जग, मनस् > मणा। कुछ व्यंजनांत रूप भी अपभ्रंश में मिल जाते हैं राणों < राजान। ऋकारांत प्रातिपदियों के 'ऋ' को अपभ्रंश ने 'अर' अथवा 'इ' में परिवर्तित कर दिया। जैसे पितृ > पियर, भ्रातृ > भाय, भाई। भर्तृ > भत्तार।

अवधी और ब्रज में प्राय: ये रूप ज्यों के त्यों चलते रहे।

कृदंत तद्भव

वर्तमान कालिक कृदंत - अपभ्रंश में संस्कृत कृत् प्रत्यय वाले रूप 'अंत' लगाकर बनाए जाते थे जैसे, चलंत 'चलता'। इस प्रकार के वर्तमान कालिक कृदंत कभी किसी सहायक क्रिया की सहांयता से तथा अकेले ही सामान्य वर्तमान काल का संकेत देते हैं। जैसे 'होसइ करतम अच्छ। यह स्थिति परवर्ती अपभ्रंश से होती हुई खड़ी बोली, अवधी और ब्रज में पहुँची।

भूतकालिक कृदंत

अपभ्रंश भाषा में प्राय: निष्ठा के ही रूप प्रचलित थे तिड़ंत रूप नहीं। यही परंपरा हिंदी बोलियों में भी मिलती है। जैसे, 'गयउ सु केहरि'।

अठभा लग्गा डुंगरहि पहिउ रडन्तउ जाइ।

भूतकालिक कृदंत: जइ भग्गा घर एंतु। (=भागा)

क्रिया विशेषण

कुछ विशेषणों को छोड़कर अपभ्रंश के अधिकांश क्रिया विशेपण संस्कृत के तद्‌भव हैं। कुछ क्रिया विशेपण इस प्रकार हैं।

काल वाचक

अज्जु-अजु, स्थान वाचक – जहिं (यस्मिन्)(उद्‌य) जहं, जहाँ।

रीति वाचक

एउँ, इउँ। अन्य अवस (अवश्यम्) – अवस अवसि (अवधि)।

रूपात्मक विकास

संस्कृत संज्ञा प्राय: तीन अंशों से मिलकर बनती है। धातु, प्रत्यय तथा कारक चिह्न। धातु और प्रत्यय से मूल शब्द बनता है। फिर उसमें कारक चिह्न आदि बनते हैं। हिंदी में विभक्ति का विचार संज्ञा, सर्वनाम, और क्रिया में मुख्यत: होता है। अत: हम अपभ्रंश और हिंदी का तुलनात्मक रूप देकर इनके संबंधों को समझने का प्रयास करेंगे।

अपभ्रंश से लेकर आधुनिक हिंदी तक अनेक कारकों में परसर्ग सहित अथवा परसर्ग रहित बिना विभक्ति के शब्दों का प्रयोग होता रहा है।

3 .6 सारांश

इस इकाई में प्राचीन भारतीय भापाओं के विपय में विस्तृत जानकारी दी गई है। संस्कृत विश्व की उन प्राचीन भापाओं में से एक है, जिसमें वेद, उपनिपद तथा वेदांग ग्रंथों की रचना की गई। संस्कृत में वैदिक और लौकिक ये दो धाराएँ प्रस्फुटित हुईं, जिसने विश्व को धर्म, संस्कृति, दर्शन, एवं सभ्यता का मार्ग दिखाया। लौकिक संस्कृत में उन साहित्यिक ग्रंथों की रचना हुई, जो हमारे लिए प्रेरणा के स्रोत बने। संस्कृत में उन साहित्यिक ग्रंथों की रचना हुई, जो हमारे लिए प्रेरणा के स्रोत बने। संस्कृत व्याकरण सूत्र रूप में इतना समृद्ध बना कि आज भी वैयाकरण उसका लोहा मानते हैं। संस्कृत का 'पाणिनि व्याकरण' सूत्र रूप में सभी विशेषताओं से पूर्ण है। संस्कृत भापा को सपझने के लिए वह एक ऐसी कुंजी है, जिससे सभी व्याकरणिक समस्याओं का समाधान हो जाता है।

संस्कृत की समृद्ध परंपरा का विकास जन भापा के रूप में हुआ और जन भापा का जो स्वरूप हमारे सामने आया, वह पालि भापा थी। इस भापा का विकास बौद्ध प्रचार-प्रसार के कारण हुआ। इस भापा में विकास बौद्ध प्रचार-प्रसार के कारण हुआ। इस भापा में भगवान बुद्ध के उपदेशों के संकलन के साथ-साथ अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथ भी मिलते हैं, जिनकी रचना पालि भापा में हुई है। मानव जीवन की व्यापक एवं गहन अनुभूतियों का चित्रण हमें त्रिपिटिकों में मिलता है, जिसे उनके शिष्यों ने लिपिबद्ध किया, क्योंकि भगवान तथागत के उपदेश मौखिक हुआ करते थे। इस काल के प्रमुख रचनाकार अश्वघोप दिङ्‌नाग आदि थे।

पालि भापा में आए हुए स्वरों में बलाघात पाया जाता है, जबकि व्यजंनों में वैदिक ध्वनियों के करीब है। पालि में तद्‌भव शब्दों की बहुलता है, जब कि तत्सम् शब्द कम पाए गए हैं। इस भापा में एकरूपता मिलती है।

संस्कृत का जनभाषा के रूप में विकास के साथ बौद्धों के आगमन से पालि भापा का जन्म हुआ। पालि जब लोक व्यवहार की भाषा से अलग हो गई, तब जन सामान्य की एक अलग भापा प्रयोग में आयी। इस

भाषा को प्राकृत भाषा नाम दिया गया। इसमें जैन साहित्य की रचना की गई। इसके प्रथम वैयाकरण विक्रमादित्य की राजसभा के प्रमुख विद्वान आचार्य वररुचि थे। चूँकि पाँच प्राकृत भाषाएँ थीं, इसलिए इनकी अपनी अलग-अलग व्याकरणिक विशेषताएँ भी हैं। इसमें सघोष व्यंजनों के स्थान पर अघोष व्यंजनों का प्रयोग मिलता हैं। 'कृत' धातु रूप वैदिक भाषा के समान है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषा का प्राचीन रूप अपभ्रंश है, जो प्राकृत भाषा के अंतिम काल में प्रकाश में आया। अपभ्रंश साहित्य का विकास आभीर जाति से माना जाता है, और यह भी माना जाता है कि इसी घुमन्तू जाति ने इस भाषा का प्रचार किया। अपभ्रंश में साहित्य की रचना हिंदी भाषी प्रदेश के मध्य भाग के चारों ओर पायी जाती हैं। इस साहित्य के सबसे उत्कृष्ट विद्वान पुष्प दंत माने जाते हैं। अपभ्रंश साहित्य के दो रूप माने गए, जिसमें लौकिक और अलौकिक रूप हमें मिलते हैं। अपभ्रंश के व्याकरण में संस्कृत तथा प्राकृत से प्राप्त अन्त्य स्वरों का ह्रास हुआ, तथा उपान्त स्वरों की मात्रा सुरक्षित रही। अपभ्रंश में प्राकृत की सभी ध्वनियाँ मौजूद हैं।

अपभ्रंश का अंतिम काल हिंदी भाषा और साहित्य का विकास काल है। इसे हम हिंदी भाषा और साहित्य का आदि काल मान सकते हैं। अगली इकाई में आप भारतीय आर्य भाषाओं के विकास काल के विषय में अध्ययन करेंगे।

3 .7 अभ्यास प्रश्न

1. संस्कृत साहित्य और भाषा का परिचत दीजिए।
2. पालि भाषा की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है, सिद्ध कीजिए।
3. अपभ्रंश भाषा और साहित्य हिंदी साहित्य के आदिकाल के सूचक है, प्रमाणित कीजिए।
4. संस्कृत से हिंदी तक भाषा के सरलीकरण की प्रक्रिया को समझाइए।

इकाई 4 आधुनिक आर्य भाषाएँ और हिंदी

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 आधुनिक आर्य-भाषाओं का विकास, क्षेत्र और परिचय

4.3 आधुनिक आर्य-भाषाओं का वर्गीकरण

4.4 आधुनिक आर्य-भाषाओं की विशेषताएँ

4.5 हिंदी भाषा क्षेत्र और बोलियों का विभाजन

4.6 बोलियों और भाषाओं की विशेषताएँ

4.7 सारांश

4.8 अभ्यास प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- आधुनिक आर्य-भाषाओं का विकास और उसके क्षेत्र का निर्धारण कर सकेंगे:
- आधुनिक आर्य-भाषाओं की विशेषताएँ बता सकेंगे और उसका वर्गीकरण कर सकेंगे;
- हिंदी की बोलियों का परिचय दे सकेंगे तथा हिंदी क्षेत्र को पहचान सकेंगे;
- बोलियों और भाषाओं की विशेषताएँ बता सकेंगे ।

4.2 आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास, क्षेत्र और परिचय

अपभ्रंश काल की समाप्ति के बाद और आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं के बीच का काल भारतीय आर्य-भाषा के विकास क्रम में बहुत अस्पष्ट काल है । कथ्य भाषा के रूप में अपभ्रंश कब तक बनी रही और कब आधुनिक आर्य-भाषाएँ अपनी विभिन्न विशेषताओं से पूर्ण होकर अस्तित्व में आयीं, इसका प्रमाण नहीं मिलता है। कथ्य भाषा के रूप में अपभ्रंश की स्थिति न होने पर भी बहुत समय तक अपभ्रंश में साहित्य रचना होती रही और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की प्राचीन रचनाओं में भी अपभ्रंश के विविध रूपों का व्यवहार होता रहा। आचार्य हेमचंद्र (बारहवीं शताब्दी में) का अपभ्रंश व्याकरण लिखना यह प्रमाणित करता है कि उनके समय तक अपभ्रंश अपने चरमोत्कर्ष पर थी। उन्होंने अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ 'काव्यानुभाश' में ग्रम्यापभ्रंश का उल्लेख किया है।

आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं में ईसा की सोलहवीं शताब्दी में साहित्यिक रचनाएँ मिलने लगती हैं। उस समय की रचनाओं में भाषा का जो स्वरूप मिलता है, उसमें अपभ्रंश की विशेषताएँ नहीं मिलतीं, बल्कि आधुनिक आर्य-भाषा की विशेषताएँ मिलने लगती हैं। इस दृष्टि से यदि हम विचार करें तो हम पाते हैं कि आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं का स्वरूप प्राप्त करने का समय इस रचनाओं से एक शताब्दी पूर्व माना जा सकता है। इस प्रकार पंद्रहवीं शती तक भारतीय आर्य-भाषा आधुनिक काल में पदार्पण कर चुकी थी और आचार्य हेमचंद्र के पश्चात तेरहवीं शती के प्रारंभ से आधुनिक आर्य-भाषाओं के अभ्युदय के समय पन्द्रहवीं शती के पूर्व तक का काल संक्रमण काल माना जा सकता है, जिसमें भारतीय आर्य-भाषा धीरे-धीरे अपभ्रंश की स्थिति को छोड़कर आधुनिक काल की विशेषताओं से युक्त होती जा रही थीं।

आधुनिक आर्य-भाषाओं में सिंधी, गुजराती, लहँदा, पंजाबी, मराठी, उड़िया, बंगाली, असमिया, हिंदी (पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी) प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त कश्मीरी भी भारत की एक महत्वपूर्ण भाषा है, जो मूलत: भारत-ईरानी की दरद भाषा वर्ग में आती है। उर्दू वस्तुत: भाषावैज्ञानिक स्तर पर हिंदी की ही अरबी-फ़ारसी से प्रभावित एक शैली है। राजस्थानी पहाड़ी तथा बिहारी को विद्वानों ने अलग रखा है, किंतु ये हिंदी प्रदेश में आती हैं। वस्तुत: भाषा के आकृतिमूलक या पारिवारिक वर्गीकरण से सांस्कृतिक वर्गीकरण को कम महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता और इस दृष्टि से राजस्थानी, पहाड़ी, बिहारी हिंदी के सांस्कृतिक वर्ग में आती हैं। भारत के बाहर बोली जाने वाली आधुनिक आर्य-भाषाओं में नेपाली, सिंहली तथा जिप्सी भी उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं का क्षेत्र संपूर्ण उत्तर भारत है। इसमें बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान है। इसके अतिरिक्त पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश भी इसके अंतर्गत आते हैं। गुजरात, महाराष्ट्र भी इसके प्रमुख क्षेत्र हैं। इन प्रदेशों की भाषाओं का परिचय नीचे दिया जा रहा है।

भाषा सर्वे के आधार पर मुख्य आधुनिक आर्य-भाषाओं का परिचय इस प्रकार है:

1. **सिंधी :** सिंध प्रांत में सिंधु नदी के किनारों पर सिंधी भाषा बोली जाती है। इस भाषा को बोलने वाले मुस्लिम लोगों की संख्या सर्वाधिक है, इसीलिए इसमें फ़ारसी शब्दों का प्रयोग अधिक पाया जाता है। सिंधी भाषा फारसी लिपि का एक विकृत रूप है। यह कभी-कभी गुरुमुखी में भी लिखी जाती हैं। सिंधी भाषा की पाँच मुख्य बोलियाँ है जिनमें 'विचोली', 'व्राचड' 'कच्छी' प्रमुख हैं। इस भाषा में साहित्य रचना कम है।

2. **लहंदा:** इसे पश्चिमी पंजाब की भाषा कहा जाता है जो इस समय पाकिस्तान में है। लहंदा और पंजाबी आपस में इतनी सन्निकट हैं कि दोनों में भेद करना काफ़ी कठिन कार्य है। लहंदा पर दरद और पिशाच भाषाओं का प्रभाव बहुत अधिक है। इसी प्रदेश में 'कैकेय' देश पड़ता है, जहाँ पैशाची प्राकृत और कैकेय अपभ्रंश बोली जाती थी। लहंदा के अन्य नाम पश्चिमी पंजाबी, जटकी, उच्चा तथा हिंदकी आदि हैं। यह पंजाबी से बहुत भिन्न है। इसकी अपनी लिपि 'लंडा' है, लेकिन आजकल यह फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है। यह कश्मीर में प्रचलित शारदा लिपि की उपशाखा मानी जाती है।

3. **कश्मीरी :** प्राचीन काल से ही कश्मीरी पर संस्कृत का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है, क्योंकि कश्मीर के सारस्वत ब्राह्मणों ने संस्कृत को अध्ययन-अध्यापन की भाषा बनाया है। इसके इतिहास को देखने से प्रतीत होता है कि 1,000 ई. के पहले से ही कश्मीरी में साहित्य रचना होने लगी थी, लेकिन प्राचीन कश्मीरी साहित्य का अधिकांश अंश विलुप्त हो गया। कश्मीरी भाषा के प्रसिद्ध साहित्यिक भक्त कवि 'लल्लद्य' हैं जिनका समय 14वीं शताब्दी माना जाता है। पहले कश्मीर में ब्राह्मी-लिपि से उत्पन्न शारदा लिपि प्रचलित थी, किंतु आज वहाँ फ़ारसी लिपि का प्रचार है। संविधान की अष्टम सूची की अठारह स्वीकृत भाषाओं में कश्मीरी को स्थान मिला है।

4. **पंजाबी :** पंजाबी भाषा का हिंदी के पश्चिम उत्तर भाग में हैं। यह पाकिस्तान के पश्चिमी पंजाब के पूर्वी भाग तथा पूर्वी पंजाब के पश्चिमी भाग में बोली जाती है। पूर्वी पंजाब के पूर्वी भाग में हिंदी का विस्तृत क्षेत्र है। पंजाबी पर दरद अथवा पिशाच भाषाओं का कुछ प्रभाव शेष है। पंजाबी का शुद्ध रूप अमृतसर के आस-पास बोला जाता है। इसकी उत्पत्ति 'टक्क' अपभ्रंश से हुई है, किंतु इसपर शौरसेनी का पर्याप्त प्रभाव है। पूर्वी पंजाबी की कई उप-भाषाएँ हैं, जिनमें डोगरी प्रसिद्ध है। यह जम्मू तथा कांगड़ा में बोली जाती है। पंजाबी की अपनी लिपि 'लंडा' है। सिक्खों के गुरु अंगद (1538-52 ई.) ने देवनागरी की सहायता से इस लिपि में सुधार किया था, जिसके कारण लंडा का यह नया रूप 'गुरुमुखी' कहलाया। पंजाबी में 16वीं शती में रचित सिक्ख गुरुओं के पद मिलते हैं। इधर पंजाब सरकार ने गुरुमुखी तथा नागरी हिंदी को प्रदेश की भाषा स्वीकार किया है। इस भाषा में साहित्य नया है। सिक्खों के ग्रंथसाहब की भाषा प्राय: मध्यकालीन हिंदी है यद्यपि वह गुरुमुखी अक्षरों में लिखी गयी है।

5. **गुजराती :** गुजराती भाषा गुजरात, बड़ौदा और निकटवर्ती अन्य देशी राज्यों में बोली जाती है। गुजराती पर गूजर जाति का अत्यधिक प्रभाव है। गुजराती में बोलियों का स्पष्ट भेद अधिक नहीं है। भाषावैज्ञानिकों के अनुसार इसकी उत्पत्ति प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी से हुई है, जिसके उदाहरण हमें

12वीं और 13वीं शताब्दी से लेकर 15वीं शताब्दी तक के जैन लेखकों की कृतियों में मिलते हैं। गुजराती साहित्य बहुत विस्तृत नहीं हैं, लेकिन जो भी हमें मिलता है, वह काफी अच्छी अवस्था में है। गुजराती के आदि कवि नरसी मेहता हैं, जिनका आदर आज भी बहुत होता है। प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचंद्र भी गुजराती थे, जो 12वीं शती में हुए थे। इन्होंने अपने व्याकरण में गुजरात की नागर अपभ्रंश का वर्णन किया है। आजकल गुजराती कैथी से मिलती-जुलती लिपि में लिखी जाती है, जो देवनागरी के बहुत निकट है। गुजराती में मीरा तथा अन्य कृष्ण भक्त कवियों की कृतियाँ उपलब्ध हैं। आधुनिक गुजराती में महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा लिखी हैं और श्री के.एम. मुंशी तथा उनकी पत्नी लीलावती मुंशी ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं।

6. **राजस्थानी :** पंजाबी के ठीक दक्षिण में राजस्थानी अथवा राजस्थान की उप-भाषाओं का वर्ग है। यह मध्यदेश की प्राचीन भाषा का ही पश्चिमी विकसित रूप है। इसके विकास की अंतिम सीढ़ी गुजराती है। राजस्थानी भाषा पर मध्य देश की शौरसेनी की पूरी छाप है। राजस्थानी वर्ग के अंतर्गत मुख्य चार उप-भाषाएँ हैं- मेवाती, जयपुरी, मारवाड़ी और मालवी। राजस्थानी उप-भाषाएँ बोलने वाले भूमि भाग में हिंदी भाषा प्रमुख साहित्यिक भाषा है। राजस्थानी का प्राचीन साहित्य मुख्य रूप में डिंगल अथवा पुरानी साहित्यिक मारवाड़ी में है। पुरानी मारवाड़ी और गुजराती में बहुत कम भेद हैं। भौगोलिक दृष्टि से इसे चार भागों में बाँटा जा सकता है : (क) पश्चिमी राजस्थानी या मारवाड़ी-मेवाड़ी और शेखावटी भी इसी के अंतर्गत आती हैं। यह जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर तथा उदयपुर में बोली जाती है। (ख) पूर्वी मध्य राजस्थानी - जयपुरी तथा उसकी विभिन्न बोलियाँ जैसे अजमेरी और हाड़ौती इसी के अंतर्गत हैं। यह जयपुर, कोटा तथा बुँदी में बोली जाती हैं। (ग) उत्तरपर्वू राजस्थानी-इसके अंतर्गत मारवाड़ी तथा अहीरवाटी बोलियाँ आती हैं। (घ) मालवी- इसका केंद्र मालवा प्रदेश का इंदौर राज्य है।

7. **हिंदी :** इसकी दो मुख्य उपभाषाएँ हैं (क) पूर्वी हिंदी (ख) पश्चिमी हिंदी।

पूर्वी हिंदी : पूर्वी हिंदी के पश्चिम में पश्चिमी हिंदी तथा पूरब में बिहारी का क्षेत्र है। प्राचीन युग में इस भू-भाग में अर्ध-मागधी, प्राकृत तथा अर्ध-मागधी अपभ्रंश प्रचलित थीं। पूर्वी हिंदी की तीन मुख्य बोलियाँ अवधी (कोसली), बघेली तथा छत्तीसगढ़ी हैं। इनमें अवधी साहित्य-सम्पन्न भाषा है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ रामचरित मानस की रचना इसी में की है। अवध के मुसलमान सूफी कवियों कुतुबन, मंझन तथा जायसी आदि ने अवधी को ही साहित्य रचना का माध्यम बनाया था। पूर्वी हिंदी की उप-भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं। इसके पश्चिम में शौरसेनी प्राकृत का नया रूप पश्चिमी हिंदी उप-भाषाएँ है।

पश्चिमी हिंदी : यह मध्य देश की भाषा है। मेरठ और बिजनौर के निकट बोली जाने वाली पश्चिमी हिंदी की खड़ी बोली के रूप से ही वर्तमान साहित्यिक हिंदी तथा उर्दू की उत्पत्ति हुई है। इसका उपयुक्त नाम नागरी हिंदी है। भारत के संविधान में इसको राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन किया गया है। पश्चिमी हिंदी की उप-भाषा के पद पर आसीन किया गया है। पश्चिमी हिंदी की उप-भाषा में बाँगरू, कनौजी तथा बुंदेली सम्मिलित हैं। वर्तमान समय में समस्त हिंदी भाषा प्रदेश का साहित्य खड़ी बोली हिंदी में ही लिख जा रहा है।

8. **बिहारी :** यद्यपि बिहार का संबंध राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से उत्तर प्रदेश से रहा है, लेकिन उत्पन्न की दृष्टि से यहाँ की उपभाषाएँ बंगाली की सगोत्रीय हैं। बिहारी का क्षेत्र पूर्वी हिंदी तथा बंगला के बीच में हैं। बिहारी की उपभाषाओं में मैथिली, मगही तथा भोजपुरी की गणना की जाती है। बिहारी भाषा नाम ग्रियर्सन ने दिया है। उत्पत्ति की दृष्टि से बिहारी का संबंध मागधी अपभ्रंश से है। बिहारी की उप-भाषाएँ तीन लिपियों में लिखी जाती हैं। छपाई में देवनागरी अक्षर का प्रयोग होता है तथा लिखने में साधारणतया कैथी लिपि का प्रयोग होता है। मैथिली लिपि बंगला लिपि से बहुत अधिक मिलती है। मैथिली में प्राचीन साहित्य मिलता हैं, जबकि भोजपुरी में कबीर के कुछ पुराने पद मिलते हैं।

9. **पहाड़ी भाषाएँ :** हिमालय के दक्षिण में नेपाल से शिमला प्रदेश तक पहाड़ी भाषाएँ बोली जाती है। इसके मुख्य रूप से तीन भेद हैं। (क) पश्चिमी पहाड़ी (ख) मध्य पहाड़ी (ग) पूर्वी पहाड़ी। वर्तमान पहाडी भाषाएँ राजस्थानी से बहुत मिलती-जुलती हैं।

10. **उड़िया :** यह प्राचीन उत्कल या अथवा वर्तमान उड़ीसा की भाषा है। बंगला से उसका घनिष्ठ संबंध है। 'उड़िया' का दूसरा रूप 'ओडिया' है। तेरहवीं शताब्दी के एक शिलालेख से विदित होता है कि उस समय तक उड़िया भाषा काफी विकसित हो चुकी थी। उड़िया की लिपि बहुत कठिन है। इसका व्याकरण बांगला से बहुत मिलता जुलता है। बांगला की तरह उड़िया भी मागधी अपभ्रंश से निकली है। मराठों और तेलुगु राजाओं के अधिकार में रहने कारण इस भाषा में मराठी और तेलुगु के शब्द मिलते हैं। उड़िसा में कृष्ण संबंधी साहित्य मिलता है। मुसलमानों और अंग्रेजों के कारण इस भाषा में फारसी और अंग्रेजी के शब्द भी मिलते हैं।

11. **बंगला:** बंगला भाषा गंगा के मुहाने और उसके उत्तर पश्चिम के मैदानी भागों में बोली जाती है। इसकी कई उप-शाखाएँ हैं, जिनमें पश्चिमी तथा पूर्वी उप-शाखाएँ मुख्य हैं। पश्चिमी बंगला का केंद्र कोलकाता हैं और पूर्वी बंगला का केंद्र ढाका है, जो आजकल बंगला देश कहलाता है। नवीन यूरोपीय विचाधारा का सर्वप्रथम प्रभाव बंगला भाषा तथा साहित्य पर पड़ा। यूरोपीय विशेषकर अंग्रेजी साहित्य ने बंगला की उन्नति में विशेष योगदान दिया। आधुनिक बंगला साहित्य नव्य आर्य भाषाओं में सर्वोत्कृष्ट है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर और शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय ने बंगला साहित्य के विकास में अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। बंगला की अपनी लिपि है, बांगला उच्चारण की अपनी विशेषता है। बंगला में 'अ' का 'ओ' तथा 'स' का 'श' हो जाता है।

12. **असमी :** असमी असाम असमिया प्रदेश की भाषा है। बंगला से इसका घनिष्ठ संबंध है किंतु साहित्य के क्षेत्र में यह बंगला की तरह समृद्ध नहीं है। प्राचीन असमियों में शंकर देव के कृष्ण संबंधी भक्ति रचना मिलती है। यद्यपि इसका व्याकरण बांगला व्याकरण से बहुत भिन्न नहीं है, किंतु दोनों भाषाओं की साहित्य भाषा का विश्लेषण करने पर इनका भेद दिखायी देता है। असमी भाषा ब्राह्मी से उत्पन्न है लेकिन इसमें स्थानीय शैली के रूप में कुछ संशोधन कर लिया गया हैं।

13. **मराठी :** दक्षिण में महाराष्ट्री आपभ्रंश से उत्पन्न मराठी भाषा का क्षेत्र है। इसके अंतर्गत कोंकण की भाषा कोंकणी तथा बस्तर की भाषा हलबी है। अनेक आधुनिक भाषा विज्ञानी कोंकणी को मराठी से स्वतंत्र भाषा मानते हैं। मराठी पुणे के चारों ओर तथा नागपुर के आस-पास के चार जिलों में बोली जाती है। इसके दक्षिण में द्रविड भाषाएँ हैं। मराठी की तीन मुख्य बोलियाँ हैं, जिनमें पूना के निकट बोली जाने वाली मराठी साहित्यिक भाषा है। मराठी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। नित्य के व्यवहार में मोड़ी लिपि का भी व्यवहार होता है। इस लिपि का आविष्कार महाराणा शिवाजी (1627-80 ई.) के सुप्रसिद्ध मंत्री बालाजी अवाणी ने किया था। मराठी साहित्य काफी प्राचीन है तथा लोकप्रिय है। मराठी साहित्य में सन्त तुकाराम तथा रामदास उत्कृष्ट भक्त कवि थे।

4.3 आधुनिक आर्यभाषाओं का वर्गीकरण

1880 ई. में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के अध्ययन के आधार पर डॉ. ए.एफ.आर हार्नले ने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि भारत में आर्यों का आगमन पंजाब में हुआ और दूसरा आगमन उत्तर हिमालय, दक्षिण में विंध्य प्रदेश, पश्चिम में सरहिंद तथा पूरब में गंगा, यमुना के संगम तक था। डॉ हार्नले के इस सिद्धात को डॉ. ग्रियर्सन ने स्वीकार किया। भाषा तत्व के आधार पर ग्रियर्सन के आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को तीन उप-शाखाओं में विभक्त किया गया। इसमें वे छह भाषा समुदाय को स्वीकार करते हैं। उन्होंने लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया में आधुनिक आर्य भाषाओं का निम्नलिखित वर्गीकरण किया है :

(क) बाहरी उप-शाखा

उत्तरी पश्चिमी समुदाय

1. लहंदा अथवा पश्चिमी पंजाबी
2. सिंधी

दक्षिणी समुदाय

3. मराठी

पूर्वी समुदाय

4. उड़िया
5. बिहारी
6. बांगला
7. असमिया

(ख) मध्य उप-शाखा

बीच का समुदाय

8. पूर्वी हिंदी

(ग) भीतरी उप-शाखा

केंद्रीय अथवा भीतरी समुदाय

9. पश्चिमी हिंदी
10. पंजाबी
11. गुजराती
12. भीली
13. खानदेशी
14. राजस्थानी

पहाड़ी समुदाय

15. पूर्वी पहाड़ी अथवा नेपाली
16. मध्य या केंद्रीय पहाड़ी
17. पश्चिमी पहाड़ी

डॉ. ग्रियर्सन के मतानुसार बाहरी उप-शाखा की भिन्न-भिन्न भाषाओं में उच्चारण तथा व्याकरण में ऐसी समानता पायी जाती है, जो उन्हें भीतरी उप-शाखाओं की भाषा से अलग करती है। जैसे, भीतरी उप-शाखा की भाषाओं में 'स' का उच्चारण बाहरी उप-शाखा की भाषाओं बंगला आदि में 'श' हो जाता है। संज्ञा के रूपांतरण में भी यह भेद पाया जाता है। भीतरी उप-भाषा की भाषाएँ वियोगावस्था में है, किंतु बाहरी उप-शाखा की भाषाएँ संयोगावस्था में है। जैसे, हिंदी में संबंधकारक 'का', 'के', 'की' लगाकर बनाया जाता है। इन चिह्नों का संज्ञा से पृथक अस्तित्व है। बंगला भाषा में यही कारक संज्ञा में 'एर' लगाकर बनता है और यह चिह्न संज्ञा का एक भाग हो जाता है, जैसे 'रामेर' (राम का)। क्रिया के रूपांतरों में भी इस तरह के भेद पाए जाते हैं। हिंदी में तीनों पुरुषों के सर्वनामों के साथ केवल 'मारा' कृदंत रूप का व्यवहार होता है। लेकिन बंगला तथा बाहरी समुदायी की भाषाओं का अधिक रूपों का प्रयोग करना पड़ता है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को दो या तीन उप-शाखाओं में वर्गीकृत करने के सिद्धांत से सुनीति कुमार चटर्जी सहमत नहीं है। ग्रियर्सन का वर्गीकरण हिंदी की उपभाषाओं को अलग-अलग समुदायों में बाँट देता है। यह तार्किक नहीं है। इस संबंध में उन्होंने पर्याप्त प्रमाण दिया है। चटर्जी जी के आधार पर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

(क) उदीच्य (उत्तरी)

1. सिंधी
2. लहंदा
3. पंजाबी

(ख) प्रतीच्य (पश्चिमी)

4. गुजराती

(ग) मध्य देशीय (बीच का)

5. राजस्थानी
6. पूर्वी हिंदी
7. पश्चिमी हिंदी
8. बिहारी
9. पहाड़ी

(घ) प्राच्य (पूर्वी)

10. उड़िया
11. बंगाली
12. असमी

(च) दक्षिणात्य (दक्षिणी)

13. मराठी

पहाड़ी भाषाओं का मूलाधार चटर्जी पैशाची, दरद या खस को मानते हैं। मध्य काल में ये भाषाएँ राजस्थानी की प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं से बहुत अधिक प्रभावित हो गयी थीं। हबूड़ी या जिप्सी बोलियाँ तथा सिंहली भाषा भी आधुनिक आर्य भाषाओं के अंतर्गत हैं।

इन दोनों वर्गीकरणों में हिंदी की उपभाषाएँ और बोलियाँ अलग-अलग वर्गों में बँट जाती हैं। हिंदी भाषी क्षेत्र में बोलियाँ बहुत हैं, फिर भी औपचारिक स्थितियों में सर्वत्र हिंदी का ही प्रयोग होता है। शिक्षा, प्रशासन वाणिज्य व्यापार विधि आदि क्षेत्रों में राजभाषा हिंदी ही इस क्षेत्र का संपर्क सूत्र है इस कारण इस भूभाग को भाषिक विशेषताओं के आधार पर बाँटना भाषा वैज्ञानिकों को सही नहीं लगता। धीरेंद्र वर्मा ने एक व्यावहारिक सुझाव दिया है, जिससे हिंदी क्षेत्र की अस्मिता बनी रहे। उनका वर्गीकरण इस प्रकार है।

1.	उत्तरी	-	सिंधी, लहंदा, पंजाबी
2.	पश्चिमी	-	गुजराती
3.	मध्यदेशीय	-	राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी, पहाड़ी की उपभाषाएँ
4.	पूर्वी	-	ओड़िया, बांगला, असमिया
5.	दक्षिणी	-	मराठी

4.4 आधुनिक आर्य भाषाओं की विशेषताएँ

ईशा की पंद्रहवीं शताब्दी तक भारतीय आर्य भाषाएँ आधुनिक काल में पदार्पण कर चुकी थीं। पैशाची, शौरसेनी, महाराष्ट्री एवं मागधी अपभ्रंश भाषाओं ने क्रमशः आधुनिक सिंधी, पंजाबी, हिंदी (ब्रजभाषा, खड़ी बाली) राजस्थानी, गुजराती, मराठी, पूर्वी हिंदी (अवधी आदि) बिहारी, बंगला, उड़िया भाषाओं को जन्म दिया। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में परिवर्तन और ह्रास की जो क्रिया मध्यकाल के आरंभ में चल पड़ी थी, वह आधुनिक आर्य भाषाओं के रूप में पूरी हुई। प्रारंभ से ही हम देखते आए हैं कि परिवर्तन की गति आर्यावर्त के पूर्वी भाग में सबसे तेज़ रही, लेकिन इसके विपरीत उत्तर पश्चिम प्रदेश में परिवर्तन की गति बहुत धीमी रही। इसके फलस्वरूप भाषा का स्वरूप धीरे-धीरे बदलता रहा। मध्य देश में जहाँ नवीन परिवर्तन होते रहे, वहीं भाषा का प्राचीन रूप भी उसमें सुरक्षित रहा।

मध्य भारतीय आर्य भाषा के प्रारंभ से ही प्रकृति प्रत्यय का ज्ञान धुँधला होने लगा था, जिससे स्वरों के मात्रा काल में अनेक परिवर्तन हुए। आर्य भाषा की प्राचीन आर्य भापा से तुलना करने पर यह पता चलता है कि व्युत्पत्ति ज्ञान के लोप हो जाने पर नवीन आर्य भापा में स्वरों के मात्रा काल में बहुत अधिक परिवर्तन हुए। बलात्मक स्वराघात के परिणामस्वरूप वतर्मान भारतीय आर्य-भाषा में स्वरों का लोप देखा जाता है। शब्द की उपधा में बलात्मक स्वराघात होने पर अंतिम दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता हैं। जैसे कीरत < कीर्ति, रास् < राशि। शब्द के आदि स्वर का लोप भी बलात्मक स्वराघात का परिणाम है। अभ्यन्तर > हि. भीतर, मराठी भीतरी आदि भी बलात्मक स्वराघात के परिणाम हैं।

स्वरों तथा व्यंजनों के उच्चारण में भी आधुनिक भारतीय आर्य भापाओं में नवीनता परिलक्षित होती है। बांगला में 'अ' लुंठित निम्न मध्य पश्च स्वर है। मराठी में 'च', 'ज' का उच्चारण कई जगह 'त्स', 'द्स' हो गया है। पश्चिमी हिंदी और राजस्थानी में 'ऐ' 'औ' अग्र एवं पश्च-निम्न-मध्य ध्वनियाँ हैं। आधुनिक आर्य भापाओं में परिवर्तन की विशेषता निम्नलिखित रूप में रही है।

प्राकृत के समीकृत संयुक्त व्यंजनों 'क्क', 'क्ख', 'ग्ग', 'ग्घ' इत्यादि में से केवल एक व्यंजन ध्वनि लेकर पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर का दीर्घ करना पंजाबी सिंधी के अतिरिक्त सम्पूर्ण नवीन भारतीय आर्य भापाओं में दिखाई देता है।

आधुनिक भारतीय आर्य भापाओं में प्रमुखत: वही ध्वनियाँ है, जो प्राकृत, अपभ्रंश आदि में थीं, किंतु उनमें कुछ वैयक्तिक विशेपताएँ भी हैं। (क) पंजाबी आदि में उदासीन स्वर 'अ' का प्रयोग होने लगा है। अवधी आदि में अघोप स्वरों का प्रयोग होता है। गुजराती में मर्मर स्वर का विकास हुआ है। प्राकृत, अपभ्रंश में केवल मूल स्वर थे, किंतु अवहट्ट में 'ऐ', 'औ, विकसित हुए। कई आधुनिक भापाओं में इनका प्रयोग दिखाई देता है, यद्यपि कुछ बोलियों में केवल मूल स्वरों का प्रयोग हो रहा है, संयुक्त स्वरों का प्रयोग नहीं हो रहा है। 'ऋ' का प्रयोग तत्सम शब्दों में है, किंतु बोलने में यह स्वर न रहकर 'र' के साथ 'इ' या 'उ' स्वर का योग रह गया है। उत्तरी भारत में जब इसका उच्चारण किया जाता है जब ध्वनियों में जहाँ तक उप्म ध्वनियों का प्रश्न है, इसमें लिखने के 'स प श' ध्वनियों का प्रयोग हो रहा है, लेकिन ध्वनियों के उच्चारण में एकरूपता नहीं है। हिंदी में ये ध्वनियों ऊप्म संघर्षी हैं, किंतु मराठी में इनका एक उच्चारण 'त्स' (च) द्ज (ज) जैसा है। विदेशी भापाओं के प्रभाव के कारण आधुनिक आर्य भापाओं में अनेक भापाओं में अनेक नयी ध्वनियाँ आ गयी हैं जैसे क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ऑ आदि। लोक भापाओं में इसका उच्चारण इस रूप में नहीं हो पा रहा है, किंतु शिक्षित वर्ग इसको बोलने का प्रयास करता है।

जिन शब्दों के उपधा स्वर या अंतिम स्वर को छोड़कर किसी और पर बलात्मक स्वराघात था, उनके अंतिम दीर्घ स्वर पर प्राय: ह्रस्व स्वर हो गए हैं। अंतिम 'अ' स्वर संयुक्त व्यंजन आदि को छोड़कर प्राय: लुप्त हो गया है, जैसे, (राम, अंब, आदि)। प्राकृत आदि भापाओं में जहाँ समीकरण के कारण द्वित्व या दीर्घ व्यंजन हो गए थे, वही आधुनिक भापाओं में द्वित व्यंजन में केवल एक व्यंजन शेप रहा और पूर्ववर्ती स्वरों में क्षतिपूरक दीर्घता आ गयी। जैसे कर्म > कम्म > काम, अप्ट > अट्ठ > आठ। पंजाबी और सिंधी भापाओं में इसका अपवाद मिलता है। इनमें प्राकृत से मिलते-जुलते रूप चलते हैं।

आधुनिक भारतीय आर्य भापाओं में बलात्मक स्वराघात पाया जाता है। यह वाक्य स्तर पर संगीतात्मक भी है। अपभ्रंश की तुलना में इसमें रूप कम हो गए हैं जिससे भापा सरल हो गयी है। संस्कृत में कारक के तीनों वचनों में 24 रूप बनते थे, लेकिन प्राकृत में ये रूप घटकर 12 रह गए अपभ्रंश में ये रूप 6 शेप बचे और आगे चलकर आधुनिक भापाओं में इनका रूप केवल 3 या 4 हो गया। आधुनिक भापाओं में क्रिया रूपों में भी पर्याप्त कमी हो गयी है।

रचना की दृष्टि से संस्कृत, पाली प्राकृत आदि भापाएँ योगात्मक थीं। लेकिन अपभ्रंश भापा से लेकर ये अयोगात्मक हो गयीं। आधुनिक आर्य भापाएँ पूर्णत: अयोगात्मक हो गयी हैं। नाम रूपों के लिए परसर्गों का प्रयोग होता है लेकिन धातु रूपों के लिए कृदंत और सहायक क्रिया के आधार पर संयुक्त क्रिया का प्रयोग होने लगा। संस्कृत भापा में तीन वचन थे, लेकिन मध्य कालीन आर्य भापाओं में दो वचन रह गए। संस्कृत भाषा में तीन लिंग थे, मध्यकालीन आर्य भापा तथा आधुनिक भारतीय आर्य भापाओं में दो ही लिंग शेप बचे (पुल्लिंग स्त्रीलिंग)। संभवत: तिब्बत-बर्मी भापाओं के प्रभाव के कारण बांगला, उड़िया तथा असमिया में लिंग भेद कम दिखायी देता है। बिहारी नेपाली में इसका प्रयोग कम दिखायी देता है। तीनों लिंगों का प्रयोग केवल गुजराती, मराठी और सिंहली में दिखाई देता है।

आधुनिक आर्य भाषाओं में प्राचीन तथा मध्ययुगीन भाषाओं से बहुत अंतर आया है। शब्द भंडार की दृष्टि से सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पश्तो, तुर्की, अरबी, फारसी, पुर्तगाली तथा अंग्रेजी आदि से कई हजार नए शब्द आए हैं। इससे पूर्व भाषाओं का प्रमुख शब्द भंडार तत्सम, तद्भव और देशज था। मध्ययुगीन भाषाओं की तुलना में आज की भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक हो रहा है तथा तद्भव का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हो रहा है। इधर परिभाषिक शब्दावली की कमी को दूर करने के लिए नए शब्दों का निर्माण किया जा रहा है और उसका उपयोग भी किया जा रहा है। अनुकरणात्मक और प्रतिध्वन्यात्मक शब्दों का बहुत प्रयोग होता है।

4.5 हिंदी भाषा क्षेत्र और बोलियों को विभाजन

'हिंदी' शब्द किसी तरह भाषा का नाम बन गया, इसका एक लम्बा इतिहास है। प्राचीन काल में यह देश भारत खंड तथा जम्बू द्वीप के नाम से जाना जाता था। देश के लिए 'हिंदी' और बाद में 'हिंदुस्तान' बाद का विकास है। 'हिंदी' की भाषा के रूप में भाषा के अर्थ में हिंदी के अतिरिक्त हिंदुई, हिंदवी, दक्खिनी, हिंदुस्तानी, भाषा आदि का प्रयोग होता था। इस बारे में आप विस्तार से अगले खंड में पढेंगे।

प्राचीनता की दृष्टि से हिंदी का यह नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। विकास की दृष्टि से यह अत्यंत प्राचीनकाल से हिमालय तथा विंध्य क्षेत्र के बीच की भूमि आर्यावर्त के नाम से प्रसिद्ध है। संस्कृत, पालि, प्राकृत इस मध्य देश के विभिन्न युगों की भाषा थी कार्यक्रम के अनुसार इस प्रदेश में शौरसेनी अपभ्रंश का प्रचार हुआ। शौरसेनी अपभ्रंश ही आगे चलकर हिंदी के रूप में विकसित हुई। इसपर पंजाबी का पर्याप्त प्रभाव है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में हिंदी शब्द का अर्थ है बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, तथा पंजाब एवं हिमाचल प्रेदश के कुछ भागों की भाषा। इस पूरे प्रदेश में उर्दू को छोड़कर सभी भाषाएँ या बोलियाँ हिंदी में समाहित हैं, इस दृष्टि से हिंदी भाषा की पाँच उपभाषाएँ हैं, तथा उनके अंतर्गत 18 बोलियाँ है।

हिंदी भाषा

1. राजस्थान की उपभाषाः — क्षेत्र : राजस्थान

   बालियाँ :
   1. मेवाती
   2. मालवी
   3. हाड़ौली (जयपुरी)
   4. मारवाड़ी (मेवाड़ी)

2. पश्चिमी उपभाषा — क्षेत्र : हरियाणा, उत्तर प्रदेश

   बोलियाँ :
   5. खड़ी बोली
   6. बाँगरु या हरियाणवी
   7. ब्रजभाषा
   8. कन्नौजी
   9. बुंदेली

3. पूर्वी उपभाषा — क्षेत्र : उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश छत्तीसगढ़

   बोलियाँ :
   10. अवधी
   11. बघेली
   12. छत्तीसगढ़ी

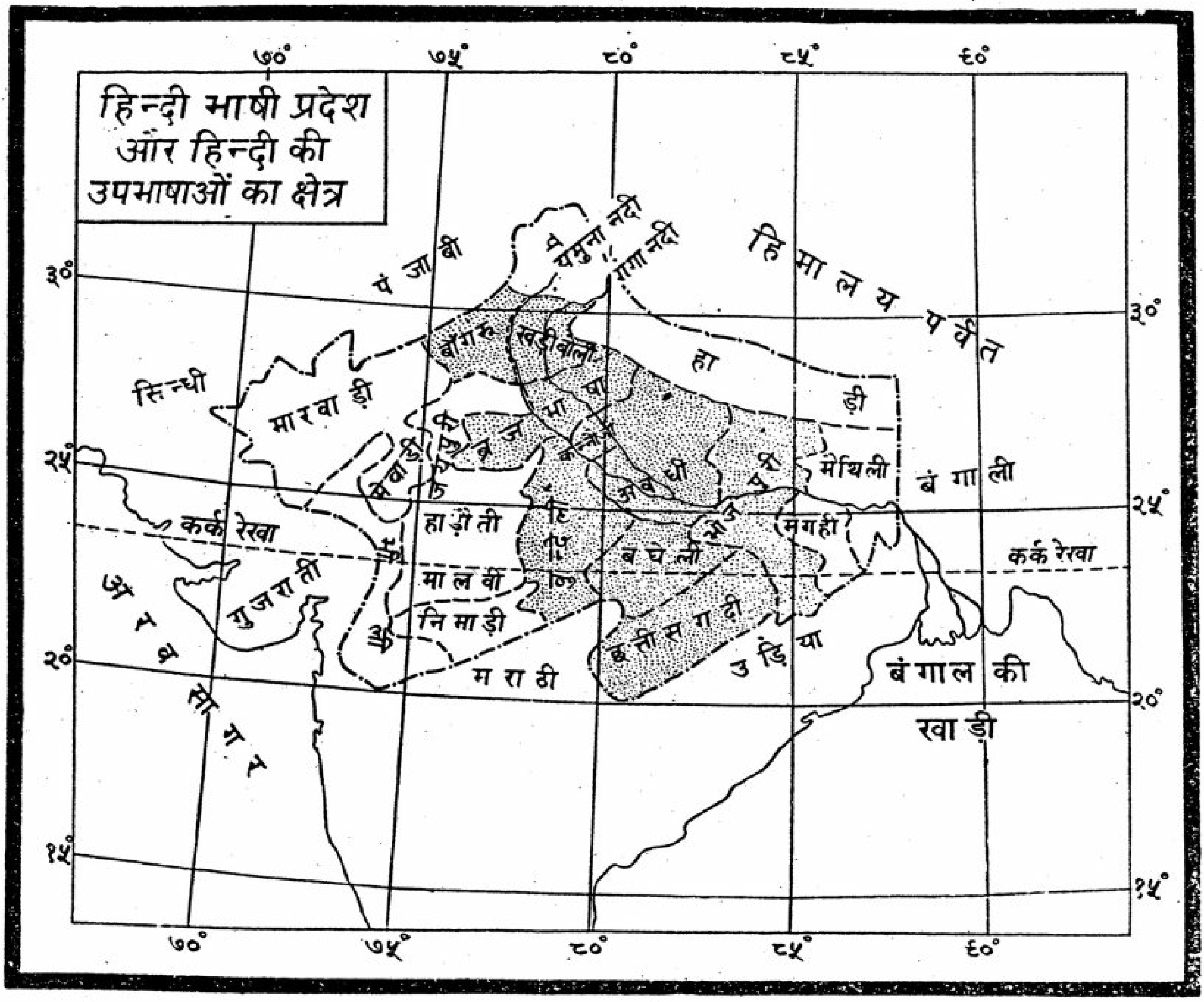

मानचित्र-3 : हिंदी भाषी क्षेत्र : हिंदी की बोलियाँ

स्रोत : अम्बा प्रसाद सुमन (1964), हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप

4. बिहारी उपभाषा — क्षेत्र : उत्तर प्रदेश, बिहार

बोलियाँ : 13. भोजपुरी

14. मैथिली

15. मगही

5. पहाड़ी उपभाषा — क्षेत्र : हिमाचल प्रदेश उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल

बोलियाँ : क) पश्चिमी वर्ग

ख) मध्यवर्गी वर्ग : 16. कुमाऊँनी

17. गढ़वाली

18. नेपाली

ग) पूर्वी

हिंदी साहित्य के इतिहास में इन सभी बोलियाँ में प्राप्त साहित्य (जैसे, डिंगल, ब्रज, खड़ी बोली, अवधी, मैथिली आदि) में समाहित हैं। कुछ लोग हिंदी की 18 बोलियों के अतिरिक्त उर्दू को भी हिंदी की अरबी फारसी से प्रभावित शैली मानकर इसे भी हिंदी के अंतर्गत ही रखते हैं। ग्रियर्सन ने अपने 'भाषा सर्वेक्षण' में पश्चिमी और पूर्वी हिंदी को ही वस्तुतः हिंदी माना है। इसी कारण उन्होंने दोनों के साथ हिंदी शब्द का प्रयोग किया है। डॉ. ग्रियर्सन ने अन्य को पहाड़ी, राजस्थानी, बिहारी आदि अन्य नामों से अभिहित किया है जिन्हें वे अलग भाषाएँ या भाषा वर्ग मानते है। इस प्रकार डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से हिंदी के अंतर्गत केवल 8 बोलियाँ है। 5 पश्चिमी हिंदी की और 3 पूर्वी हिंदी की। कुछ विद्वान पश्चिमी हिंदी को ही हिंदी के अंतर्गत मानते हैं। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी भी पश्चिमी हिंदी की 5 बोलियों को ही हिंदी मानने के पक्षधर हैं।

हिंदी प्रदेश की जो विभिन्न बोलियाँ बोली जाती हैं उनका उल्लेख किया जा चुका है। आज की वस्तुस्थिति के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि हिंदी प्रदेश की प्रमुख भाषा आज की परिनिष्ठत हिंदी है। इस प्रदेश की बोलियों के वर्ग इस प्रकार हैं :

क) मागधी वर्ग : मैथिली, मगही, भोजपुरी

ख) अर्ध-मागधी वर्ग : अवधी, छत्तीसगढ़ी, बघेली

ग) उत्तरी शौरसेनी वर्ग : गढ़वाली, कुमाऊँनी, हिमाचली

घ) मध्य शौरसेनी वर्ग : खड़ी बोली (हरियाणवी इसी के साथ) ब्रज (कनौजी इसी के साथ), बुंदेली और निमाडी (यद्यपि इसे राजस्थानी के साथ रखा गया है, यह पश्चिमी हिंदी के निकट है)।

च) पश्चिमी शौरसेनी वर्ग : मारवाड़ी (इसकी प्रमुख बोलियाँ बीकानेरी, बागड़ो, शेखावटी, मेवाड़ी आदि हैं।) मेवाती अहीरवाटी (इसमें हड़ौती जयपुरी, अजमेरी आदि बोलियाँ हैं)।

इस प्रकार हिंदी भाषी प्रदेशों को भाषा और बोली की दृष्टि से 5 क्षेत्रों में विभक्त किया गया है और हिंदी के अंतर्गत 18 बोलियाँ हैं। उर्दू को यहाँ अलग स्थान नहीं दिया गया है। ये प्रायः शब्द प्रयोगों की दृष्टि से हिंदी की शैलियाँ हैं।

आधुनिक आर्य भाषाओं की उत्पत्ति के संबंध में सुनीति कुमार चटर्जी का मत ग्रियर्सन से थोड़ा भिन्न है। इनके अनुसार पहाड़ी भाषाओं की उत्पत्ति 'खस अपभ्रंश' से हुई है। उनका यह तर्क है कि उत्तर हिमालय के निवासी किसी समय खस अथवा दरद भाषा-भाषी थे। प्राकृत युग में राजस्थान के निवासी इधर आकर बस गए और उन्होंने यहाँ की बोलियों को प्रभावित किया। इसी के फलस्वरूप पहाड़ी बोलियाँ अस्तित्व में आयीं। इसी प्रकार डॉ. चटर्जी, ग्रियर्सन के भीतरी तथा बाहरी भाषा संबंधी सिद्धांत को भी नहीं मानते। आपने उत्पत्ति की दृष्टि से हिंदी की बोलियों का चार्ट प्रस्तुत किया है। इस चार्ट को आप अगले पृष्ठ में देखेंगे:

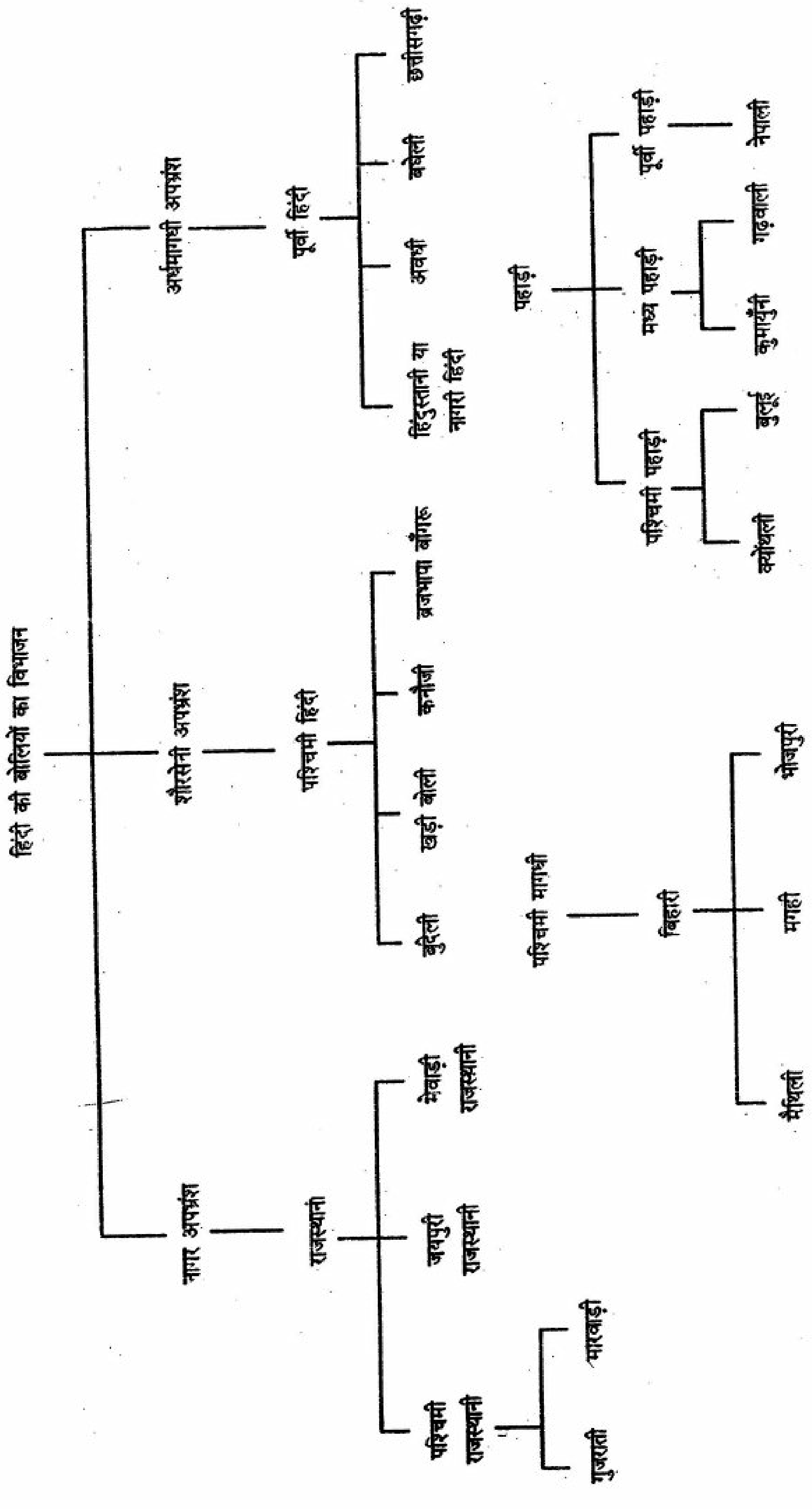
हिंदी की बोलियों का विभाजन
अर्धमागधी अपभ्रंश
पूर्वी हिंदी
हिंदुस्तानी या नागरी हिंदी
अवधी
बघेली
छत्तीसगढ़ी
शौरसेनी अपभ्रंश
पश्चिमी हिंदी
बुंदेली
खड़ी बोली
कन्नौजी
ब्रजभाषा बाँगरू
नागर अपभ्रंश
राजस्थानी
पश्चिमी राजस्थानी
गुजराती
मारवाड़ी
जयपुरी राजस्थानी
मेवाड़ी राजस्थानी
पहाड़ी
पश्चिमी पहाड़ी
क्योंथली
मध्य पहाड़ी
कुमाऊँनी
गढ़वाली
पूर्वी पहाड़ी
नेपाली
पश्चिमी मागधी
बिहारी
मैथिली
मगही
भोजपुरी

4.5 बोलियों और भाषाओं की विशेषताएँ

भाषाओं और बोलियों के निरंतर प्रवाह के कारण भाषा का प्रवाह संश्लिष्टावस्था से विश्लिष्टावस्था की ओर चलता रहा। भाषा के इस परिवर्तन का कारण वस्तुतः आर्यों के साथ अनार्यों, मुंडा, निषाद, किरात आदि का सम्पर्क तथा सम्मिश्रण था। प्रसिद्ध भाषाशास्त्री डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने अखिल भारतीय प्राच्य विद्या परिषद के भाषण में यह स्पष्ट कहा था कि अनुलोम-प्रतिलोम विवाह द्वारा प्राचीन भारत में एक तरफ विभिन्न जातियों का सम्मिश्रण हो रहा था, वहीं दूसरी तरफ आर्य तथा अनार्य संस्कृति का भी संगम हो रहा था। इस पारस्परिक आदान-प्रदान के कारण वैदिक भाषा में भी परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन के कारण भाषा संश्लिष्टावस्था से विश्लिष्टावस्था में आयी। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन काव्यधारा' में अपभ्रंश को पुरानी हिंदी के नाम से अभिहित किया है। राहुल जी का यह कथन इस लिए उपयोगी है कि व्याकरण की दृष्टि से अपभ्रंश संस्कृत की अपेक्षा आधुनिक भाषाओं के निकट है। हम पुरानी हिंदी की संकल्पना को अगले खंड में विस्तार से देखेंगे।

आधुनिक आर्य भाषाओं की उत्पत्ति के संबंध में पीछे बताया गया है, यहाँ यह विचार करना है कि हिंदी का निर्माण किन तत्वों से मिलकर हुआ है। इन तत्वों पर विचारों करते समय यह जानना आवश्यक है

कि परिवर्तन संबंधी कुछ तत्व ऐसे हैं जो सभी नव्य आर्य भाषाओं में समान रूप से मिलते हैं।

अब तक हमने उच्चारण, व्याकरणिक संरचना आदि के संदर्भ में संस्कृत की परंपरा का उल्लेख किया/अब शब्दावली की भी थोड़ी चर्चा कर लें। हिंदी जिन तत्वों से निर्मित हुई उन तत्वों के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रकृतया हिंदी को हम उधार लेने वाली भाषा न कहकर रचनात्मक भाषा ही कहना उचित समझते हैं। इस विषय में आर्य भाषाओं में हिंदी का अपना अलग व्यक्तित्व है। हिंदी जिन सूत्रों से निकल कर आयी उनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

तद्भव : इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि हिंदी की दूसरी विशेषता हैं तद्भव शब्दों का प्राचुर्य। प्राकृत वैयाकरणों के अनुसार तद्भव वे शब्द हैं, जो संस्कृत के उन्हीं शब्दों से थोड़ा भिन्न रूप वाले होते हैं। तद्भव का शाब्दिक अर्थ है तद् - उससे, भव - उत्पन्न। यहाँ तद् का तात्पर्य संस्कृत भाषा और उसकी शब्दावली से है। हिंदी तथा अन्य नव्य आर्य भाषाओं में तद्भव वे शब्द हैं, जो इन भाषाओं में मूल संस्कृत से प्राकृत भाषा से होते हुए आए हैं। जैसे-हिंदी शब्द आज, काम, काज, आदि शब्द तद्भव हैं। जैसे:

अद्य > अज्ज > आज

कर्म > कम्म > काम

कार्य > कज्ज > काज

वस्तुतः तद्भव शब्द ही हिंदी के मेरुदण्ड हैं। इस संबंध में हिंदी की तुलना बंगला से ही जा सकती है।

तत्सम : हिंदी में स्वाभाविक रूप से तत्मस शब्दों की संख्या कम है। तत्सम से तात्पर्य है, तत् + सम = उसके समान। यहाँ तत् का तात्पर्य संस्कृत से ही है। वस्तुतः तत्सम वे शब्द हैं, जो नव्य भाषाओं में संस्कृत से उसी रूप में लिए गए हैं। आधुनिक आर्य भाषाओं में बंगला में तत्सम शब्दों की संख्या सबसे अधिक है। हिंदी में तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। इसके अनेक कारण हैं, हिंदी अब केवल बोलचाल की भाषा नहीं है और न ही यह प्रादेशिक भाषा है, बल्कि राजभाषा के रूप में यह संस्कृत वाहिनी भाषा है। इसमें संस्कृत शब्दों के प्रयोग से यह लाभ भी है कि प्रायः सभी नव्य आर्य भाषाओं में ये समान रूप से प्रयोग किये जाते हैं। तत्सम शब्दों के प्रयोग से यदि हम देखें तो किसी प्रकार की प्रादेशिक बाधा नहीं है। ये शब्द पंजाब से बंगाल तक एक ही रूप में प्रयोग व्यवहार में लाए जा रहे हैं। हिंदी के लेखक ग्राम्य तथा स्थानीय दोषों के कारण संस्कृत शब्दों का प्रयोग ही श्रेयस्कर मानते हैं।

अर्द्धतत्सम : तत्सम शब्दों के साथ ही प्रायः सभी नव्य आर्य भाषाओं के अर्द्धतत्सम शब्दों का भी प्रयोग होता है। अर्ध तत्सम का उन शब्दों से तात्पर्य है, जो तद्भव नहीं है तथा जो तत्सम के अति निकट हैं। प्राकृत युग में भाषा के रूप में संस्कृत का अध्ययन अध्यापन आज की तरह चलता रहा था। अतएव प्राकृतों में संस्कृत शब्दों का आना अनिवार्य था। ऐसे शब्दों का प्रयोग जब प्राकृत भाषा में किया जाता

था, और वे संयुक्त व्यंजन वाले होते थे, तब प्राकृत के उच्चारण के प्रभाव से उनमें तत्सम की अपेक्षा कुछ न कुछ अंतर आ ही जाता था। यह अंतर उससे सर्वथा भिन्न था, जो विकास क्रम से संस्कृत से प्राकृत तथा प्राकृत के नव्य आर्य भाषाओं में परिणत हुए शब्दों में होता था। दूसरे प्रकार के शब्द तद्भव कहलाए, जैसा कि पहले बताया जा चुका है। अर्धतत्सम शब्दों के विषय में निम्न उदाहरण से आप स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं। संस्कृत तीक्ष्ण > प्राकृत 'तिक्ख' शब्द बना, जो विकास क्रम से हिंदी में 'तीखा' बन गया।

यहाँ संयुक्त व्यंजन 'क्षण' का 'क्ख' रूप में समीकरण प्राकृत के ध्वनि नियमों के सर्वथा अनुकूल था। किंतु एक बार पुन: प्राकृत में 'तीक्ष्ण' शब्द का प्रयोग होने लगा। प्राकृत उच्चारण के कारण इसका शुद्ध रूप में उच्चारण कठिन था, इसलिए स्वर भक्ति अथवा विप्रकर्ष की सहायता से इसका उच्चारण 'तिखिण' होने लगा। यह 'तिखिण' शब्द वस्तुत: अर्धतत्सम शब्द हैं। संस्कृत 'आदर्श' के स्त्रीलिंग रूप 'आदर्शिका' से आदस्सिका' 'आदस्सिआ', 'आअस्सिआ' होते हुए हिंदी में 'आसी' शब्द बनना चाहिए, लेकिन 'आर्शिका' शब्द का पुन: प्रयोग में आने से 'आअरसिआ' का हिंदी में 'आरसी' शब्द का निर्माण हुआ।

देशी: संस्कृत तथा प्राकृत में अनेक ऐसे शब्द हैं, जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत धातुओं तथा प्रत्ययों से नहीं दी जा सकती। इस प्रकार के शब्द जहाँ संस्कृत में मिलते हैं, वहाँ उनकी वैज्ञानिक व्युत्पत्ति न देकर केवल अनुमान के आधार पर व्याख्या की जाती है। प्राकृत में ऐसे शब्दों का जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत में उपलब्ध नहीं है उन्हें वैयाकरणों ने 'देशी' नाम दिया हैं। अनुकरणमूलक शब्दों को भी भाषावैज्ञानिकों ने इसी श्रेणी में रखा है। इस प्रकार पोट्ट > पेट, गोड्ड > गोड़ आदि शब्द देशी कहे जाते हैं।

आधुनिक भाषा में देशी शब्द किंचित् भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होता है। आज इन शब्दों का अर्थ उनसे लिया जाता है, जो आदिवासी लोगों की भाषाओं तथा बोलियों एवं वैदिक तथा पाणिनीय संस्कृत एवं प्राकृत तथा नव्य आर्य भाषाओं में समय-समय पर आए हैं। ऐसे शब्दों में काल, कला, पुष्प, पूजा, मयूर, कदलि, कम्बल तथा बाण आदि की गणना है हिंदी तथा अन्य नव्य आर्य भाषाओं में सैकड़ों देशी शब्द प्राकृत से होकर आए हैं। इनमें से अनेक शब्द प्राचीन शब्द तथा मध्य भारतीय भाषाओं में प्रचलित थे और समय की प्रगति के साथ ये हिंदी में पाए जाते हैं।

विदेशी शब्द : वैदिक युग से लेकर आज तक निरंतर हमारी भाषा में नए भावों तथा विचारों को प्रकट करने के लिए विदेशी शब्द समाविष्ट होते रहे हैं। ये शब्द हमारे प्राचीन इतिहास पर भी पर्याप्त प्रकाश डालते रहते हैं। जैसे, संस्कृत में 'लोहा' शब्द की उत्पत्ति 'रोध' संस्कृत में 'रुधिर' से हुई है। समय के साथ रोध, लोध > लोह में परिवर्तित हो गया। इसी प्रकार हिंदी 'मन' (तोल) की उत्पत्ति 'मिनी' शब्द से हुई है। मिस्र का मुद्रा शब्द हिंदी में मुँदरी हो गया। तुर्की शब्द जैसे, 'बाग्दीर' हिंदी में बहादुर बन गया। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार हिंदी में सत्तर अस्सी शब्द तुर्की भाषा से आए हैं। अरबी भाषाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव भारतीय भाषाओं पर बहुत कम पड़ा। फारसी का प्रचार यहाँ प्रमुख रूप से रहा। फारसी का 'खुदा' संस्कृत का 'स्वधा' काफी प्रचालित रहा। अरबी शब्द फारसी भाषा से ही आए।

अरबी फारसी के बाद पुर्तगाली शब्द भी आधुनिक आर्य भाषाओं में विशेषत: मराठी, गुजराती, बंगाली तथा उड़िया में आए। बंगला में पुर्तगाली शब्दों का प्रयोग सौ से अधिक है। हिंदी में इसके निम्नलिखित शब्द दिखायी देते हैं। जैसे, अल्मारी, काफी, काजू, गमला, गोभी, गोदाम, तौलिया, बाल्टी, बिस्कुट, बटन, मेज, संतरा आदि। भारतीय आर्य भाषाओं में डच तथा फ्रेंच भाषा का प्रयोग मिलता है, जैसे कर्तूस, कूपन, अंग्रेज।

अंग्रेजी ने आधुनिक आर्य भाषाओं को इतना प्रभावित किया है कि अंग्रेजी के भारत छोड़ देने के बाद भी इससे बचना कठिन हो रहा है। इसने हमारी प्रादेशिक भाषाओं को बुरी तरह दबाया है। आज अंग्रेजी के अनेक शब्द हमारे दैनिक जीवन में उपयोग किए जा रहे हैं। इसमें कुछ इस प्रकार हैं। लालटेन, माचिस, सीमेंट, हारमोनियम, सिगरेट, जज, रसीद, राशन कार्ड, लाइब्रेरी, डाक्टर, टिकट, फोटो मशीन, लेक्चर, हाकी, साइंस आदि।

हिंदी में अन्य प्रादेशिक भाषाओं से भी अनेक शब्द आए हैं। इधर जब से हिंदी राष्ट्रभाषा घोषित हुई है, तब से प्रादेशिक भाषाओं के शब्दों के लिए हिंदी ने अपना द्वार उन्मुक्त रूप से खोल दिया है। हिंदी में अन्य अन्य प्रादेशिक भाषाओं से आए हुए शब्द निम्न हैं।

पंजाबी - सिक्ख

गुजराती - गरबा, हड़ताल

मराठी - बाड़ पटेल, देशमुख

बंगला - उपन्यास, गल्प, कविराज, रसगुल्ला, सन्देश, चमचम, गमछा, छाता आदि।

हिंदी के विभिन्न तत्वों के संबंध में विचार करते समय यह बात सदैव स्मरण करना चाहिए कि पालि की तरह हिंदी भी समन्वयात्मक भाषा (composite Language) है। हिंदी में आज भी अनेक ऐसे शब्द हैं, जिनमें संस्कृत 'अ', 'इ' में परिवर्तन हो जाती है। संभवतः इस पर राजस्थानी का प्रभाव है। जैसे सं- गण > हिंदी गिनना। संस्कृत हरिण > हिंदी हिरण। राजस्थानी में आदि 'अ' का परिवर्तन 'इ' में हो जाता है। जैसे, चमकना > चिमकणा, पण > पिण आदि।

पूर्वी हिंदी तथा भोजपुरी का बहुत कम प्रभाव आधुनिक हिंदी पर है। नागरी हिंदी में मूर्धन्य उच्चारण वाले शब्द रूपों पर पूर्वी हिंदी तथा भोजपुरी का प्रभाव है। जैसे - पश्चिम में 'कृत' तथा 'मृत' के रूप में 'किअ' (किय) तथा 'मुअ' रूप मिलते हैं।

हिंदी की बोलियों की विशेषताएँ बहुत हैं, लेकिन कुछ प्रमुख बोलियाँ है, जिनकी विशेषता इस प्रकार है।

भौगोलिक दृष्टि से हिंदी का क्षेत्र उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक फैला हुआ है। ग्रियर्सन ने इस समस्या भू-भाग को पश्चिमी तथा पूर्वी हिंदी क्षेत्रों में विभाजित किया है। 1. हिंदोस्तानी, 2. बाँगरू, 3. ब्रजभाषा, 4. कनौजी, 5. बुंदेली। इसी प्रकार पूर्वी हिंदी के अंतर्गत 1. अवधी 2. बघेली तथा छत्तीसगढ़ी बोलियाँ आती है। प्रसिद्ध भाषा शास्त्री जार्ज ग्रियर्सन ने राजस्थानी एवं बिहार की मैथिली, मगही एवं भोजपुरी बोलियों को हिंदी क्षेत्र के बाहर माना है। इस प्रकार ब्रजभाषा एवं अवधी दो प्रमुख बोलियाँ हिंदी क्षेत्र की हैं।

अवधी: अवधी की उत्पत्ति अर्धमागधी की बोलचाल अपभ्रंश से हुई है। पूर्वी हिंदी की सबसे महत्वपूर्ण बोली अवधी है। यह हरदोई, खीरी तथा फैजाबाद के कुछ भाग में नहीं बोली जाती, और अवध के बाहर फतेरपुर, इलाहाबाद, जौनपुर (केराकत तहसील छोड़कर) तथा मिर्जापुर के पश्चिमी भाग में बोली जाती है। इसका अन्य नाम कोशली भी है। लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया में इसका एक और नाम बैसवाड़ी भी है। अवधी में 'ला' वाले रूपों का सर्वथा अभाव है। अवधी में भूतकाल में 'अल', 'इल' प्रत्यय का अभाव है। अवधी में अपादान का अनुसर्ग से है। इसमें बुंदेली का अधिक सम्मिश्रण है। जैसे उइ मनई के दुइ लाला रहैं।

अवधी का क्षेत्र पश्चिमी हिंदी तथा बिहारी के बीच का है। संज्ञा पद के तीनों रूपों लघु (ह्रस्व) दीर्घ तथा दीर्घतर में से पश्चिमी हिंदी (खड़ी बोली) आकारांत दीर्घ घोड़ा तथा अवधी एवं बिहारी में घोड़, घोड़ा, घोड़वा रूप मिलते हैं। संज्ञा तथा विशेषण के लिंग के संबंध में अवधी के नियम ढीले हैं। व्यंजनान्त संज्ञा पदों में कर्ता एक वचन के रूप में अवधी में 'उ' लगता है। जैसे - घरु, मनु, बनु, आदि अनुसर्गों के संबंध में अवधी और बिहारी में समानता है। कर्म सम्प्रदान के अनुसर्ग अवधी में 'का' के रूप लगता है। अवधी में सर्वनाम तोर, मोर है, जो पश्चिमी हिंदी में 'तेरा' 'मेरा' हो जाता है। इसी प्रकार अवधी 'हमार' का तिर्यक रूप 'हमरे' हो जाता है। वर्तमान काल की सहायक क्रिया के रूप अवधी में 'अहै', बाटै बाट् मिलता है। अवधी के भूतकाल रूप में 'इसि' 'इस' प्रत्यय लगता है। जैसे - कहिसि, कहिस् आदि।

अवधी में प्रचुर साहित्य रचना हुई है। प्रेममार्गी सूफी कवियों कुतुबन, मंझन, जायसी नूरमुहम्मद, उस्मान ने इसमें रचना की है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचिरत मानस की रचना कर अवधी को अलंकृत किया है। वर्तमान में इसमें साहित्य रचना हो रही है, जिसमें वंशीधर मिश्र, रमई काका प्रमुख हैं।

ब्रजभाषा: यह ब्रजमंडल की भाषा है। ब्रज मंडल का क्षेत्र मोटे तौर पर आधुनिक मथुरा जिला है। यदि मथुरा को केंद्र मान लिया जाए जो दक्षिण में आगरा, भरतपुर के अधिकांश भाग, धौलपुर, करौली, ग्वालियर के पश्चिमी भाग तथा जयपुर के पूर्वी भाग में यह बोली जाती है। उत्तर में यह गुड़गाँव के पूर्वी भाग में बोली जाती है। उत्तर पूरब के दो आबे में यह बुलन्दशहर, अलीगढ, एटा, मैनपुरी, तथा गंगा पार के बंदायूँ, बरेली तथा नैनीताल की तराई में बोली जाती है। मथुरा, अलीगढ तथा पश्चिमी आगरे की ब्रजभाषा आदर्श है।

ग्रियर्सन के अनुसार हिंदोस्तानी की अपेक्षा ब्रजभाषा पश्चिमी हिंदी की श्रेष्ठतर प्रतिनिधि है। व्याकरण संबंधी विशेषता की दृष्टि से इसका हिंदोस्तानी से अधिक महत्व है। साहित्यिक ब्रज भाषा में कभी–कभी नपुंसक लिंग भी मिलता है। यही इसके प्राचीनता का द्योतक है। साहित्यिक ब्रजभाषा की अपेक्षा ग्रमीण ब्रजभाषा में नपुंसक का रूप ही अधिक प्रचलित है। जैसे– सोने का नपुंसक रूप सोनें ही ग्रामीण ब्रजभाषा में प्रचलित है। ब्रचभाषा में हिंदी 'आ' प्रत्यय के बदले 'औ' प्रत्यय ही प्रयुक्त होता है। हिंदी की तरह की इनमें तिर्यक एकवचन एंव कर्ता बहुवचन के रूप 'ए' जोडकर सम्पन्न होते हैं। ब्रज भाषा के सहायक किया के वर्तमान काल के रूप प्राय: हिंदी के रूपों के सम्मान है। वर्तमान कृदन्तीय के कर्तृवाच्य के रूप 'तु' अथवा 'त' प्रत्ययान्त होते हैं। जैसे– मारतु या मारत जबकि हिंदी में मसके लिए 'ता' प्रयुक्त होता है, जैसे– मारता

ब्रजभाषा में भविष्यत् काल का रूप साधारण वर्तमान के रूपों में 'गौ' जोडकर बनते है। जैसे, मारो – गौ (मारूँगा)। किंतु यहाँ प्राय: धातु में 'इह' अथवा 'एह' प्रत्यय जोडकर भविष्यत के रूप बनते हैं। जैसे, मारि– हौं (मारूँगा) यह रूप सीधे संस्कृत से ब्रजभाषा में आया हे। जैसे –सं. मारिस्यामि > प्रा. मारिस्सामि, मारिहामि, मारि हौं, ब्रजभाषा, मारि हौ। इसके अतिरिक्त बघेली, कनौजी, बुंदेली आदि हिंदी बोलियाँ है, जिनमें साहित्य रचना बहुत कम है तथा इनका कोई महत्वपूर्ण व्याकरण भी नहीं है। लोकगीतों में इनकी रचना मिलती है, जिनका साहित्यिक महत्व नहीं हैं

4 .7 सारांश

इस इकाई में आधुनिक आर्य भाषाओं का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसमें आप आधुनिक आर्य भाषाओं हिंदी, बांगला, असमिया, पंजाबी, उड़िया, बिहारी, आदि भाषाओं का विकास किस तरह हुआ, इसका विस्तृत अध्ययन है। इसमें भारतीय भाषाओं का परिचय भी दिया गया है। इसमें आप आधुनिक आर्य भाषाओं का वर्गीकरण भी पाएँगे, जिसे प्रमुख भाषा शास्त्रियों ने दिया है। व्याकरण किसी भी भाषा की विशेषता है, व्याकरण के बिना किसी भी भाषा का महत्व नहीं होता, इसे ध्यान में रखते हुए आधुनिक आर्य भाषाओं की विशेषता दी गयी है। हिंदी साहित्य का भंडार बहुत बडा है, उसका व्याकरण पक्ष भी महत्वपूर्ण है, इसलिए हिंदी भाषा क्षेत्र को निर्धारित करते हुए बोलियों का विभाजन किया गया है। हिंदी की बोलियाँ काफी हैं, लेकिन व्यवहार में और भाषाशास्त्र के नियमों के अंतर्गत कुछ ही बोलियाँ आती हैं, इसे ध्यान में रखते हुए प्रमुख बोलियों का परिचय और उनकी विशेषताओं को बताया गया है।

4 .8 अभ्यास प्रश्न

1 आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिए। (500 शब्द)

2 प्रमुख भाषाशास्त्रियों ने आधुनिक आर्य भाषा का वर्गीकरण किया हैं, उन वर्गीकरणों को बताइए। (500 शब्द)

3. हिंदी की बोलियों का वर्गीकरण कीजिए।

4 बोली और भाषा को परिभाषित करते हुए, इनकी विशेषताएँ बताइए। (100 शब्द)

संदर्भ ग्रथ

उदय नारायण तिवारी : हिंदी भापा का उद्भव और विकास

धीरेंद्र वर्मा : हिंदी भापा का इतिहास

रामविलास शर्मा : भारत के प्राचीन भापा परिवार और हिंदी

भोलानाथ तिवारी : भापा–विज्ञान (तीसरे अध्याय 'संसार की भापाएँ और उनका वर्गीकरण' के अंतर्गत भारोपीय के परिच्छेद)

देवेन्द्र नाथ शर्मा: भापाविज्ञान की भूमिका (अध्याय - संसार के भाषा परिवार)

देवदत्त कौशिक : भापाविज्ञान (संसार के विविध भाषा परिवार)

सतीश कुमार रोहरा : भापा एवं हिंदी भापा (अध्याय 4 भारोपीय परिवार एवं आर्य भापाएँ) हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास (पृष्ठ 260 से 266 तक)

सुनीति कुमार चटर्जी : भारतीय आर्य भाषा और हिंदी

भोलानाथ तिवारी : हिंदी भापा

बाबूराम सक्सेना: भापा विज्ञान

नामवर सिंह : हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान

रविंद्रनाथ श्रीवास्तव : हिंदी भापा का समाजशास्त्र

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

MAHI-114

हिन्दी भाषा

खंड

02

हिंदी भाषा का विकास

इकाई 5
हिंदी भाषा का प्रारंभिक विकास 5

इकाई 6
आधुनिक युग में हिंदी भाषा का विकास 35

इकाई 7
हिंदी के बढ़ते चरण 50

इकाई 8
देवनागरी लिपि का विकास 74

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. ओम अवस्थी
गुरुनानक देव विश्वविद्यालय,
अमृतसर

प्रो. गोपाल राय
सी-3, कावेरी, इग्नो आवासीय
परिसर, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

प्रो. नामवर सिंह
32-ए, शिवालिक अपार्टमेंट
अलकनंदा, नई दिल्ली

प्रो. नित्यानंद तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. निर्मला जैन
ए-20/17, कुतुब एन्क्लेव, फेज-I
गुड़गाँव, हरियाणा

प्रो. प्रेम शंकर
बी-16, सागर विश्वविद्यालय
परिसर, सागर

प्रो. मुजीब रिज़वी
220, ज़ाकिर नगर
नई दिल्ली

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी
3, बैंक रोड, इलाहाबाद

प्रो. लल्लन राय
3, प्रीत विला, समर हिल,
शिमला

प्रो. शिव कुमार मिश्र
एफ-17, मानसरोवर पार्क कालोनी
पंचायती हॉस्पिटल मार्ग,
वल्लभ विद्यानगर, गुजरात

स्व. शिव प्रसाद सिंह

प्रो. सूरजभान सिंह
आई-27, नारायणा विहार
नई दिल्ली

संकाय सदस्य
प्रो. वी. रा. जगन्नाथन
डॉ. जवरीमल्ल पारख
डॉ. रीता रानी पालीवाल
डॉ. सत्यकाम
डॉ. राकेश वत्स
डॉ. शत्रुघ्न कुमार
सुश्री स्मिता चतुर्वेदी
डॉ. विमल थांडेकर

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

इकाई लेखक	इकाई संख्या	खंड संपादक
29. हिन्दी का प्रारंभिक विकास	प्रो. कैलाश चंद्र भाटिया	प्रो. वी. रा. जगन्नाथन इं.गा.रा.मु.वि.वि नई दिल्ली
30. आधुनिक हिंदी का विकास	प्रो. कैलाश चंद्र भाटिया	
31. हिंदी के बढ़ते चरण	प्रो. वी. रा. जगन्नाथन	**पाठ्यक्रम संयोजक**
32. देवनागरी लिपि	प्रो. वी. रा. जगन्नाथन	**सुश्री स्मिता चतुर्वेदी** इं.गा.रा.मु.वि.वि. नई दिल्ली

सामग्री निर्माण

प्रो. पी. एन. पंडित
निदेशक
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

आवरण
श्री पंकज खरे

श्री कुलवंत सिंह
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

मार्च 2003 (पुनः मुद्रण)

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2002

ISBN-81-266-0457-3

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खंड परिचय : खंड - 2

यह खंड इस पाठ्यक्रम का अंतिम खंड है। इस पाठ्यक्रम में खंड-7 और 8 में हिंदी भाषा के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। खंड-7 में हमने चर्चा की कि किस तरह तरह संस्कृत से आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास हुआ। इस खंड में हम हिंदी भाषा के विकास क्रम को देखने का यत्न कर रहे हैं।

साहित्य के अध्ययन के संदर्भ में आपने यह देखा होगा कि आदि काल में अपभ्रंश, मैथिली, डिंगल (राजस्थानी) और पिंगल (प्राचीन ब्रज) का प्रयोग होता था। भक्ति काल में अवधी और ब्रज का मुख्य रूप से प्रयोग हुआ। साथ ही कबीर ने जनमानस तक पहुँचने के उद्देश्य से एक पंचमेल सधुकड़ी भाषा का प्रयोग हुआ। मीरा ने मारवाड़ी का प्रयोग किया जिसमें ब्रज और खड़ीबोली का पुट मिलता है। रीति काल में ब्रज भाषा का बाहुल्य था। मैथिली में भी कई साहित्यिकारों ने साहित्य सृजन किया जिनमें विद्यापति प्रमुख हैं।

रीति काल के बाद हम आधुनिक युग में प्रवेश करते हैं और खड़ी बोली के आविर्भाव और विकास को देखते हैं। इस युग में न केवल खड़ीबोली काव्य और व्यापक गद्य लेखन (पत्रकारिता सहित) काव्य लेखन के लिए व्यापक रूप से प्रयोग में आई और हिंदी भाषा क्षेत्र की विभिन्न बोलियाँ बोलने वाले लेखक भी बोली की जगह खड़ीबोली हिंदी का उपयोग करने लगे। हम साथ में यह भी देखते हैं कि हिंदी एक अखिल भारतीय भाषा के रूप में स्थापित होती है और पूरे देश को जोड़ने वाली कड़ी के रूप में सामने आती है। सवाल यह उठता कि खड़ीबोली जो आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक साहित्यिक भाषा के रूप में अधिक व्यवहार में नहीं आ पाई थी, वह अचानक आधुनिक युग में महत्वपूर्ण क्यों हो गई ? यह भी सवाल उठता है कि यह खड़ीबोली क्या राजस्थानी, ब्रज और अवधी की तरह प्राचीन भाषा थी ? क्या उसके पुट हमें प्राचीन साहित्य में मिलते हैं ?

इस खंड में हम इन्हीं सवालों के संदर्भ में हिंदी भाषा के विकास पर प्रकाश डालेंगे। पुरानी हिंदी के नाम से हम आदि काल से ही खड़ीबोली के प्रयोग को देखते हैं। यह परंपरा आदि काल से भक्ति काल का अविच्छन रूप से दिखाई पड़ती है यद्यपि खड़ीबोली का व्यापक प्रयोग नहीं हुआ।

रीतिकाल में ब्रज भाषा का आधिपत्य था, लेकिन उसी समय भाषिक क्षेत्र में व्यापक जनभाषा के रूप में उर्दू भाषा का तीव्र विकास हो रहा था। विकास का यह सिलसिला काफ़ी दूर तक दक्षिण तक पहुँचता है। हम कह सकते हैं कि यह एक मिश्रित भाषा रूप था जिसमें शब्दावली अरबी-फ़ारसी की थी और मूलभूत संरचना खड़ीबोली हिंदी की थी। परवर्ती युग में हिंदुओं और मुसलमानों की अलग-अलग पहचान के कारण हिंदी और उर्दू दो अलग भाषाओं के रूप में स्थापित होगी है, यद्यपि भाषावैज्ञानिक इन्हें दो भाषाएँ नहीं मानते, बल्कि एक भाषा की दो शैलियाँ मानते हैं। इस खंड में हिंदी और उर्दू के भी इस सवाल पर चर्चा की गई है जिससे यह पता चलता है कि हिंदी किस तरह अखिलभारतीय भाषा बनी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत देश की किसी भाषा को राजभाषा का दर्जा देने की बात उठी तो स्वाभावत: हिंदी को निर्विरोध चुना गया। राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने के साथ-साथ हिंदी भाषा में अपूर्व शक्ति आई और उसका कार्य क्षेत्र व्यापक हुआ। इकाई-31 में हम इस बात की चर्चा कर रहे हैं कि हिंदी की आज क्या स्थिति है उसकी प्रकार्यात्मक भूमिकाएँ क्या हैं और वह किन दिशाओं में आगे बढ़ रही है।

अंतिम इकाई में देवनागरी लिपि के विकास की चर्चा की गई है। देवनागरी ब्राह्म लिपि से उत्पन्न हुई और भारत की सारी लिपियाँ तथा सिंहल की लिपि, वर्णमाला क्रम, उच्चारण व्यवस्था और वर्णाकृति के लिए किसी न किसी रूप में ब्राह्मी की ऋणी हैं। इस तरह हम यह देखते हैं कि लिपि और उच्चारण के स्तर पर भी भारतीय भाषाओं में मूलभूत एकता है।

इस खंड के अंत में कुछ आवश्यक संदर्भ ग्रंथ दिये गय हैं। हम आपसे अपेक्षा करते हैं कि आप अपनी सुविधा के अनुसार अन्य ग्रंथों का भी अध्ययन करें।

इस पाठ्यक्रम की संकल्पनाओं को समझने में अगर आपको कहीं कठिनाई हो तो हम आपसे

अनुरोध करेंगे कि आप बी.ए. के ऐच्छिक पाठ्यक्रम ई.एच.डी.-6 : *हिंदी भाषा का इतिहास और वर्तमान* का भी अवलोकन करें जिसमें मूलभूत बातों को विस्तार से समझाया गया है।

शुभकामनाओं के साथ !

इकाई 5 हिंदी भाषा का प्रारंभिक विकास

इकाई की रूपरेखाग

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 प्रारंभिक हिंदी (पुरानी हिंदी)

5.3.1 पुरानी हिंदी
5.3.2 प्राकृत पैंगलम्
5.3.3 रोडा कृत 'राउरवेल'

5.4 हिंदवी/हिंदुई - साहित्यिक रूप

5.4.1 अमीर खुसरो और हिंदवी
5.4.2 कबीर

5.5 हिंदी की बोलियों का विकास

5.5.1 मैथिली का विकास
5.5.2 अवधी का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास
5.5.3 ब्रजभाषा का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास
5.5.4 हिंदी की बोलियों में अंत:संबंध

5.6 खड़ी बोली का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास

5.7 उर्दू

5.7.1 दक्खिनी
5.7.2 प्रमुख विशेषताएँ
5.7.3 उर्दू का विकास
5.7.4 रेख़्ता

5.8 सारांश

5.9 अभ्यास प्रश्न

5.1 उद्देश्य

इस इकाई में आधुनिक युग में खड़ी बोली के मानक हिंदी भाषा के रूप में विकास और साहित्यिक भाषा के रूप में उद्‌भव की चर्चा की गई है। खड़ी बोली हिंदी का विकासक्रम मध्यकाल से शुरू हो जाता है। उस विकासक्रम में उर्दू के विकास का भी क्रम जुड़ता है। इस इकाई में हमने आधुनिक हिंदी भाषा के विकासक्रम को हिंदी के आदिकाल से ही देखने का यत्न किया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- द्वितीय सहस्राब्दी के शुरू से ही हिंदी के विकास का क्रम समझ सकेंगे;
- अमरी खुसरो और कबीरदास की भाषा में खड़ी बोली का पुट ढूँढ़ सकेंगे;
- विभिन्न युगों में साहित्यिक भाषा का उद्‌भव और विकास बता सकेंगे;
- उर्दू के विकास के संदर्भ में दक्खिनी रेख़्ता आदि शब्दों का तात्पर्य समझ सकेंगे;

5.2 प्रस्तावना

खड़ी बोली साहित्य का विकासक्रम आम तौर पर आधुनिक युग से ही माना जाता है और साहित्यिक रूप में भारतेंदु युग 'हिंदी साहित्य का प्रवेश द्वार' है। लेकिन इससे यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि खड़ी बोली का आविर्भाव भी आधुनिक युग में ही हुआ है। यह बात विचारणीय है कि हिंदी की सभी बोलियाँ अपनी-अपनी जगह विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम रही हैं और उनका अस्तित्व रहा है। संयोग की बात है कि लेखकों की रुचि और प्रतिभा के अनुसार अलग-अलग युगों में अलग-अलग बोलियाँ साहित्यिक भाषा के रूप में उभरकर हमारे सामने आई हैं। आप जानते ही हैं कि आदिकाल में राजस्थान की मारवाड़ी बोली का प्रामुख्य था जबकि भक्तिकाल में तुलसीदास ने अवधी भाषा का प्रमुखतः उपयोग किया और कृष्ण भक्त कवियों ने ब्रजभाषा का। रीतिकाल में ब्रजभाषा का ही वर्चस्व रहा। स्थानीय रूप से भी कवियों ने अपनी बोली को साहित्य सृजन के लिए अपनाया जैसे भक्ति काल से पूर्व विद्यापति ने मैथिली में काव्य रचना की। कहने का तात्पर्य यह है कि विद्या और अपनी रुचि के संदर्भ में समय-समय पर अलग-अलग बोलियों में साहित्य सृजन किया।

यह भी संयोग की बात है कि खड़ी बोली में कोई प्रमुख कवि नहीं हुआ। न ही कोई विशिष्ट धारा खड़ी बोली में प्रस्फुटित हुई। फिर भी, हम खड़ी बोली हिंदी के साहित्यिक रूप को आदिकाल में देखते हैं, जब हिंदवी या हिंदुई के नाम से इसका प्रचलन हुआ और अमीर खुसरो ने खड़ी बोली में काव्य रचना की। भक्तिकाल में कबीरदास ने भी खड़ी बोली हिंदी का भी इस्तेमाल किया, यद्यपि उनकी भाषा को हम लोग मिले-जुले रूप के कारण 'सधुक्कड़ी' यानी साधुओं की (मिली-जुली) भाषा कहते हैं। इस इकाई में 'पुरानी हिंदी' नाम से खड़ी बोली के साहित्यिक रूप को राउरवेल जैसी प्रमुख रचनाओं से ही देखने का यत्न किया गया है और आधुनिक युग तक इसके विकासक्रम को ढूँढने का यत्न किया गया है।

खड़ी बोली में साहित्य-रचना न होने का शायद एक कारण उर्दू भाषा का विकास है। मुगल साम्राज्य की स्थापना के साथ-साथ उर्दू भाषा का विकास शुरू हो जाता है। यह भाषा दक्षिण में जाकर दक्खिनी का नाम लेती है और फिर उत्तर में आकर रेख्ता नाम से प्रचलित हो जाती है। यहाँ से साहित्यिक उर्दू भाषा का विकासक्रम शुरू हो जाता है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से उर्दू और हिंदी, दोनों एक भाषा हैं। इनमें केवल सांस्कृतिक और साहित्यिक कारणों से अंतर है। इसका तात्पर्य यह है कि जो लोग खड़ी बोली में लिखना भी जानते हों, वे अलग से खड़ी बोली की बात न करते हुए हिंदी और उर्दू के मिले-जुले रूप का इस्तेमाल करते थे, जिसे हम अब उर्दू की संज्ञा देते हैं। आधुनिक युग में अंग्रेज़ों ने शैक्षिक और राजनीतिक कारणों से उर्दू भाषा को हिंदी से अलग देखने का यत्न किया तो हिंदी भाषियों ने उर्दू से भिन्न खड़ी बोली की स्थापना की। यही कारण है कि खड़ी बोली साहित्य रचना के रूप में अपने वर्तमान रूप में केवल आधुनिक काल में हमारे सामने आती है।

इस इकाई में हम इस विकासक्रम को उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आपके सामने लाने की कोशिश कर रहे हैं।

5.3 प्रारंभिक हिंदी (पुरानी हिंदी)

'प्रारंभिक हिंदी' कौन सी है और उसमें क्या-क्या रचनाएँ हैं, यह प्रश्न बड़ा जटिल है। किस रचना को हिंदी की पहली रचना माना जाए ? आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. रामकुमार वर्मा, महापंडित राहुल सांकृत्यायन आदि विद्वान तो अपभ्रंश को भी समाहित कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में पृथक नाम की कोई आवश्यकता ही नहीं। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा मध्यदेश को वर्तमान 'हिन्दी प्रदेश' की संज्ञा देते हैं जिसका देश के इतिहास में असाधारण महत्व मानते हैं। मध्यदेश के तेरह जनपद स्वीकार कर वहाँ बोली जाने वाली प्रधान बोलियों का सामूहिक रूप हिंदी मानते हैं। उनके अनुसार सिद्धों और नाथों की रचनाएँ अपभ्रंश मिश्रित हैं। दक्षिण मध्यदेश और गुजरात में जैन कवियों की प्राकृत और अपभ्रंश रचनाओं में भाषा का पुट दिखाई देने लगता है। बाद में हिंदी की तीन कृतियाँ - बीसलदेव रासो (नाल्ह), पृथ्वीराज रासो (चंद), आल्हाखंड (जगनिक) - मानते हैं। प्राचीनतम रूप भी कदाचित इसी काल में प्रारंभ हो गया था किंतु मौखिक परंपरा से अनेक शताब्दियों तक चलते रहने के कारण इन तीनों में बहुत परिवर्तन-परिवर्द्धन हुए। (मध्यदेश', पृ 11 व 177 पर आधारित)।

'भाषा से प्राचीनतम हिंदी रूप को लिया जा सकता है।

डॉ. हरदेव बाहरी 'आरंभिक हिंदी' के अंतर्गत एक नहीं तेरह संभावनाएँ रखते हैं -

1. सिद्धों की वाणियाँ, 2. जैन कवि पुष्पदंत, 3. स्वयंभू कृत पउम चरिउ, 4. अवहट्ट में प्राप्त 'वर्ण रत्नाकार' तथा कीर्तिलता (विद्यापति), 5. चंदायन (मुल्ला दाऊद), 6. नाथ जोगी, विशेषत: गोरखनाथ, 7. संत नामदेव, त्रिलोचन, कबीर का साहित्य, 8. दक्खिनी, 9. अमीर खुसरो की हिंदवी की रचनाएँ, 10. रोडा कृत राउलवेल, 11. राजस्थान के आसपास की हिंदी (क) अपभ्रंश मिश्रित पश्चिमी हिंदी, (ख) डिंगल, (ग) मरुभाषा (राजस्थानी), (घ) पिंगल भाषा, 12. प्राकृत पैंगलम और हेमचन्द्र के व्याकरण में इसके प्रारंभिक रूप के उदाहरण मिल सकते हैं, 13. शुद्ध राजस्थानी में उस युग के वात और ख्यात। एक प्रकार से संभावनाएँ अत्यधिक हैं। उपर्युक्त में से कुछ की चर्चा अपभ्रंश में और कुछ ग्रंथों का विवेचन अवहट्ट में किया जा चुका है। क्रमांक 5 स्पष्टत: अवधी का पूर्व रूप है। क्रमांक 6, 7, 8, 9, की चर्चा विस्तार से आगे 'खड़ी बोली' में की जा रही है। आगे चलकर डॉ. बाहरी के अनुसार 'पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी का मत सही जान पड़ता है कि 11वीं शताब्दी की परवर्ती अपभ्रंश से पुरानी हिंदी का उदय माना जा सकता है। परंतु कठिनाई यह है कि उस संक्रांति काल की सामग्री इतनी कम है कि उससे किसी भाषा के ध्वनिगत और व्याकरणिक लक्षणों की पूरी-पूरी जानकारी नहीं मिल सकती।' (पृ. 29) अंत में निष्कर्ष के रूप में कहा है - 'अत: हम डॉ. माता प्रसाद गुप्त और डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया के विचार से सहमत हैं कि रोडा कृत राउल बेलि एकमात्र ऐसी कृति है जिसमें एक भाषा के लक्षण मिलते हैं। इसी के आधार पर हिंदी का पूर्व-रूप निर्धारित किया जा सकता है।' (हिंदी भाषा, पृ. 29)

डॉ. भोलानाथ तिवारी हिंदी भाषा के आदि काल में गोरखनाथ, विद्यापति, नरपति नाल्ह, चंद, कबीर, ख्वाजा बंदे नेवाज़, शाह मीराजी मानते हैं। हिंदवी या हिंदी के प्रथम कवि मसउद साद सलमान हैं जिनकी चर्चा अमीर खुसरो ने की है।

ऐसी स्थिति में यहाँ प्रारंभिक हिंदी में सर्वप्रथम 'पुरानी हिन्दी' (गुलेरी) की चर्चा की जा रही है और उसके बाद 'प्राकृत पैंगलम' तथा 'राउलवेल' की जिनको अधिकांश विद्वानों ने स्वीकार किया है।

5.3.1 पुरानी हिंदी

'पुरानी हिंदी' गुलेरी जी का शोधपरक आलेख है। उसको जब 1948 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा ने पुस्तकाकार प्रकाशित किया तो तत्कालीन साहित्य मंत्री आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपने वक्तव्य में लिखा -- विचार था कि इसमें उद्धृत अपभ्रंश या अवहट्ट के अवतरणों की वैज्ञानिक टीका-टिप्पणी कराकर जोड़ दी जाए।' यह कार्य आज तक निकले 'पुरानी हिंदी' (पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी) के किसी भी संस्करण के लिए नहीं हो पाया। आचार्य मिश्र ने इसके नाम की टिप्पणी पर यह टिप्पणी दी:

''पुरानी हिंदी नाम बहुत सोच-विचारकर प्रस्तुत किया गया है, पुरानी बंगला, पुरानी गुजराती, पुरानी राजस्थानी, पुरानी मराठी आदि प्रयोगों का भ्रम मिटाने के लिए। जैसे ब्रजभाषा के सर्वसामान्य भाषा पद पर आरूढ़ होने पर उसका प्रयोग प्रत्येक प्रांत के निवासी करने लगे और अपने प्रांत के प्रयोग जाने-अनजाने उसमें रख चले पर रीढ़ ब्रजभाषा ही रही, वैसी ही स्थिति अपभ्रंश की भी थी। जिस प्रकार नानक जी की भाषा पंजाबीपन लिए हुए है, श्री भारतीचंद्र की बंगलापन, समर्थ गुरु रामदास की मराठीपन, मीरां की गुजराती-राजस्थानीपन पर है वह ब्रजभाषा ही, उसी प्रकार जिसे 'पुरानी हिंदी' कहा गया है, वह हिंदी ही है, पर उस सोपान तक पहुँचकर प्रांतीय रूप कुछ-कुछ और कहीं-कहीं परिस्फुट होने लगे थे।''

(वक्तव्य से)

अपने इन्हीं विचारों में आगे चलकर 'हिंदी साहित्य का अतीत' भाग-1 में आचार्य मिश्र ने अपनी टिप्पणी जोड़ते हुए कहा - 'अपभ्रंश के अनंतर जनता की भाषा जो बहुत व्यापक क्षेत्र में चलती थी नागरी या हिंदी कहलाती थी। पर धीरे-धीरे एक-एक प्रदेश की भाषा विकसित होकर एक-दूसरे से पृथक होने लगी।'

'पुरानी हिंदी' गुलेरी जी के मौलिक विचारों का खजाना है जिसका अभूतपूर्व महत्व प्रथम प्रकाशन के समय तो था ही, आज भी उतना ही बना हुआ है। उनके मौलिक विचार पुस्तक के प्रारंभ (पृ. 1-19) में हैं, तत्पश्चात् आपने अपने विचारों की पुष्टि में 'शार्गधर पद्धति' (पृ. 19-20) से, 'प्रबंध चिंतामणि'

(पृ. 24-72) से, 'कुमारपाल प्रतिबोध' (सोमप्रभाचार्य) (पृ. 72-100) से, 'दोहाग्रंथ' (पृ. 122-125), 'खड़ी बोली मलेच्छ भाषा' (पृ. 125-133), हेमचन्द्र के व्याकरण (पृ. 133-170) तथा उनकी रचना (पृ. 170-249) से उद्धरण देकर अपने मत की पुष्टि की है।

प्राय: यह कहा जाता है कि मूल भाषा संस्कृत है और आधुनिक आर्यभाषाएँ उसकी बेटियाँ हैं अर्थात् उससे विकसित हुई हैं। इसके विपरीत, उन्होंने संस्कृत को मूलधारा से निकली नहर माना, मूलधारा नहीं। गुलेरी जी के अनुसार:

"वह (संस्कृत) मँजी, छँटी, सुधरी भाषा है। कितने हजार वर्ष के उपयोग से उसका यह रूप बना, किस 'कृत' से वह 'संस्कृत' हुई, यह जानने का कोई साधन नहीं बचा रहा है। वह मानो गंगा की नहर है, नरौरे (आज का सुप्रसिद्ध राजघाट नरौरा जहाँ से गंगा की नहर निकाली गई है) के बाँध से उसमें सारा जल खेंच लिया गया है, उसके किनारे सम हैं, किनारों पर हरियाली और वृक्ष हैं, प्रवाह नियमित है। किन टेढ़े-मेढ़े किनारों वाली, छोटी-बड़ी पथरीली, रेतीली नदियों का पानी मोड़कर यह अच्छोद नहर बनाई गई और उस समय के सनातन भाषा प्रेमियों ने पुरानी नदियों का प्रवाह 'अविच्छिन्न' रखने के लिए कैसा कुछ आंदोलन मचाया या नहीं मचाया, यह हम जान नहीं सकते। सदा इस संस्कृत नहर को देखते-देखते हम असंस्कृत या स्वाभाविक प्राकृतिक नदियों को भूल गए। और फिर जब नहर का पानी आगे स्वच्छंद होकर समतल और सूत से नपे हुए किनारों को छोड़कर जल-स्वभाव से कहीं टेढ़ा, कहीं गंदला, कहीं निखरा, कहीं पथरीली, कहीं रेतीली भूमि पर और कहीं पुराने सूखे मार्गों पर प्राकृतिक रीति से बहने लगा तब हम यह कहने लगे कि नहर से नदी बनी है, नहर प्रकृति है और नदी विकृति। यह नहीं कि नदी अब सुधारकों के पंजे से छूटकर फिर सनातन मार्ग पर आई है।" ...... इस रूपक को बहुत बढ़ा सकते हैं। ...... संस्कृत अजर-अमर तो हो गई किंतु उसका वंश नहीं चला, वह कलमी पेड़ था। हाँ, उसकी सम्पत्ति से प्राकृत और अपभ्रंश और पीछे हिंदी आदि भाषाएँ पुष्ट होती गईं और उसने भी समय-समय पर उनकी भेंट स्वीकार की।" (वही, पृ. 1 व 2)

एक अन्य बात की ओर उन्होंने ध्यान दिलाया कि "संस्कृत नाटकों की प्राकृत को शुद्ध प्राकृत का नमूना नहीं मानना चाहिए। वह पंडिताऊ या नकली या गढ़ी हुई प्राकृत है जो संस्कृत में मसविदा बनाकर प्राकृत-व्याकरण नियमों से गढ़ी हुई है। वह संस्कृत मुहाविरों का नियमानुसार किया हुआ रूपांतर है, प्राकृत भाषा नहीं।" (पृ. 3)

आचार्य गुलेरी ने आगे अपभ्रंश पर विचार करते हुए, वही प्रारंभिक रूपक आगे बढ़ाते हुए लिखा:

"बाँध से बचे हुए पानी की धाराएँ मिलकर अब नदी का रूप धारण कर रही थीं। उनमें देशी धाराएँ[1] भी आकर मिलती गईं। देशी और कुछ नहीं, बाँध से बचा हुआ पानी है या वह जो नदी-मार्ग पर चला आया, बाँधा न गया। उसे भी कभी-कभी छानकर नहर में लिया जाता था। बाँध का जल भी रिसता-रिसता इधर मिलता आ रहा था। पानी बढ़ने से नदी की गति वेग से निम्नाभिमुखी हुई उसका अपभ्रंश (नीचे को बिखरना) होने लगा। अब सूत से नपे किनारे और नियत गहराई नहीं रही।"

प्राय: यह समझा जाता रहा कि उन्होंने अपभ्रंश को ही 'पुरानी हिंदी' की संज्ञा दी। ऐसा नहीं है, उन्होंने अपभ्रंश के दो रूप स्वीकार किए :

पुरानी अपभ्रंश (प्रारंभिक अपभ्रंश)

पिछली अपभ्रंश (उत्तरकालीन अपभ्रंश)

उनका तात्पर्य था कि आगे और व्यापक खोज होनी चाहिए जिससे निश्चित रूप से यह पता लगाया जा सके कि कहाँ तक के साहित्य को अपभ्रंश माना जाए और कहाँ से प्राप्त साहित्य को अपभ्रंश न कहकर 'पुरानी हिंदी' कहा जाए जहाँ से हिंदी का उद्गम हुआ और विकास हुआ। अपभ्रंश कहाँ समाप्त होती है और पुरानी हिंदी कहाँ आरंभ होती है, इसका निर्णय करना कठिन किंतु रोचक और बड़े महत्व का है। इन दो भाषाओं के समय और देश के विषय में कोई स्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती।[2]

---

1 देशी धाराएँ भी अनेक हैं: (क) देसिल बअना (देसिल बअना सब जन मिट्ठा - विद्यापति), (ख) देसीनाम माला (हेमचन्द्र) (ग) देशी शब्द संग्रह (पादलिप्ताचार्य) (घ) देशी भाषा उभय तडुंज्जल कवि (पउमचरिउ - स्वयंभू)

2 पुस्तक का वक्तव्य

उनका स्पष्ट मत था कि पुरानी हिंदी 'अपभ्रंश' से भिन्न है। 'पुरानी हिंदी' से उनका तात्पर्य था 'खड़ी बोली हिंदी, मानक हिंदी से पूर्वरूपों से' जिसको प्रकारांतर से उन्होंने इस प्रकार स्पष्ट किया :

"आजकल लोग पृथ्वीराज रासो की भाषा को हिंदी का प्राचीनतम रूप मानते हैं। उनका विचार हम अवतरणों के विचार से पीछे कहेंगे किंतु इतना कह देते हैं कि यदि इन कविताओं को पुरानी हिंदी नहीं कहा जाए तो रासो की भाषा को राजस्थानी या मेवाड़ी-गुजराती-मारवाड़ी, चारणी-भाटी कहना चाहिए, हिंदी नहीं। ब्रजभाषा भी हिंदी नहीं और तुलसीदास की मधुर उक्तियाँ भी हिंदी नहीं।''

उक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थानी, मारवाड़ी, ब्रजभाषा, अवधी आदि हिंदी की उपभाषाएँ मानी जा सकती हैं; पर हिंदी नहीं। यह बहुत मौलिक दृष्टि थी। आगे चलकर 'पुरानी हिंदी' का प्रयोग अपभ्रंश के संदर्भ में आचार्य शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में किया -'हिंदी काव्य भाषा के पुराने रूप का पता हमें विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है। ....देश भाषा मिश्रित अपभ्रंश अर्थात् पुरानी हिंदी की काव्यभाषा है।'' (पृ 10 तथा 12)

गुलेरी जी को मात्र हेमचन्द्र के शब्दानुशासन[1] से उदाहरण देकर संतुष्ट होना पड़ा।

इस दिशा में दो महत्वपूर्ण कृतियों का उद्घाटन हुआ है जिनको 'पुरानी हिंदी' में सम्मिलित किया जा सकता है:

1. प्राकृत पैंगलम्
2. राउलवेल

'प्राकृत पैंगलम' में पुरानी हिंदी के भरपूर उदाहरण हैं। डॉ. वीरेन्द्र श्रीवास्तव ने स्वीकार किया है कि इस पुरानी हिंदी के अध्ययन में प्राकृत पैंगलम् का स्थान महत्वपूर्ण है। इस ग्रंथ के अध्ययन 'पुरानी हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में 'प्राकृत पैंगलम्' का योग' पर डॉ. भोलाशंकर व्यास को डी. लिट. की उपाधि प्राप्त हुई। आगे इस ग्रंथ पर विस्तार से चर्चा की जा रही है।

'राउलवेल' पर डॉ. भायाणी, डॉ. माता प्रसाद गुप्त तथा डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया ने शोधपरक कार्य सम्पन्न किए। उस पर भी विस्तार से विवेचन किया जा रहा है।

5.3.2 प्राकृत पैंगलम्

यह छंदशास्त्र का ग्रंथ है। छंदों के उदाहरणस्वरूप जो पद्य इसमें सकंलित हैं वे किसी एक काल का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी इस ग्रंथ में संकलित छंदों के उदाहरणों को नवीं से चौदहवीं शताब्दी तक की रचनाएँ मानते हैं। डॉ. तेस्सीतोरी ने इस पर टिप्पणी देते हुए लिखा कि 'हमारे लिए 'प्राकृत पैंगलम्' की भाषा हेमचन्द्र के अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं की प्रारंभिक अवस्था के बीच वाले सोपान का प्रतिनिधित्व करती है और दसवीं- ग्याहरवीं अथवा संभवत: बारहवीं ईसवी के आसपास की भाषा उसे कहा जा सकता है।'' राजशेखर की कर्पूर मंजरी (नवीं शताब्दी से) के उदाहरणों से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक की रचनाएँ इसमें हैं। डॉ. नामवर सिंह ने (पुरानी राजस्थान - 1956 ई.) व्यावहारिक रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि प्राकृत पैंगलम् हेमचन्द्र के दोहों और नव्य भाषाओं के प्राचीनतम रूप के बीच की कड़ी का प्रतिनिधित्व करता है। इस तरह की भाषा 10वीं से 12वीं शती की भाषा का आदर्श रूप मानी जा सकती है।

प्राकृत पैंगलम् की भाषा

प्राकृत पैंगलम् के उदाहरणों में सभी क्षेत्रों की भाषा के रूप हैं :

पश्चिमी हिंदी :

> ढोल्ला मरिअ ढिल्लि यह मुच्छिअ मेच्छ सरीर। (ढोला मारा (बजाया) दिल्ली में तो मूर्च्छित हुआ मलेच्छ शरीर)।

---

1 हेमचन्द्र पर हुए अनेक कार्यों में से दो उल्लेखनीय हैं - (क) सिद्ध हेमशब्दानुशासनगत अपभ्रंश का समग्र अनुशीलन और उसका हिंदी पर प्रभाव (सुकुमारी चतुर्वेदी) (ख) हेमचन्द्र के अपभ्रंश सूत्रों की पृष्ठभूमि और उसका भाषावैज्ञानिक अध्ययन (परम मिश्र)

पूर्वी हिंदी :

सोउ जुहुदिठा संकट पावा।

दिसइ चलइ हिअअ डुलइ हम इकलि बहू।

इस उदाहरणों के आधार पर डॉ. उदय नारायण तिवारी ने यह निष्कर्ष निकाला कि 'प्राकृत पैंगलम्' के समय तक साहित्यिक अपभ्रंश के बीच-बीच में तत्कालीन लोक-भाषाओं के रूप में यत्र-तत्र स्थान पाने लगे थे और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ यद्यपि प्रांतीय रूप में विकसित न हो पाई थीं, परंतु उनकी विशेषताएँ प्रकट होने लगी थीं। (हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. 149-150)

नव्य आर्य भाषाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि क्षय स्थिति समाप्त हो गई और उन शब्दों में परिवर्तन के फलस्वरूप विकास स्पष्ट हो गया :

संस्कृत रूप	प्राकृत	आधुनिक
हृदय	हिअअ	हिय, हिया

द्वित्व की स्थिति समाप्त प्राय: हो गई फिर भी 'चादर' के साथ 'चद्दर' आज तक विद्यमान है।

प्राकृत पैंगलम् में प्राप्त	वर्तमान रूप
चउबीस	चौबीस
चामा	चाम
दीसइ	दीसइ (ब्रज), दीखना (खड़ी)
कहीजे	कहै (ब्रज), कहना (खड़ी)

छठे दशक के अंत में लगभग एक साथ तीन व्यक्तियों - डॉ. अम्बा प्रसाद 'सुमन', डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया, डॉ. विश्वनाथ तिवारी - ने क्रमश: 'प्राकृत पैंगलम् की शब्दावली और वर्तमान ब्रजलोक शब्दावली', 'प्राकृत पैंगलम् और खड़ी बोली' तथा 'प्राकृत पैंगलम् और अवधी' पर लिखा जो तीन शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ। यह एक भ्रम है कि 'प्राकृत पैंगलम्' पुरानी ब्रजभाषा का ग्रंथ है जैसा डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने 'पिंगल काव्य की परंपरा' में इस ग्रंथ को मूर्धन्य स्थान पर रखकर व्यक्त किया है। मेरा मत है कि एक प्रकार से उसमें वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं के विशेषकर हिंदी से संबंधित उपभाषाओं के पूर्व रूप के दर्शन किए जा सकते हैं। ब्रजभाषा के पूर्व-रूप द्रष्टव्य हैं :

अक्खर	(आखर)
अग्गे	(आगै)
अग्गि	(आग)
अज्जु	(आजु)

प्राकृत पैंगलम् की भाषा पर टिप्पणी करते हुए डॉ. शिवप्रसाद सिंह का निष्कर्ष द्रष्टव्य है :

"प्राकृत पैंगलम् की भाषा में ध्वनि और रूप दोनों ही दृष्टियों से प्राचीन ब्रज के प्रयोगों का बाहुल्य है। वाक्य विन्यास की दृष्टि से तो यह भाषा ब्रज के और निकट दिखाई पड़ती है। निर्विभक्तिक प्रयोग, वर्तमान कृदंतों का सामान्य वर्तमान में प्रयोग, सर्वनामों के अत्यंत विकसित रूप इसे ब्रजभाषा का पूर्वरूप सिद्ध करते हैं। क्रिया के भविष्य रूप में यद्यपि इस काल तक 'गा' वाले रूप नहीं दिखाई पड़ते किंतु 'आवहि', 'करिह' आदि में 'ह' कार रूपों का प्रयोग हुआ है। ब्रजभाषा में 'गा' प्रकार के रूप भी मिलते हैं परंतु 'ह' प्रकार के चलिहै, करिहै आदि रूप भी बहुत हैं।"

ऐसा नहीं है कि खड़ी बोली के रूप नहीं मिलते। ब्रजभाषा के साधारण पुल्लिंग संज्ञा शब्द तक विशेषण औकारांत (कहीं ओकारांत) होते हैं जबकि खड़ी बोली की प्रवृत्ति आकारांतता की है। दोनों रूप इस ग्रंथ में विद्यमान हैं।

ओकारांत रूप : भमरो, मोरो, णाओ, हम्मारो

आकारांत रूप : बंका (567/3)
दीहरा (309/8)

किसी-किसी शब्द के दोनों रूप विद्यमान हैं :

बुड्ढा, बुद्दा (545/2)

बुद्धओ (5/2)

विस्तृत अध्ययन के लिए द्रष्टव्य है :

'प्राकृत पैंगलम् की शब्दावली और वर्तमान हिंदी' (डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया, सम्मेलन पत्रिका, वर्ष 47, अंक 3)

5.3.3 रोडा कृत 'राउरवेल'

'राउरवेल' ग्याहरवीं शती का शिलांकित भाषा काव्य है जिसका रचयिता रोडा है। इस ग्रंथ के पाठ पर डॉ. हरिवल्लभ चुनीलाल भायाणी तथा डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने कार्य किया। डॉ. भाटिया की इसी शीर्षक से पुस्तक प्रकाशित है जिसको विस्तृत अध्ययन के लिए लिया जा सकता है। इस छोटी-सी कृति में किसी सामंत ने रावल (राजभवन) की रमणियों का वर्णन किया है जिसके कारण इसका नाम 'राजकुल विलास' (राउल वेल) है। इसकी भाषा पर टिप्पणी देते हुए डॉ. गुप्त का कथन है - 'लेख की भाषा पुरानी दक्षिण कोसली है जिस प्रकार 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' की पुरानी कोसली है। उस पर समीपवर्ती तत्कालीन भाषाओं का कुछ प्रभाव अवश्य ज्ञात होता है।' यह भाषा 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' की भाषा से प्राचीनतर लगती है जो लेख के लेखन काल (लगभग 1050 ई.) के अनुसार होना भी चाहिए। यह भी प्रमाणित हो जाता है कि हिंदी की तरह कदाचित् अन्य आधुनिक भारतीय भाषाएँ भी ग्यारहवीं शती में इतनी प्रौढ़ हो चली थीं कि उनमें सरस काव्य की रचना हो चली थी, मात्र केवल बोलचाल की भाषाएँ नहीं थीं।

भाषागत प्रमुख विशेषताएँ

1. 'ण' का प्रयोग बहुतायत से हुआ है जिस पर प्राकृत अपभ्रंश का स्पष्ट प्रभाव है :

   भणु, भाषणु, पहिणु, विण, भण, भयणु आदि।

2. नासिक्य ध्वनियों में 'ण' के अतिरिक्त 'न' तथा 'म' है :

   गवांरिम्व, म्वालउ, चिन्तवन्तई।

3. सानुनासिकता तथा अनुस्वार दोनों कि लिए लेखन में (-ं) (बिंदु) का प्रयोग मिलता है।

4. 'व' और 'ब' समान रूप से उत्कीर्ण किए गए हैं।

5. 'य' का प्रयोग 'ज' के स्थान पर भी मिलता है, जैसे :

   क्रियई = किज्जई

6. कवि ने अंत में वक्तव्य दिया है। संयोग से उसका अधिकांश भाग सुरक्षित है :

   रोड़ें राउल वेल वखा (णी)।
   (पुणु ?) तहं भासहं जइसी जाणी।।

(रोडा के द्वारा यह राउलवेल कही गई और फिर वहाँ की भाषा में (कही गई), जैसी उसकी जानी थी।)

स्पष्ट है कि यह रचना तत्कालीन लोक भाषा में लिखी गई है जिसके लिए लेखक ने 'भाषा' शब्द का सार्थक प्रयोग किया है। तत्कालीन लोकभाषा के लिए सामान्यत: मात्र 'भाषा' का प्रयोग किया जाता रहा है जैसे तुलसीदास ने मानस में 'अवधी' के लिए किया है। डॉ. भायाणी ने इसमें आठ नख-शिख की कल्पना की है जो अपभ्रंशोत्तर आठ बोलियों के विशिष्ट तत्वों से समन्वित रहे होंगे। डॉ. गुप्त की राय में सब कुछ एक ही बोली में लिखे गए। निकटवर्ती बोलियों के तत्व आ गए जिसमें से चार का स्पष्ट उल्लेख है : 1. टक्क, 2. मालवा, 3. गौड़, 4 (?)। डॉ. भायाणी के अनुसार प्राप्त नख-शिख क्रमश: अवधी, मराठी, पश्चिमी, हिंदी, पंजाबी, बंगाली तथा मालवी के पूर्व रूपों में लिखे गए। 'कन्नौजी' वस्तुत: 'कानोउड' है जो 'कनावड़े' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

डॉ. भाटिया के अनुसार मूल रूप से समस्त लेख में एक ही भाषा प्रयुक्त हुई है जिसमें स्थान भेद से नायिकाओं के वर्णन में क्षेत्रीयता झलकती है, जैसे प्रारंभ में अच्छा, मनोहर, सुंदरवाची 'चंगा' का प्रयोग तीन बार विभिन्न रूपों में हुआ है।

चांगड (पंजाबी का स्पष्ट प्रभाव है।)
चांगा
चांगिम्व

मालवी सुंदरी के संदर्भ में सुंदरतावाची 'रूरी' का प्रयोग हुआ है : रूरी, रूरे, रूउर, रू (रउ), रूरउ

7. भाषा प्रधानत: उकार बहुला है :

पंक्ति	2	काजलु, तुछउ, मणु मणु, रावउ
	3	माण्डणु, पावउ, मणु
	4	चांगउ, वचाछउ, आंगउ, भालउ
	5	घरु
वहीं अंत में -		
	33	काजलु, दीनउ, कसइउ, जणु, चाखहु
	45	राउलु

8. 'रूप' की दृष्टि से निर्विभक्तिक प्रयोग कर्ता, कर्म में मिलते हैं। करण कारक में एँ और संबंध कारक में हुं, न्हुं प्राप्त होते हैं। संबोधन में 'रे' का प्रयोग किया गया है।

सर्वनामों में उत्तम पुरुष में अम्हार, अम्हणउं
मध्यम पुरुष में तहं, तंहं, तुम्ह, तोही, तुहु, तुम्हार

अन्य पुरुष में सा, सोह, सो, तं, ताहि रूप मिलते हैं।

निकटवर्ती - एहु, एह, एहा, एही, एहि
संबंधवाचक - ज, जा, जे, जि, जो
प्रश्नवाचक - काउ, कतहू, कहाइउं
अनिश्चयवाचक - काहू, कोह, कोक्कु, केतउ, कोउ, काहु।
निजवाचक - आवणी, आपणाह।

इसी आधार पर सुप्रसिद्ध भाषाविद डॉ. हरदेव बाहरी ने माना है, कि डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया के विचार से रोडा कवि कृत राउलबेलि एकमात्र ऐसी कृति है जिसमें एक भाषा के लक्षण मिलते हैं। इसी के आधार पर हिंदी का पर्व रूप निर्धारित किया जा सकता है।

5.4 हिंदवी / हिंदई - साहित्यिक रूप

सुप्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो नस्ल से तुर्क होते हुए भी उनको भारतीयता भरपूर मिली थी। उन्हें 'हिंदवी' (हिंदी) मातृभाषा विरासत के रूप में मिली थी। भारतीय होने पर उन्हें गर्व था :

तुर्क हिंदुस्तानियम मन हिंदवी गोयम जवाब।
(मैं हिंदस्तानी तुर्क हूँ, हिंदवी में जवाब देता हूँ।

'नुह सिपेहर' शीर्षक ग्रंथ के तीसरे सिपेहर में उल्लेख किया है कि अन्य भाषाओं के समान हिंदुस्तान में प्राचीनकाल से 'हिंदवी' बोली जाती थी, किंतु गोरियों और तुर्कों के पश्चात लोगों ने फ़ारसी भाषा का ज्ञान भी प्राप्त करना प्रारंभ कर दिया। खुसरो ने इस भाषा को 'हिंदवी', 'देहलवी' भी कहा है। खुसरो के अतिरिक्त दक्खिनी के कवि शरफ ने 'नौसरहार' (1503 ई.) में इस भाषा को 'हिंदवी' कहा है :

नज़्म लिखी सब मौजूँ आन
यों सब 'हिंदवी' कर आसान।

'हिंदवी' के साथ 'हिंदुई' रूप भी मिलता है जिसका स्पष्ट उल्लेख 'कुतुब शतक' (15वीं शती) में मिलता है। 'कुतुब शतक' में जिस भाषा को अपनाया गया है वही दक्षिण भारत की रियासतों में पहुँचकर साहित्यिक भाषा के रूप में स्वीकार कर ली गई। इसका विकसित रूप ही दक्खिनी बना। 'कुतुब शतक' के संपादक डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने स्पष्ट रूप से लिखा है :

'राउलबेल और दक्खिनी के बीच की जनभाषा कुतुब शतक की भाषा है तथा राउलबेल और कुतुब शतक की जनभाषा की कड़ी गोरखनाथ की बानियाँ हैं।' (प्रस्तावना, पृ. 5)

'कुतुब शतक' की भाषा पर डॉ. भाटिया ने ज्ञानपीठ की पत्रिका में बड़े विस्तार से लिखा है। (अगस्त, 1968)

इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (1580 ई.) के समय में अब्दुल बीजापुर पहुँचे थे, उन्होंने भी अपनी भाषा को 'हिंदुई' की संज्ञा दी है :

जबां हिंदुई मुझ सो हूँ देहलवी
न जानू अरब और अज़म मसनवी।

(मेरी जबान हिंदुई है। मैं दिल्ली का निवासी हूँ। अरबी-फारसी की मसनवी को नहीं जानता।)

'हिंदुई' नाम का सबसे पुराना उल्लेख सुप्रसिद्ध भारतीय फ़ारसी कवि मुहम्मद औफी (1228 ई.) में मिलता है। वे मसूऊद-ए-साऊद उलेमान (मृत्यु 1121 ई.) की रचनाओं का उल्लेख करते हुए उन्हें 'हिंदुई' का भी कवि मानते हैं और कहते हैं कि उनका एक दीवान 'ताजी' (अरबी) और फ़ारसी के अलावा हिंदी में भी था। (हिंदी : भाषा, राजभाषा, डॉ. परमानंद पांचाल, पृ. 47)

जैसा कहा जा चुका है कि इस भाषा का प्रयोग ही 'कुतुब शतक' में मिलता है। 'कुतुब शतक' के वार्तिक तिलक में अन्य भाषाओं के साथ 'हिंदुई' का नाम भी आया है:

बीबी बीवानां की फारसी हिंदवी
चयारों की हकीकति।
तारीफ़ वेद की। कुरान की।

... बड़ा भाई ह्यंदू छोटा भाई मुसलमान। ह्यंदूई मो पंडित नाम राषो (राखो)। सोई नाम। (कुतुब शतक और हिंदुई, डॉ. माता प्रसाद गुप्त, पृ. 25)

इस प्रकार तीन प्रकार की वर्तनी मिलती है :

1. हिंदुई
2. ह्यंदूई
3. हिंदवी

स्पष्ट रूप से 'हिंदुई'; हिंदी' शब्द का पूर्व रूप सिद्ध होता है।

5.4.1 अमीर खुसरो और हिंदवी

हिंदी साहित्य के अनेक साहित्यकारों ने अमीर खुसरो को हिंदवी का पहला कवि माना है। खुसरो तेरहवीं शताब्दी के कवि थे जो निश्चित रूप से गोरखनाथ के बाद के हैं। खुसरो की भाषा, विशेषतः पहेलियों-मुकरियों की भाषा में खड़ी बोली का वही रूप है जो आज विद्यमान है, साहित्यिक मानक हिंदी से मेल खाती है। तभी तो इतिहासकार डॉ. रामकुमार वर्मा ने लिखा - 'यदि अमीर खुसरो के बाद ब्रजभाषा के बजाय खड़ी बोली हिंदी में नियमित और अवरित रचनाएँ होती रहतीं तो आज की खड़ी बोली हिंदी कविता कितनी परिमार्जित हो गई होती, इस बात का सहज अनुमान किया जा सकता है।'

हिंदवी : मध्यकाल में 'हिंदवी' दिल्ली के आसपास की भाषा थी जिसमें अरबी-फ़ारसी शब्दों का अभाव था। यही भाषा है जिसमें कहानी लिखने की प्रतिज्ञा, इंशाअल्ला ख़ाँ ने आगे चलकर उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में की -'हिंदवी छुट और किसी बोली का पुट नहीं हो।'

दिल्ली के आसपास विकसित होने वाली भाषा उस काल में 'हिंदी' या 'हिंदवी' कहलायी। 'खालिकबरी' में 'हिंदी' शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है पर माना जाता है कि वह बहुत बाद में किसी अन्य 'खुसरोशाह' की रचना है। खुसरो का ही एक अन्य वाक्य उद्धृत कर दिया जाता है। 'ज़ुज़्बे चंद नज़्में हिंदी नीज नज़ेदोस्ताँ करदा शुदा अस्त' इसकी प्रामाणिकता में संदेह है। एक स्थान पर वे स्वयं कहते हैं :

> तुर्क हिंदुस्तानियम मन हिंदवी गोयम जवाब।
> (मैं हिंदुस्तानी तुर्क हूँ, हिंदवी में जवाब देता हूँ।)

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने यह माना है कि 'हिंदी' शब्द का प्रयोग भारतीय मुसलमानों के लिए होता था जबकि 'हिंदवी' शब्द का 'मध्यदेशीय भाषा' के लिए। ...'हिंदुवी' या 'हिंदवी' वो भाषा थी जो शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित थी और मध्यदेश में सहज रूप में प्रयुक्त हो रही थी।

अमीर खुसरो (अबुल हसन) हिंदवी में लिखने वाले ऐसे कवि हैं जिनका जन्म भी पछाँह में (एटा के पटियाली स्थान) हुआ। आपकी प्रतिभा से गुरु निजामुद्दीन औलिया बहुत प्रभावित हुए और अलाउद्दीन ने उनहें 'खुसरुएशारआ' की पदवी दी और बाद में कुतुबुद्दीन शाह सुल्तान ने पर्याप्त सोना व रत्न प्रदान किए। सन 1324 में औलिया की मृत्यु के समाचार को पाकर यह दोहा पढ़ा और बेहोश हो गए :

> गोरी सोवे सेज पै मुख पर डारे केस।
> चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देस।।

उस शताब्दी में उनकी कोटि का लेखक और वह भी भारतीय भाषा में होना आश्चर्यजनक घटना मानी जाती रही। एक नमूना द्रष्टव्य है :

> एक नार वह दाँत दतीली।
> दुबली पतली छैल छबीली।।
> जब वा तिरयहि लागे भूख।
> सूखे हर चबावे रुख।।

उनकी अत्यधिक प्रसिद्ध पहेली है :

> रोटी जली क्यों ?
> घोड़ा अड़ा क्यों ?
> पान सड़ा क्यों ?

एक बात उल्लेखनीय है कि उस समय के दो प्रसद्धि ग्रंथों में 'देहलवी' भाषा का उल्लेख मिलता है। जैसा नाम से स्पष्ट है - वह भाषा जो देहली' के आसपास बोली जाती थी।

नुह सिपेहर नामक ग्रंथ के तीसरे सिपेहर में उल्लेख है

'अन्य भाषाओं के समान हिंदुस्तान में प्राचीन काल से हिंदवी बोली जाती थी किंतु गोरियों और तुर्कों के आगमन के उपरांत लोगों ने फ़ारसी भाषा का भी ज्ञान प्राप्त करना प्रारंभ कर दिया। हिंदुस्तान के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं -

सिन्ध, लाहौरी, कश्मीरी, धीर समुद्री, तिलंगी, गूजरी, भावरी, गौरी, बंगाली तथा अवधी, देहलवी। (गुजराती) (कोंकणी) (गौड़ी)।

(टिप्पणी : धीर समुद्री वस्तुतः ध्रुव (धुर) समुंदरी है।)

इसके अतिरिक्त एक अन्य भाषा है जिसका प्रयोग केवल ब्राह्मण करते हैं। इसका सर्वसाधारण को कोई ज्ञान नहीं है। इसका नाम संस्कृत है। (वस्तुतः यह देहलवी' ही हिंदवी' है जिसका अन्यत्र भी उल्लेख किया गया है।

(खिलजीकालीन भारत, पृ. 180)

दूसरा ग्रंथ अकबरकालीन है जिसकी रचना अबुल फज़्ल ने 'आइने अकबरी' शीर्षक से की। इसमें भी देहलवी' का प्रयोग है :

देहवली, बंगाली, मुलतानी, मारवाड़ी, गुजराती, तिलंगा, मरहठी, कर्नाटकी, सिंधी, अफगानी, बलूचिस्तानी, कश्मीरी।

इससे स्पष्ट है कि खुसरो से अबकर तक देहलवी' नाम अधिक प्रचलन में था।

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हिंदवी' नाम का उल्लेख अन्यत्र नहीं मिलता। कश्मीर के एक इतिहास में एक स्थान पर हिंदवी' का प्रयोग मिलता है :

'उसके राज्यकाल में (सुल्तान, जैनुल आबदीन बिन सुल्तान सिंकदर बुत किशन) सुतूम नामक एक बुद्धिमान था जो कश्मीरी भाषा में कविता करता था और हिंदवी के ज्ञान में भी अद्वितीय था।' (उत्तर तैमूरकालीन भारत (भाग-2), पृ. 218)

खुसरो के अलावा भी अन्य कई ऐसी भाषा लिख रहे थे। लहंदा के बाबा फ़रीद शकरगंज की भाषा का नमूना :

मुंडा मुंडा मुँडाइया सिर मूंडे क्या होय।
कितना भेड़ा मूँड़िया सुरग न लद्धे कोय।।

टिप्पणी : लगभग यही भाव कबीर की साखी में भी है।

तेरहवीं शताब्दी के एक सूफी हमीदुद्दीन नागौरी ने कहा :

बिरह तुम्हारे यार की बात न पूछे कोय।
भाग भयो हनतहि बिरह सब जग बैरी होय।

इसी समय के शरफुद्दीन बू अली कलंदर कहते हैं :

सजन सकारे जायेंगे नैन मरेंगे रोय।
विधना ऐसी रैन कर भोर कभी ना होय।।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि अमीर खुसरो ने जिस भाषा (हिंदवी) में अपनी मुकरियाँ, दो सखुना, निसबत, ढकोसला, पहेलियाँ आदि लिखीं वही भाषा उस समय जन-सामान्य में प्रचलित थी। खुसरो कवि ही कहीं, गायक व संगीतज्ञ भी थे। इस दिशा में उन्होंने कई प्रयोग किए। माना जाता है कि सितार और तबले का प्रारंभ भी खुसरो ने ही किया। बिखरी हुई सामग्री के अतिरिक्त 'खालिकबारी' की रचना भी मिलती है जिसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा से हो चुका है।

5.4.2 कबीर

भावों की अभिव्यक्ति का साधन ही भाषा है। संत काव्य की भाषा सामान्य जनभाषा है। भक्ति काल के सभी कवियों ने लोकभाषा को अपनाया। कबीर ने जिस वाणी का प्रयोग किया वह लोक वाणी थी

क्योंकि वह अपने संदेश को जन-जन के मानस तक पहुँचाना चाहते थे। वह किसी एक प्रदेश के नहीं, सार्वदेशिक थे, अतएव उनकी भाषा भी सार्वदेशिक थी। अपनी लोकभाषा को उन्होंने और कुछ न कहकर 'भाषा' ही कहा:

संस्कीरत है कूप जल, भाषा[1] बहता नीर।

इस बहते नीर का प्रयोग ही उन्होंने अपनी वाणी में किया। उनकी वाणी सहज थी, उसमें जनप्रिय लोकोक्तियाँ-मुहावरे भरे पड़े हैं। कबीर द्वारा प्रयुक्त इस जनभाषा अथवा लोकभाषा को एक भाषा से अभिहित करना संभव भी नहीं है। कबीर पन्द्रहवीं शताब्दी के लोककवि हैं। डॉ. माताबदल जायसवाल तथा डॉ. महेन्द्र ने कबीर की भाषा पर शोध कार्य सम्पन्न किए। डॉ. महेन्द्र ने 'कबीर कोश' भी तैयार किया और भी कई उल्लेखनीय कार्य भाषापरक हुए। डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने 'कबीर' पर अध्ययन प्रस्तुत कर आलोचना की एक नई पद्धति ही विकसित कर दी। डॉ. माताबदल जायसवाल ने स्पष्ट शब्दों में कबीर की भाषा को इसी शृंखला की कड़ी स्वीकार किया :

'गोरखनाथ तथा अमीर खुसरो की भाषा कबीर की हिंदवी की पूर्वगाती कड़ी और दक्खिनी कवियों की हिंदवी कबीर की भाषा की एक समसामयिक कड़ी कही जा सकती है।' (कबीर की भाषा, पृ. 231)

कबीर की भाषा में अनेकरूपता या कहें अनेक विभिन्न बोलियों का मिश्रण अद्भुत ढंग से दिखाई देता है। प्रारंभिक खड़ी बोली मध्य देश के विभिन्न रूपों-उपरूपों पर आधारित है। यह सत्य है कि उसमें पंजाबी, ब्रज, राजस्थानी, भोजपुरी आदि अनेक लोक-बोलियों के शब्द तथा रूप विद्यमान हैं। तभी तो आचार्य रामचन्द्र शुकल ने उसको 'सधुक्कड़ी' कहा। वस्तुत: कबीर की भाषा 'पचमेली सधुक्कड़ी' है जो उस समय की सर्वमान्य भाषा थी। 'सधुक्कड़ी' पर आचार्य शुक्ल ने 'बुद्धचरित' की भूमिका में विस्तृत टिप्पणी की है। आचार्य शुक्ल द्वारा प्रयुक्त 'सधुक्कड़ी' शब्द पर डॉ. व्रजेश्वर वर्मा की यह टिप्पणी महत्वपूर्ण है :

'पंचमेल भाषा होना उसे दूषित मानने का नहीं, उसकी सर्वग्राह्यता का लक्षण और गुण होता है। वाक् समूह में से सर्वमान्य मानक भाषा के विकास की यह प्रक्रिया सार्वकालिक और सार्वदेशिक है।'

कबीर की समन्वय साधना तथा लोकतत्व की प्रधानता इस काल में युग पुरुष गांधी में थी। काशीवासी होते हुए भी कबीर की भाषा काशी की नहीं, वरन् लोक की भाषा थी जिसमें पूर्वी बोली की अपेक्षा पश्चिमी भाषा के तत्व अधिक विद्यमान रहे तथा अनेक भाषाओं/बोलियों के शब्द, कारक चिह्न, क्रियापदों का मिश्रण है। उसी प्रकार गांधी जी ने गुजरात प्रदेश में जन्म लेकर जनभाषा का प्रयोग किया जिसमें संस्कृत, हिंदी, उर्दू, चलते अंग्रेज़ी आदि के शब्द तो थे ही पर अज्ञात रूप से विभिन्न प्रदेशों की शब्दावली भी बढ़ती गई। गांधी जी ने 'हिंदुस्तानी' नाम से अभिहित करने की चेष्टा की थी। कबीर की भाषा को 'तत्कालीन हिंदुस्तानी' कहा जा सकता है। (खड़ी बोली मुसलमानों की भाषा हो चुकी थी। मुसलमान भी साधुओं की प्रतिष्ठा करते थे, चाहे वे किसी दीन के हों। इससे खड़ी बोली दोनों धर्मों के अनपढ़ लोगों के साथ लगने वाले और किसी एक के भी शास्त्रीय पक्ष से संबंध न रखने वाले साधुओं के बड़े काम की हुई।) कबीर ने इस लोक-भाषा की शक्ति को पहचाना था और उसे अपनाकर स्वाभाविक बल के साथ उसको अपनाया, विकास भी किया। कबीर की भाषा पर सबसे अधिक विवाद कबीर के इस दोहे को लेकर हुआ :

बोली हमारी पूरब की, हमें लखा नहिं कोय।
हमको तो सोई लखै, घर पूरब का होय।

'पूरब (पूर्व) की बोली' से कुछ लोगों ने आशय काशी की बोली से लिया और कुछ ने इससे अर्थ देश-विदेश की भाषा नहीं, हृदय-देश में होने वाली आध्यात्मिक अनुभव की वाणी या आदि वाणी से लिया।

---

1 परंपरा से प्रचलित भाषा के लिए 'भाषा' का प्रयोग होता आया है : (1) लिखि भाषा चौपाई कहै। (जायसी) (2) भाषा भनति मोर मति थोरि (तुलसीदास) (3) भाषा-निबद्धमति मंजुल। (तुलसीदास) (4) भाषा बोल न जानाहि जेहि के कुल के दास (केशवदास)। संस्कृत ग्रंथों की लोकभाषाओं में लिखी टीका को 'भाषाटीका' (भाषा टीका कीन्ह) कहा गया। राम प्रसाद निरंजनी का प्रसिद्ध ग्रंथ है – भाषा योगवशिष्ठ। इससे पूर्व अपभ्रंश काल में संस्कृत से इतर लोकवाणी अपभ्रंश को 'देशी' या 'भाषा' की संज्ञा दे दी गई।

लेखक स्वयं भी उसके आध्यात्मिक पक्ष का पक्षधर है, पूर्वी क्षेत्र की बोली से इसका दूर तक संबंध नहीं है। इस संबंध में विस्तार के लिए द्रष्टव्य है 'कबीर की भाषा' (डॉ. भाटिया, राष्ट्रवाणी, सितम्बर 1960)।

मध्यदेशी भाषा

देहलवी-हिंदवी' ही मध्यदेश की भाषा थी जिसको 'मध्य देश की बोली' भी कहा गया। बनारसी दास जैन ने अपने ग्रंथ 'अर्धकथानक' (सन् 1698) में इस ग्रंथ की भाषा को 'मध्यदेश की बोली' कहा :

चौपाई

मध्यदेस की बोली बोलि।
गर्भित बात कहौ हिय खोलि।
भाखूँ पूरब-दसा चरित्र।
सुनहु कान धरि मेरे मित्र ।।7।।

दोहा

याही भारत सुखत में मध्यदेश सुभ ठाँउ।
बसौ नगर रोहतगपुर निकट बहोली गाँउ।।

5.5 हिंदी की बोलियों का विकास

विभिन्न क्षेत्रीय अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ विकसित हुई जिनको मोटे रूप से इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

अपभ्रंश	आधुनिक भाषाएँ/उपभाषाएँ	
शौरसेनी	पश्चिमी हिंदी :	ब्रजभाषा , कन्नौजी, बुंदेली, खड़ी बोली बांगरू (हरियाणवी)
	राजस्थानी :	पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी) पूर्वी राजस्थानी (जयपुरी) उत्तरी राजस्थानी (मेवाती) दक्षिणी राजस्थानी (मालवी, मेवाड़ी)
	पहाडी	पश्चिमी पहाड़ी (हिमाचल, मंडियाली, चंबाली आदि गुजराती) (यह शूरसेन-प्रदेश की भाषा थी। काव्य रचना के 'ब्रज' भाखा (भाषा) का सर्वाधिक आदर रहा। यही कारण है कि गुजरात के भुज (काठियावाड़) में ब्रजभाषा की पाठशाला अठाहरवीं शताब्दी में स्थापित हो गई थी। इस अपभ्रंश का क्षेत्र सर्वाधिक विस्तृत था। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में इसका विशेष उल्लेख किया है। अन्य भाषाएँ/उपभाषाएँ भी ब्रजभाषा से सीधा संबंध रखती हैं।)
पैशाची		लहंदा - पंजाब की भाषा
ब्राचड		सिंधी
महाराष्ट्री		मराठी (बाबू श्यामसुंदर दास के अनुसार महाराष्ट्री उस समय समस्त बृहत्तर राष्ट्र की भाषा थी। 'गाहा सत्तसई' (गाथा सप्तशती) की रचना इसमें की गई।)
मागधी		बंगला, उड़िया, असमिया। बिहारी (भोजपुरी, मगही, मैथिली)

अर्ध-मागधी — पूर्वी हिंदी - अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी
(भगवान महावीर ने अपने धर्म प्रचार के लिए इसी भाषा को अपनाया।)

अपभ्रंश के अन्य प्रकार से भेद डॉ. तगारे ने निम्नलिखित किए हैं :

- पश्चिमी अपभ्रंश (यह लगभग वही है जिसे शौरसेनी कहा गया है।)
- दक्षिणी अपभ्रंश (इस भाषा में ही पुष्पदंत का 'महापुराण' लिखा गया। डॉ. नामवर सिंह ने विवेचन कर इस प्रकार की कल्पना को अवैज्ञानिक माना है।)
- पूर्वी अपभ्रंश (इसके अंतर्गत सरह का काव्य व दोहा कोश की रचना हुई।)

इसी प्रकार अन्य भेद भी माने गए हैं, जैसे ग्यारहवीं शताब्दी में नेमिसन्धु ने तीन भेद किए हैं :

- उपनागर
- आभीर
- ग्राम्य

अन्य मत

- नागर
- उपनागर
- ब्राचड

मार्कण्डेय ने अपने ग्रंथ 'प्राकृत सर्वस्व' में माना है :

- पांचाली (पांचाल प्रदेश में)
- वैदर्भी (बरारी)
- आभीरी
- लाटी
- मध्यदेशीय
- औड्री
- गुर्जरी
- कैकेयी
- पाश्चात्य
- गौड़ी

इनमें 'नागर अपभ्रंश' विशिष्ट अपभ्रंश बन गई और साहित्यिक भाषा का स्थान प्राप्त कर लिया। इसी में पश्चिमी भारत के अनेक ग्रंथों की रचना की गई। यही शौरसेनी अपभ्रंश भी कहलायी। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी 'शौरसेनी भाषा की परंपरा' शीर्षक से अपने आलेख में विचार प्रकट करते हैं :

'यह सच है कि शौरसेनी अपभ्रंश उन दिनों की (आंतरिक) आंत:प्रादेशिक भाषा ही थी और आजकल **ब्रजभाषा, खड़ी बोली** आदि विभिन्न प्रकार की हिंदी का उद्‌भव इस शौरसेनी अपभ्रंश से ही हुआ। आज की तरह एक हज़ार वर्ष पहले हिंदी ही अपने पूर्व रूप में आंत:प्रादेशिक भाषा के रूप में अखिल उत्तर भारत में फैली थी और तमाम आर्य भाषी लोगों में पढ़ी-पढ़ाई और लिखी जाती थी। धीरे-धीरे मध्यदेश की दो भाषाएँ अपभ्रंश की वारिस बनीं - आगरा, मथुरा और ग्वालियर की ब्रजभाषा और दिल्ली की खड़ी बोली।''

मागधी अपभ्रंश से ही बिहार की भाषाएँ विकसित हुई हैं।

बिहारी : वस्तुत: 'बिहारी' बिहार में बोली जाने वाली हिंदी की उपभाषाओं-बोलियों का समूह है जिसमें मैथिली, मगही तथा भोजपुरी मध्यत: आती हैं। भोजपुरी तो उत्तरप्रदेश के बहुत बड़े क्षेत्र में बोली जाती है जिसमे पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी होता है। शब्द सामर्थ्य पर भी कई कार्य हो चुके हैं। मगध में बोली जाने वाली भाषा 'मगही' है और मिथिला क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा 'मैथिली' है। मैथिली में पर्याप्त साहित्य शताब्दियों पूर्व ही लिखा गया।

5.5.1 मैथिली का विकास

मागधी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से विकसित भाषिक रूप ही 'मैथिली' है जो पूर्वी हिंदी और बंगला क्षेत्र की संधि रेखा पर है। हिंदी के प्रारंभिक कवि-साहित्यकार विद्यापति इस क्षेत्र के हैं जिन्होंने जहाँ अपनी कृति 'कीर्तिलता' को अवहट्ठ भाषा में लिखा, वहीं अपने गीतों की रचना मैथिली में की। विद्यापति रचित पदावली हिंदी भाषा में एम.ए. की परीक्षा में पढ़ाई जाती है। हिंदी साहित्य के आदिकालीन रस-सिद्ध कवि विद्यापति हैं। विद्यापति के अतिरिक्त गोविंददास, रणजीतलाल, हरिमोहन झा आदि अनेक कवियों ने इस भाषा में रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

आधुनिक काल में नागार्जुन ने भी मैथिली में लिखा है। साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा भारत की भाषाओं में मैथिली को साहित्यिक मान्यता मिल जाने के कारण इस भाषा के साहित्यकारों को भी सम्मानित किया जाता है।

इस भाषा के शीर्षस्थ कवि हैं विद्यापति, जो मैथिल कोकिल के नाम से विख्यात रहे हैं। गीति काव्य के मूर्धन्य कवि होने के कारण इनको 'अभिनव जयदेव' भी कहा जाने लगा।

उनके काव्य में प्रेम तथा शृंगार की प्रधानता है। आपके पद सरस तथा गेय हैं जिनका संकलन अब 'विद्यापति की पदावली' के रूप में किया जा चुका है। पदावली के अतिरिक्त आपकी अन्य रचनाएँ भी हैं :

- 'कीर्तिलता'
- 'कीर्तिपताका'
- 'गोरक्ष विजय नाटक'।

इनके अतिरिक्त संस्कृत में अनेक रचनाएँ मिलती हैं।

विद्यापति किस काल में हुए, इस पर पर्याप्त विवाद है फिर भी यह कहा जा सकता है कि वह सन् 1350 से 1450 ई. के मध्य विद्यमान रहे। इस प्रकार उनका रचनाकाल चौदहवीं शताब्दी माना जा सकता है। संस्कृत के विद्वान होते हुए भी लोक-भाषा को - मैथिली को - मान्यता दी। मैथिली पर बंगला प्रभाव परिलक्षित होता है।

विद्यापति के पदों में शृंगार और प्रेम की प्रधानता होते हुए भी लगभग सभी आलोचकों ने उन्हें परम वैष्णव भक्त कवि के रूप में स्वीकार किया है। शिव, दुर्गा, गंगा की स्तुति में अनेक रचनाओं के मिलते हुए भी उन्होंने राधा-कृष्ण के शृंगार का वर्णन विशेष रूप से किया जो जन-जन के कंठ में विद्यमान रहे। माना जाता है कि इन पदों को गाते-गाते महाप्रभु चैतन्य भावविभोर हो जाते थे। जयदेव और चंडीदास की भावधारा को उन्होंने अपने पदों द्वारा आगे प्रवाहित किया। राधा-कृष्ण के प्रेम की भावधारा प्रवाहित करने के कारण और जन-जीवन को प्रभावति करने के लिए उन्हें शैव होते हुए भी कृष्ण-भक्त कवि के रूप में ही मान्यता प्राप्त हुई। उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए उस युग में प्रचलित तीन भाषाओं में रचनाएँ प्रस्तुत कीं :

संस्कृत : गंगा वाक्यावली, पुरुष परीक्षा, भूपरिक्रमा आदि।

अवहट्ठ (हिंदी का पूर्व रूप) : कीर्तिलता, कीर्तिपताका।

मैथिली (लोकभाषा) : पदों की रचना।

सौंदर्य और प्रेम की प्रधानता होने के कारण पदों ने मानव-मन को अधिक प्रभावित किया।

नख-शिख सौंदय का एक दृश्य-चित्र उपस्थित है :

खने खने नन कोन अनुसरई।
खने खने वसन धूलि तनु भरई।

चउकि चलए खने खने भलु मंद।
मनमथ पाठ पहिल अनुबंध।

हिरदय मुकुल हेरि हेरि थोर।
खने आंचर दए खने होय भोर।

कुछ अन्य पंक्तियाँ भी प्रस्तुत की जा रही हैं जिन्होंने जन-मानस को मुग्ध किया :

कुच-भय कोमल-कोरक जल मुदिरहु, घट परिबेस हुतासें।
दाड़िम सिरिफल गगन बास करु, शंभु गरल कंठग्रासे।

उनके इष्टदेव शंकर होते हुए भी श्रृंगार प्रधान रचनाओं ने जनमानस को इतना अधिक प्रभावित किया कि उनके पद जन-जन के कंठ में बस गए और मैथिली लोकभाषा को जो प्रतिष्ठा मिली यह आज तक विद्यमान है।

5.5.2 अवधी का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास

जायसी पूर्व अवधी की परंपरा पर डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी का ग्रंथ 'प्रारंभिक हिंदी' शीर्षक से उपलब्ध है। अवधी भाषा पर पहला उल्लेखनीय कार्य डॉ. बाबूराम सक्सेना का 'अवधी का विकास' है।

'कोसल' अवध का प्राचीन नाम है अतएव इस भाषा को 'कोसली' या 'पूर्वी' की संज्ञा भी दी जाती है। 'बैसवाड़ी' इस क्षेत्र के प्रमुख बोली है। जो लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली और फतेहपुर में बोली जाती है। अवधी को मोटे रूप में तीन भागों में बाँट सकते हैं:

- पश्चिमी (खीरी, सीतापुर, लखनऊ, उन्नाव, फतेहपुर)
- केंद्रीय (बहराइच, बाराबंकी, रायबेरली)
- पूर्वी (गोंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, इलाहाबाद, जौनपुर, मिर्ज़ापुर का कुछ भाग)

यह वही भाषा है जिसमें गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' है जिसको आज अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है। भारत तथा विश्व की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। जायसी रचित महाकाव्य 'पदमावत' की रचना भी इस भाषा की हुई।

अवधी की भाषिक संरचना तथा रूप-रचना पर डॉ. ज्ञानशंकर पांडेय तथा डॉ. त्रिलोकीनाथ सिंह ने लखनऊ विश्वविद्यालय से कार्य सम्पन किए हैं। सीमावर्ती जिलों में अवधी समीपस्थ भाषाओं से प्रभावित हुई, जैसे

सीतापुर में कन्नौजी से

फतेहपुर में कन्नौजी से

इलाहाबाद के दक्षिण-पूवी भाग में भोजपुरी व बघेली से।

काव्य भाषा के रूप में अवधी के दो भेद हैं :

1. ठेठ अवधी
2. साहित्यिक अवधी।

ठेठ अवधी में सूफियों की काव्यधारा प्रवाहित हुई। प्रारंभ में इसको प्रतिष्ठित करने का श्रेय मुल्ला दाऊद को है। प्रथम साहित्यिक ग्रंथ 'चंदायन' है। वाचिक परंपरा में अवधी बहुत प्राचीन है। 'प्राकृत पैंगलम्' में पुरानी अवधी के रूप मिलते हैं।

अपभ्रंश में 'कहा' ग्रंथों की परंपरा प्राप्त होती है, जिसकी कुछ छवि 'चंदायन' में भी प्राप्त हुई:

> दाऊद कवि जो चाँदा गाई।
> जेइ रे सुना सो गर मुरझाई।।

(दाऊद कवि ने जो चाँदा गया उसे जिसने सुना वही वहाँ मूर्च्छित हो गया।)

चंदायन में दोहा-चौपाई की कड़बक शैली का प्रयोग मिलता है। चंदायन 'लोरिक' के संपूर्ण जीवन पर आधारित है।

जायसी ने 'पदमावत' में अपने पूर्व-रचित काव्य ग्रंथों - अखरावट, कहारनामा, चम्पावत - आदि का उल्लेख किया। अभी तक जायसी पूर्व कुतुबन कृत 'मृगावती' प्राप्त हुई है जिसका प्रकाशन हो चुका है। 'मृगावती' अपने समय में पर्याप्त लोकप्रिय रही। 'मृगावती' की भाषा सहज और स्पष्ट है, अलंकृत नहीं।

दूसरा प्रसिद्ध ग्रंथ मंझन कृत 'मधुमालती' है। मंझन की अवधी अधिक सरल है। कृति में विरह वर्णन प्रभावपूर्ण है।

जायसी रचित 'पदमावत' प्रेमाख्यानों की परंपरा में मूर्धन्य है। पदमावती को केंद्र में रखकर अनेक ग्रंथ लिखे गए। इस महाकाव्य में मसनवी शैली का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। सूफी कवियों ने भारतीय लोक-कथानकों को अवश्य लिया पर तसव्वुफ़ के आधार पर फ़ारसी की मसनवी शैली में रचना की। प्रेम की पीर ही उनकी साधना का मूल मंत्र रहा। भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर समन्वयात्मक दृष्टि का परिचय दिया है। भाषायी आधार ठेठ अवधी रहा। भाषा की दृष्टि से ये पंक्तियाँ विशिष्ट हैं:

> तुरकी अरबी हिंदुई भाषा जेती आहि।
> जोहि मँह मारग प्रेम कर सबै सराहै ताहि।

जायसी ने जनभाषा को विशेष महत्व दिया। सरल भाषा में गंभीर भाव व्यक्त किए हैं:

> मुहम्मद जीवन जल भरत रहँट घरी की रीति।
> घरी सो आई ज्यों भरी छरी जनम गा बीति।

स्थानीय प्रयोग और लोक जीवन की शब्दावली से भाषा पुष्ट हुई है। इन बिंबों की ओर संकेत करते हुए डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा है कि 'कवि ने इन बिंबों का चुनाव सामान्य भारतीय जनजीवन से किया है इसलिए भी उनका संप्रेषण बेजोड़ है।' उसमान कृत 'चित्रावली' भी 'पदमावत' की तरह है। नूर मुहम्मद के ग्रंथ 'इंद्रावली' और 'अनुराग बाँसुरी' हैं।

5.5.3 ब्रजभाषा का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास

उत्तर भारत की प्राय: सभी साहित्यिक भाषाएँ 'मध्यप्रदेश' की बोलियों का परिष्कृत रूप रही हैं।

मध्यदेश मूलत: गंगा-यमुना के मध्य का प्रदेश अपनी महान सांस्कृतिक परंपरा के लिए सदैव स्मरणीय रहा है। मूल शौरसैनी का बोली रूप 'ब्रज' ही इन जनबोलियों में से एक रही। ग्यारहवीं शती में मध्यदेश की जनभाषा के रूप में ब्रजभाषा का विकास हुआ। एक ओर वीरता और शौर्य के भावों से परिपुष्ट होकर नई शक्ति का संचार हुआ दूसरी ओर मध्य युग के भक्ति आंदोलन के प्रमुख माध्यम के रूप में इसको सम्मान मिला जिससे इसका स्वरूप अखिलभारतीय हो गया। अपनी पूर्वज भाषाओं को धरोहर के रूप में प्राप्त कर इसके वैभव में वृद्धि हुई।

इस विशाल मध्यदेश में नौ महाजनपद थे। इसी के अंतर्गत मत्स्य, शूरसेन, कुरु तथा पांचाल - इन चार जनपदों से बना भूभाग महत्वपूर्ण रहा है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार मनु के इस ब्रह्मर्षि देश का क्षेत्र वही है जो आज ब्रजभाषा का क्षेत्र है। ब्रजभाषा के क्षेत्र में आज यह भूभाग आता है :

- उत्तर प्रदेश के अलीगढ़, मथुरा, आगरा, बुलंदशहर (खुर्जा), एटा, मैनपुरी, बदायूँ तथा बरेली।
- हरियाणा प्रदेश के गुड़गाँव जिले की पूर्वी पट्टी।
- राजस्थान के भरतपुर, धौलपुर, करौली तथा जयपुर का पूर्वी भाग।
- मध्य प्रदेश में ग्वालियर का पश्चिमी भाग।

कन्नौजी वस्तुत: ब्रज का ही पूर्वी रूप है जबकि बुंदेली दक्षिणी रूप। इनको सम्मिलित कर लेने से यह क्षेत्र और अधिक विस्तृत हो जाता है।

ब्रजभाषा के उदय और विकास के अनेक उलझे हुए रूपों को लेकर 'सूर-पूर्व ब्रजभाषा' के विद्वान लेखक डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने कहा है - 'इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रजभाषा के विकास के पीछे सैकड़ों वर्षों की परंपरा छिपी है। पर इस परंपरा के विकास में आर्य-अनार्य कोल-द्रविड़ और न जाने कितने प्रकार के प्रभाव घुले-मिले हैं। आर्य भाषा को प्राचीन से नवीन तक विकसित होने में जितने सोपान पार करने पड़े हैं उन सबकी कुछ न कुछ विशेषता है। इन सबका संतुलित और आवश्यक दाय ब्रजभाषा को प्राप्त हुआ उनके निरंतर विकासशील तत्व इस भाषा के ढाँचे में प्रतिष्ठापित हुए। एक हजार ईस्वी के आसपास शौरसेनी अपभ्रंश की अपनी जन्मभूमि में ब्रजभाषा का उदय हुआ। उस समय उसके सिर पर साहित्यिक अपभ्रंश की छाया थी और रक्त में शौरसेनी भाषाओं की परंपरा और अन्य सामाजिक तथा सांस्कृतिक तत्वों का ओज और बल। पश्चिमी अपभ्रंश को एक प्रकार से ब्रजभाषा और हिंदुस्तानी की उनके पहले की ही पूर्वज कहना उचित है।'

हेमचन्द्र की 'देशीनाममाला' में भी अनेक ब्रजभाषा की शब्दावली (काहरो, कुंडय, कुल्लड़, गगरी, घग्घर) हैं। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने माना है कि 'पृथ्वीराज रासो मध्यकालीन ब्रजभाषा में ही लिखा गया है, पुरानी राजस्थानी में नहीं, जैसा कि साधारणतया इस विषय में माना जाता है।'

ब्रजभाषा में गेय पदों का प्रचलन 12-13 वीं शताब्दी से प्रारंभ हो गया था जो आज तक विद्यमान है। प्रारंभ में सामंती दरबारों में संगीत का सम्मान किया जाता था। संगीत का आंनद लेने के लिए गेय पदों की रचना अनुकूल और सहज प्रतीत होती है। ब्रजभाषा गेय पदों का जादू पूरब में पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक सबको सम्मोहित कर गया। 'ध्रुपद' के लिए ब्रजभाषा अनुकूल रही।

कृष्ण भक्ति संप्रदाय में निम्बार्क, वल्लभ, राधावल्लभ, चैतन्य, हरिदासी आदि सभी ने ब्रजभाषा में गेय पदों की रचना की जिनकी संख्या लाखों में है। आज भी सहस्रों हस्तलिखित ग्रंथ प्रकाश की बाट जोह रहे हैं।

भक्तिकाल के बाद तो रीतिकाल का संपूर्ण साहित्य ब्रजभाषा में ही है। आधुनिक काल में भारतेंदु और उनके परिवार के अधिकांश साहित्यकारों ने काव्य रचना ब्रजभाषा में की। बीसवीं शताब्दी के कवियों में सर्वश्री नवनीत हृषीकेश चतुर्वेदी, रत्नाकर, गोविंद चतुर्वेदी, रसाल, डॉ. जगदीश गुप्त आदि सैकड़ों कवियों ने काव्य रचना की। ब्रजभाषा के अखिल भारतीय महत्व के कारण सन 1676 ई. में ही ब्रजभाषा (भाखा) व्याकरण लिखा गया था। बाद में लल्लू जी लाल ने भी एक पुस्तक लिखी : General Principles of Inflections and Conjugation in the Braj Bhakha - 1811

ब्रजभाषा के भक्त कवि संपूर्ण भारत में हुए। गुजरात में दीर्घ परंपरा रही। नरसी मेहता की भाषा में पश्चिमी अपभ्रंश प्रकारांतर से ब्रजभाषा का प्रभाव रहा। अष्टछाप के कवि कृष्णदास गुजरात के थे। वल्लभ संप्रदाय की अष्टम शाखा ने इस भाषा का प्रचार प्रसार उत्तर-पश्चिम भारत में किया। संपूर्ण भारत को एकसूत्र में पिरोने का कार्य ब्रजभाषा ने संपन्न किया।

5.5.4 हिंदी की बोलियों में अंत:संबंध

एक भाषा की सभी बोलियों/उपभाषाओं में पारस्परिक बोधगम्यता रहती है। यदि कुछ बोलियों में पारस्परिक बोधगम्यता विद्यमान है तो बोलियाँ निश्चित रूप से किसी एक भाषा से संबंधित होंगी। परस्पर बोधगम्यता के लिए कुछ तत्व आवश्यक हैं :

- व्याकरणिक गठन में कुछ न कुछ समानता।
- जातीय समानता।
- विकास की दृष्टि से ऐतिहासिक समानता।

उपर्युक्त तत्वों में जितनी अधिक समानता होगी परस्पर बोधगम्यता उतनी अधिक रहेगी।

हिंदी की सभी उपभाषाएँ/बोलियाँ एक-दूसरे से इतनी गुँथी हुई हैं कि कभी-कभी यह पहचानना संभव नहीं होता कि पृथकता कितनी है। तुलसी कृत 'रामचरितमानस' इसका ज्वलंत उदाहरण है जो मूलतः 'अवधी' में लिखा गया है जिसमें ब्रजभाषा का पुट भी पर्याप्त है। यही कारण है कि 'रामचरितमानस' सर्वाधिक लोकप्रिय है। इसकी लोकप्रियता पर टिप्पणी करते हुए डॉ. कैलोग ने लिखा था:

"अब तक हिंदी के सभी वैयाकरणों ने उस पूरबी हिंदी की समान रूप से उपेक्षा की है, जिसका प्रतिनिधित्व तुलसीदास का रामायण करता है। यह अलग बात है कि उसमें पछाँह की बोली का भी मिश्रण हुआ है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि विश्व-व्यापी लोकप्रियता और जनता पर पड़े प्रभाव की दृष्टि से तुलसीदास के साथ कबीर...'' (हिंदी व्याकरण, (हिंदी पृ. 24)

'पृथ्वीराज रासो' की भाषा के अध्येता कभी अपभ्रंश की ओर, कभी राजस्थानी (डिंगल), तो कभी ब्रजभाषा (पिंगल) की ओर जाते हैं। स्पष्ट है कि कबीर 'पचमेली' या सधुक्कड़ी भाषा के प्रयोग के कारण ही इतने अधिक लोकप्रिय हुए जिसका झुकाव पश्चिमी हिंदी की ओर अधिक है। हिंदी भाषा के यह कुछ उदाहरण सिद्ध करते हैं कि पारस्परिक बोधगम्यता हिंदी की इन सब बोलियों में कितनी अधिक है।

हिंदी की उपभाषाओं/बोलियों में पारस्परिक संबंध को इस प्रकार भी समझ सकते हैं:

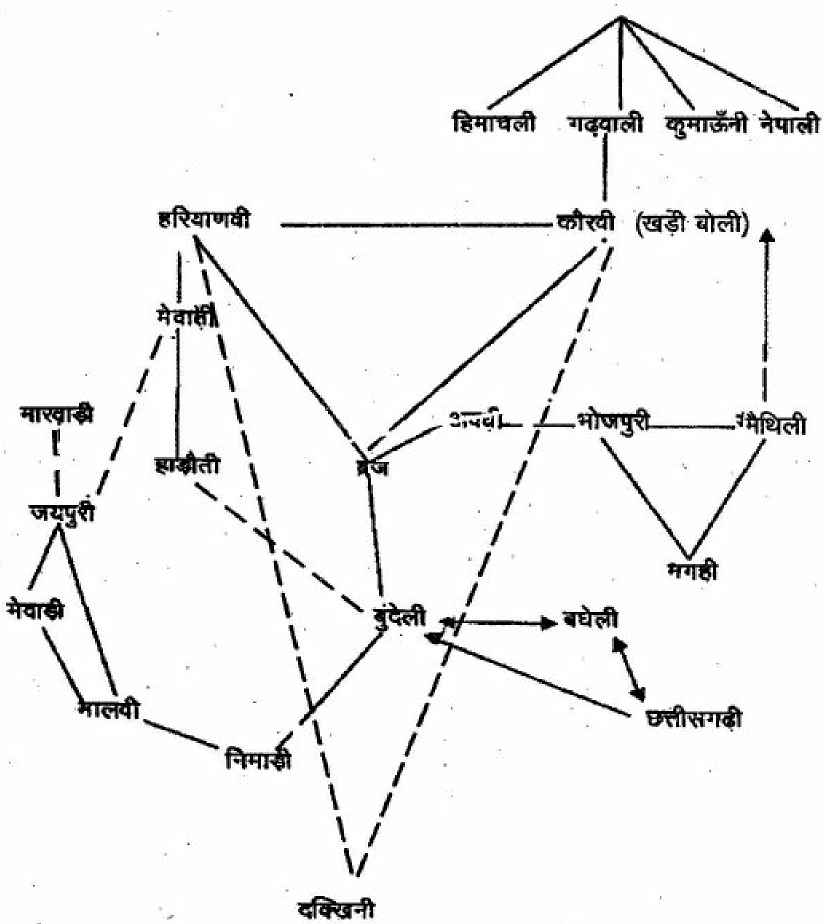

डॉ. ग्रियर्सन और डॉ. चटर्जी द्वारा दिए गए भारतीय आर्यभाषाओं के वर्गीकरण भी इस दिशा में पर्याप्त संकेत करते हैं।

5.6 खड़ी बोली का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सर्वप्रथम अपने ग्रंथ 'बुद्धचरित' (संवत् 1979) की भूमिका में कुछ ऐसे उद्धरण दिए जिनमें खड़ी बोली का पूर्व रूप भासित होता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि स्वयं उन्होंने इस महाकाव्य की रचना 'ब्रजभाषा' में की। कुछ बहुप्रचलित उदाहरण इस प्रकार हैं:

1. नवजल भरिया मग्गड़ गयाणि धड़क्कइ मेहु।

   (नये जल से भरा हुआ मार्ग, गगन में मेघ धड़कता है।)

   इसमें प्रयुक्त 'भरिया' क्रिया का भूतकालिक रूप है। इसी प्रकार के रूप कबीर में भी मिलते हैं:

   'टपका लगा फूटिया कुछ नहिं आया हाथ' (कबीर)

   आज खड़ी बोली में यही दोनों शब्द 'भरा' और 'फूटा' रूप में विद्यमान है।

2 महिवो ढह सचराहचरह जिण सिर दिह्णा पाय। (पुरानी हिंदी, पृ. 58)

   (पृथ्वी की पीठ पर जिसने सचराचर के सिर पर पाँव दिया।)

   दिन्हा = दिया

3. एक्के दुन्नय जे कया तेहि नीहरिय घरस्स।

   (एक दुर्नय (अनीति) जो किया उससे निकली घर से)

   कया = किया

4. भल्ला हुआ जु मारिआ, बहिणि महारा कंतु। (पुरानी हिंदी, पृ. 162)

   (भला हुआ, जो मारा गया, बहिन, हमारा कंत)

   मारिआ = मारा गया, भल्ला = भला, कंत = पति

इस प्रकार, हिंदी में काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली के पूर्व रूप का पता विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी से लगता है जिसके संबंध में कुछ विस्तार से 'आरंभिक हिंदी' में लिखा गया है। यही भाषा क्रमशः साहित्य में व्यापकता से छा गई। इस व्यापकता के कारण अन्य प्रदेशों के शब्द/रूप भी इसमें प्र्पाहित होते गए। ऊपर जिन अंशों को उद्धृत किया है, वे सभी टकसाली भाषा के हैं।

कहीं-कहीं एक ही पद्य खंड में खड़ी और ब्रज दोनों भाषाओं के रूप प्रतिभासित होते हैं:

चलिअ > चलया > चला (खड़ी बोली)

किअ > कियउ > कियो (ब्रज भाषा)

किसी समय इसके आगे की कड़ियाँ टूटी और बिखरी मिलती थीं लेकिन अब एक ओर पर्याप्त साहित्य मिल गया है दूसरी ओर अनेक शोध ग्रंथ प्रकाशित हो गए जिनसे नए तथ्य प्रकाश में आए हैं, साथ ही अनेक नवीन बातों का उद्‌घाटन हुआ है।

'खड़ी बोली' शब्द अवश्य उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ का है लेकिन इस भाषा का विकास ग्यारहवीं शताब्दी से होने लगा। समय-समय पर भिन्न-भिन्न नाम चलते रहे।

डॉ. कमल सिंह ने अपने शोध प्रबंध 'गोरखनाथ की भाषा का अध्ययन' में बिखरी हुई इन कड़ियों को जोड़कर खड़ी बोली-शृंखला को पूर्ण करने का प्रयास किया है। वे कड़ियाँ इस प्रकार हैं:

1. राउलवेल की टक्की
2. गोरखनाथ की बानियाँ
3. खुसरो की हिंदवी

4. कबीर की भाषा
5. हिंदवी-हिंदुई-ह्यूंदई
6. दक्खिनी हिंदी

इस प्रकार यह ग्यारहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक की खड़ी बोली के साहित्यिक स्वरूप की शृंखला बनी। बाद में जो विकास हुआ वह सर्वविदित है जिसकी चर्चा आगे की जाएगी।

पहली कड़ी:

राउलवेल पर तो डॉ. भाटिया ने शोध-कार्य किया है जिसकी विस्तार से चर्चा 'आरंभिक हिंदी' के अंतर्गत की जा चुकी है। 'टक्की' के संबंध में डॉ. माता प्रसाद गुप्त की टिप्पणी द्रष्टव्य है:

"यह वर्णन कुछ पंक्तियों का ही होते हुए भी खड़ी बोली का प्राचीनतम रूप हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है और इससे ज्ञात होता है कि खड़ी बोली दिल्ली-मेरठ की ही भाषा नहीं थी, वह टक्क की भी भाषा थी, जो पहले पंजाब और अब हरियाणा में प्रवेश पाता है, और इससे यह भी प्रमाणित होता है कि खड़ी बोली और साहित्य का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना उत्तर भारत की अन्य आधुनिक भाषाओं का है।"

वस्तुत: 'टक्की' अपभ्रंश कहाँ बोली जाती थी इसका स्पष्ट उल्लेख अभी तक नहीं मिला। 'अपभ्रंश' पर राहुल जी ने बहुत अधिक कार्य किया और आधुनिक भाषाओं से संबंध भी स्थापित किया। उनके मतानुसार तो अपभ्रंश का साहित्य हिंदी का साहित्य है। इसी कारण राहुल जी ने चौरासी में से इक्यासी सिद्धों - सरहपा, लुईपा, कण्हपा आदि के विपुल साहित्य से उदाहरण देकर सिद्ध किया कि यह साहित्य हिंदी साहित्य के आरंभिक काल का साहित्य है। अपभ्रंशों का बड़ी गहराई से उन्होंने अध्ययन किया और हेमानुशासन, प्राकृत चंद्रिका, कुवलयमाला से जिन चौबीस अपभ्रंशों को परिगणित किया उनमें 'टक्की' भी एक है जिससे विकसित 'मेवाड़ी' (?) को (प्रश्नवाचक चिह्न के साथ) माना है। हो सकता है, भविष्य में किसी कृति में और अधिक सूचना मिले।

दूसरी कड़ी :

हिंदी में गोरखनाथ का स्थान तो महत्वपपूर्ण है ही। मत-मतांतरों के होते हुए भी उनको सातवीं शती से बारहवीं शती के मध्य माना जाता है जिसके मध्यमान के रूप में दसवीं शताब्दी स्थिर होती है। डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी ने 'नाथ सम्प्रदाय' में इसको ही स्थिर किया। इस प्रकार राउलेवल और गोरख का साहित्य एक शती ग्यारहवीं का निश्चित होता है। हस्तलिखित प्रति पंद्रहवीं शताब्दी से पूर्व की नहीं मिलती है। काल निर्धारण तो मोटे तौर पर दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी है। क्षेत्र-निर्धारण की दृष्टि से डॉ. कमल सिंह के विचार महत्वपूर्ण हैं :

"आदिकालीन खड़ी बोली केवल दिल्ली-मेरठ की बोलियों पर ही आधारित नहीं थी। वस्तुत: वह पूर्वी पंजाब, मेवात, दिल्ली और पश्चिमी उत्तर प्रदेश की बोलियों के मिश्रण का एक परिनिष्ठ रूप है। ... निष्कर्ष निकलता है कि खड़ी बोली की पूर्व परंपरा में गोरख की भाषा दसवीं शती की ठहरती है।" (गोरखनाथ और उनका हिंदी साहित्य द्वितीय संस्करण, पृ. 13)।

गोरखनाथ की भाषा के स्वरूप पर कम मतभेद नहीं है। संस्कृत शब्दों के विकृत प्रयोग हैं, अनेक बोलियों का उसमें पुट है, फ़ारसी-अरबी की कुछ शब्दावली है और मोटे रूप में सधुक्कड़ी है। आचार्य किशोरी दास वाजपेयी ने सहज रूप से कह दिया कि 'भाषा उनकी ऐसी कि आज भी हम लोग सरलता से समझ लेते हैं।' यहाँ कुछ अंश नमूने की तौर पर दिए जा रहे है :

गगन मंडल[1] में ऊँधा कूबा[2] वहाँ अमृत[3] का बासा।
सगुरा होइ सु भरि भरि पीवै, निगुरा जाइ पियासा।

XXX

1 ब्रह्मरंध्र
2 सहस्रार दल
3 आत्म तत्व

सबदहिं ताला[1] सबदहिं कूँची[2], सबदहिं सबद जगाया।
सबदहिं सबद सूँ परचा[3] हूआ, सबदहिं सबद समाया[4]।

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि उनकी भाषा पूर्णतया खड़ी बोली हिंदी है।

गोरखनाथ ने सिद्धों से चली आ रही 'संधा' भाषा को अपनाया। अपनाई गई भाषा मंत्रणा 'स्वभाव वाली, गुह्य प्रकृति वाली, प्रतीकों से युक्त भाषा थी। 'संधा' का अर्थ माना गया - अभिसंधि रहित या अभिप्राययुक्त भाषा। मंत्र सिद्धांत में प्रत्येक शब्द अक्षर का गुह्य, दिव्य, परम अर्थ होता है। इस शैली का सबसे अधिक प्रयोग नाथ-सम्प्रदाय के पोषक एवं प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ ने किया है। डॉ. कमल सिंह ने चार भागों में - रूपकात्मक, प्रतीकात्मक, विरोधात्मक, अद्भुत रसात्मक, बाँट कर संधा भाषा का विस्तृत विवेचन किया है।

शब्दावली में प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग आध्यात्मिक रूपकों के लिए किया गया। आध्यात्मिक रूपकों की कुल संख्या 153 है। रूपक अथवा उपमा के माध्यम से स्पष्ट किए गए अंश पृथक हैं। यहाँ मात्र एक बहुप्रचलित उदाहरण दिया जा रहा है :

चींटा केरा नेत्र में गज्येन्द्र समाइला
गावडी के मुख में बाघला बिवाइला

(चींटी के नेत्र में हाथी गया। गाय के मुख में बाघ ब्या गया।)

स्पष्ट है कि चींटी = सूक्ष्म अध्यात्मिक स्वरूप
हाथी = स्थूल भौतिक रूप

अर्थ हुआ - जब जीव ब्रह्मरंध्र में ब्रह्मानूभूति प्राप्त करता है तो सूक्ष्म आध्यात्मिक स्वरूप में स्थूल भौतिक रूप समा जाता है।

ब्रज्रयानी सिद्धों से लेकर, गोरखनाथ और अन्य नाथ पंथियों तथा कबीर और उनके अनुयायियों तक में 'एक ही कविता प्रवाह चला आ रहा है' (राहुल)। विषय-वस्तु के साथ ही साथ इन संत कवियों ने अपनी पूर्ववर्ती शैली और प्रतीक योजनाओं को भी हू-ब-हू अपना लिया। कहीं-कहीं तो वाक्य और उपवाक्य तक समान मिल रहे हैं।

शेष कड़ियों - खुसरो, कबीर , हिंदुई तथा दक्खिनी का विवरण यथास्थान दे दिया गया है।

5 .7 उर्दू

जबाने उर्दू-ए-मुअल्ला

राजकाज में फ़ारसी भाषा का प्रयोग जब कम हो गया तो हिंदवी का फ़ारसी-युक्त रूप 'जबाने-उर्दू-ए-मुअल्ला' - शाही खेमे या दरबार की भाषा - एक प्रकार से बादशाही भाषा बनी जिसका अठारहवीं सदी में फ़ौज-शासन में प्रयोग किया जाने लगा। यह समय मुग़ल साम्राज्य का अंतिम समय कहा जा सकता है। मुहम्मद बाकर 'आगह' (1743-1805 ई.) की रचनाओं में इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग मिलता है। उनके अनुसार इस भाषा (भाका) उर्दू का प्रारंभ मुहम्मद शाह रंगीले के शासनकाल में हुआ। उन्होंने 'उर्दू की भाषा' (भाका) और 'दक्खिनी ज़बान' में इस प्रकार भेद किया :

> 'और इन सब रिसालों में शायरी नहीं किया हूँ, बल्कि साफ और सादा कहा हूँ और उर्दू के भाके में नहीं कहा क्या वास्ते कि रहने वाले यहाँ के (दक्षिणी) इस भाके से वाकिफ नहीं है। ऐ भाई यह रिसाले दक्खिनी ज़बान में है।'

उर्दू की उत्पत्ति के संबंध में पं. चन्द्रबली पांडेय ने शाह अब्दुल कादिर के विचार उद्धृत किए हैं। शाह जी ने कुरान शरीफ़ का अनुवाद किया और उसकी भाषा के संबंध में लिखा था:

1 परम तत्व को बंद करना
2 मूल तक शब्द द्वारा जाना
3 गुरु उपदेश
4 स्थूल शब्द में सूक्ष्म शब्द समाना

'अब कई बातें मालूम रखिए। अव्वल यह कि इस जगह तरजुमा लफ़्ज़बलफ़्ज ज़रूर नहीं, क्योंकि तरकीब हिंदी तरकीब अरबी से बहुत बईद है। ... दूसरे यह कि ज़बान रेख़ता नहीं बोली बल्कि हिंदी मुतारफ़ता अनाम को बेतकल्लुफ़ दरियाफ़्त हो।'

पांडेय जी के अनुसार शाह साहब ने 'रेख़ता' और 'हिंदी मुतारफ़' में भेद किया है। मौलाना अब्दुल हक़ ने हिंदी मुतारफ़ से वही ज़बान मुराद है जिसे आजकल हिंदुस्तानी से तबीर किया जाता है।' इसको ही डॉ. बेली ने उर्दू कहा है। उर्दू तुर्की शब्द है जिसका अर्थ है – लश्कर (छावनी)। प्रारंभ में मुग़ल और तुर्क छावनी में ही रहते थे। उनका दरबार तथा रनवास सब लश्कर में ही होता था।

बाग़ोबहार के लेखक मीर उम्मन ने इस संबंध में व्यक्त किया है:

'हक़ीक़त उर्दू की ज़बान को बुजुर्गों के मुँह से यूँ सुनी है कि दिल्ली शहर हिंदुओं के नज़दीक चौजुगी है उन्हीं के राजा, परजा, क़दीम से वहाँ रहते थे और अपनी भाखा बोलते थे।
... लश्कर का बाजार शहर में दाखिल हुआ। इस वास्ते शहर का बाज़ार उर्दू कहलाया।
... इकट्ठे होने से आपस में लेन-देन, सौदा सुल्फ़, सवाल जवाब करते-करते एक ज़बान उर्दू की मुक़र्रर हुई। ... और वहाँ के शहर को उर्दू-मुअल्ला खिताब दिया।' (बाग़ोबहार, भूमिका)
शम्शुलउलेमा मुहम्द हसन ने भी लिखा है कि 'उर्दू का दरख़्त अगर्चे संस्कृत और भाषा की ज़मीन में उगा, मगर फ़ारसी की हवा में सरसब्ज़ हुआ है।'

सैयद इंशा अल्लाह ने साफ़-साफ़ लिखा कि लाहौर, मुल्तान, आगरा, इलाहाबाद की वह प्रतिष्ठा नहीं है जो शाहजहानाबाद या दिल्ली की है जहाँ उर्दू का जन्म हुआ:

'शाहजहानाबाद में ख़ुशबयान लोगों ने एकमत होकर अन्य भाषाओं से दिलचस्प शब्दों को जुदा किया और कुछ शब्दों तथा वाक्यों में हेर-फेर करके दूसरी भाषाओं से भिन्न एक अलग नई भाषा ईजाद की और उसका नाम उर्दू रख दिया।' (दरिया-ए-लताफ़त)

उर्दू तो धीरे-धीरे आती है जिसको दाग़ साहब ने साफ़-साफ़ कह दिया:

> नहीं खेल है दाग़ चारों से कह दो,
> कि आती है उर्दू ज़बाँ आते आते।

यही कारण है कि इंशा साहब ने साफ़ कह दिया कि उसको ही मुस्तनद और सही उर्दू आएगी जो कुलीन-नजीब होगा जिसके माँ-बाप दिल्ली के निवासी हों। यह बात चुने हुए आदमियों के संबंध में ही है, स्वयं इंशा भी ठीक उर्दू के स्थान पर खड़ी बोली हिंदी की ओर झुक गए क्योंकि रची हुई ताज़ा ज़बान को ठीक से नहीं पचा सके।

कालांतर में दिल्ली में जो उर्दू-ए-मुअल्ला या उर्दू भाषा थी वही लखनऊ में पहुँचकर 'उर्दू' बन गई और हल्की होकर लखनऊ की मजलिसी बन गई। उधर मीर साहब ने जामा मसजिद के इर्द-गिर्द की भाषा को बहुत महत्व दिया है। सरलता की दृष्टि से 'उर्दू-ए-मुअल्ला' के स्थान पर 'ज़बान-ए-उर्दू' अथवा मात्र 'उर्दू' रह गई।

माना जाता है कि भाषा के अर्थ में 'उर्दू' का प्रयोग मुसहफ़ी ने किया जिनकी मृत्यु सन 1824 ई. में हुई:

> ख़ुदा रक्खे ज़बाँ हमने सुनी है मीर वो मिरज़ा की,
> कहें किस मुँह से हम ऐ 'मुसहफ़ी' उर्दू हमारी है।

इससे स्पष्ट है कि मीर सौदा जिस ज़बान (भाषा) में लिखते थे वही उर्दू कहलायी जिसका उल्लेख सैयद सुलैमान नदवी ने किया है:

"चुनांचः लफ़्ज़ 'उर्दू' ज़बान के मानी में, देहली के अलावा किसी सूबा की ज़बान पर इतलाक नहीं पाया है। मीर तकी मीर की तहरीरी सनद में जब उसका नाम पहली दफ़ा आया तो देहली की ज़बान के लिए आया है, मगर फिर भी वह इस्तेलाह के तौर पर नहीं, बल्कि लुग़त के तौर पर आया है, यानी मीर ने 'उर्दू ज़बान' नहीं कहा, बल्कि 'उर्दू की ज़बान' कहा है।'' (द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ)

यही भाषा विकसित होती गई और हिंदी की शैली के रूप में स्वीकृत होते हुए भी संविधान की अष्टम अनुसूची में सम्मिलित हुई।

5.7.1 दक्खिनी

भारत के दक्षिण में ले जाई गई दिल्ली-हरियाणा की बोली ही 'दक्खिनी' अथवा 'दकनी' कहलायी। इसका विकास ऐतिहासिक कारणों से 14वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य बहमनी, कुतुबशाही और आदिलशाही जैसे विभिन्न राज्यों में होता रहा जिसके केंद्र बीजापुर, गोलकुंडा, गुलबर्गा, बीदर आदि बने। शाही दफ़्तरों में इसको सरकारी ज़बान का दर्जा भी दिया गया। इसकी उत्पत्ति के संबंध में उर्दू व दकनी के विद्वान वरिष्ठ भाषाविद डॉ. मसूद हुसैन खाँ ने इस प्रकार लिखा है:

> 'कदीम (प्राचीन) दक्खिनी को अगर किसी बोली से गहरी निस्बत हो सकती है तो वह दिल्ली के नवाह (समीप) की दो बोलियाँ यानी खड़ी और हरियाणा हैं। जिनकी कदामत पर शुबह करना तारीखी नुक्ते-नज़र (ऐतिहासिक दृष्टिकोण) से सरासर ग़लत है। हमारे ख्याल से दकनी की तमाम खसूसियात नवाहे दिल्ली के पास के इज़लाह की बोलियों से की जा सकती है।' (अलीगढ़ तारीख-अदब उर्दू)

दक्खिनी भाषा का मूलाधार चौदहवीं-पन्द्रहवीं शती की वह खड़ी बोली है जो अपने मूल रूप में मेरठ, मुरादाबाद, हरियाणा में बोली जाती थी। दक्षिण और दक्खन एक होते हुए भी भाषापरक अर्थ में 'दक्खिनी' या 'दकनी' ही प्रयोग में आता है। मुसलमानों के आगमन के बाद में 'दक्खिनी' उस भूभाग के लिए प्रयुक्त होने लगा जो किसी समय दक्षिणापथ कहा जाता था। खानदेश और बरार को छोड़कर शेष महाराष्ट्र दक्खिन (Deccan) कहलाने लगा। गोदावरी और कृष्णा के मध्य का प्रदेश दक्खिन कहलाया। अकबर-काल में दक्खिनी सीमाओं में परिवर्तन हुआ। औरंगज़ेब ने छह प्रदेशों को मिलाकर 'दक्खिन' की रचना की - बरार, खानदेश, औरंगाबाद, हैदराबाद, मुहम्मदाबाद तथा बीजापुर।

'दक्खिनी' साहित्य की सर्जना महाराष्ट्र, कर्नाटक और तेलंगाना आदि में हैदराबाद को केंद्र मानकर की गई। 'दक्खिनी' भाषा के अर्थ में बहुत बाद का नाम है, पुराने नाम तो हिंदुई और हिंदवी हैं। 'दक्खिनी' हिंदी साहित्य की ऐसी कड़ी है जिसको अब नकारा नहीं जा सकता। इस प्रदेश के एक कवि वजही ने इस प्रदेश के बारे में लिखा है:

> दखन-सा नहीं ठार संसार में।
> निपज (उपज) फ़ाजिला (निपुण) का है इस ठार में।।
> दखन है नगीना अँगूठी है जग।
> अँगूठी कूँ हरमत नगीना है लग।।
> दखिन मुल्क कहन धन अजब साज है।
> कि सब मुल्क सिर होर दखन ताज है।

(कुतुब मुश्तरी, पृ. 179)

वजही 'मर्सिया' लिखने में निपुण थे। दुख-दारुण से घिरी नारी का चित्र द्रष्टव्य है:

> काली न गोरी चीर बंदी बैठी है ज्यों कालिंदी।
> काले लटो काले भुआँ काले गले में गलसरी।।

'हिंदी' की तरह 'दक्खिनी' का प्रयोग दो अर्थों में होता है-

(1) दक्षिण निवासी मुसलमान
(2) दकनी जबान

हाब्सन-जाब्सन के अनुसार दकनी हिंदुस्तान की ऐसी विचित्र ज़बान/भाषा है जिसको मुसलमान बोलता है। इसका पहली बार प्रयोग सन् 1516 में किया गया जिसमें इस भाषा को देश की स्वाभाविक भाषा स्वीकार किया गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि पंद्रहवीं शताब्दी के अंत तक इसका भाषिक स्वरूप स्थिर हो गया था:

"Deccany, adj. also used as subst. Properly dakhini, dakkhini, dakhni, coming from the deccan. Also the very peculiar dialect of Hindustani spoken by such people.' (Hobson Jobson, 1903, p.302)

1516. 'The Decani language, which is the natural language of the country.' (A Description of the courts of E. Africa & Malabar in 16th century.)
डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने स्वीकार किया है :

> "पश्चिमी हिंदी की ओकारांत बोलियों से एक प्रचलित सार्वदेशिक भाषा का जन्म हुआ, जिस पर आद्य पंजाबी का भी थोड़ा-बहुत प्रभाव पड़ा। सोलहवीं शताब्दी में प्रथम बार दक्कन में इसके एक रूप का साहित्य के लिए उपयोग हुआ जो ब्रजभाषा से मिलकर उत्तरी भारत की, भविष्य की साहित्यिक भाषा का प्रारंभिक स्वरूप बना। इसी सार्वदेशिक भाषा के दकनी रूप का दक्षिण में गोलकुंडा आदि स्थानों में काव्य रचना के लिए होते उपयोग का आदर्श सामने रखते दिल्ली के मुसलमानों ने भी सर्वप्रथम इसे फारसी लिपी में लिखकर इसका काव्य के लिए व्यवहार किया"। (आर्यभाषा और हिंदी, पृ. 217)

दक्खिन में पंद्रहवीं शताब्दी में इसका फैलना प्रारंभ हो गया था। जब उत्तर भारत में फ़ारसी का प्रभुत्व बना रहा तो दक्षिण में 'दकनी' का। हिंदी ने जो कदम दक्खिन में जमाए उन्हें फ़ारसी हिला न सकी। सुप्रसिद्ध इतिहासकार फरिश्ता ने लिखा है कि बहमनी राज्य के दफ़्तरों में हिंदी ज़बान प्रचलित थी और सल्तनत ने उसे सरकारी ज़बान् का पद दे रखा था। बहमनी राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने के बाद हिंदी का यह पद उत्तराधिकार में रियासतों ने कायम रखा। (डॉ. बाबूराम सक्सेना - दक्खिनी हिंदी पृ. 33-34)

'दकनी' का एक और रूप दक्षिण में मैसूर तथा केरल में भी विकसित हो गया। तलश्शेरी के कासिम खाँ के एक तिल्लाना गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

> बजे नक्कारे दनि के सारे
> धूंध चनाघन घनघनाना
> तबल पै थापा पड़े पिपड़धक
> गिडघन गिडघन गिडघनना
> अब रमझुम रमझुम नींदनिया से
> हुमजुम हो जाए हुशियार।

डॉ. जी. गोपीनाथ ने अपने शोध ग्रंथ में केरल की दकनी पर भी चर्चा की है। केरल के ही अन्य विद्वान डॉ. वी.पी. कुंजमेत्तर ने दकनी के ग्रंथों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। फख़्रुदीन निजामी कृत 'मसनवी कदमराव पदमराव' के संपादन में (संपादक) डॉ. कुंज मेत्तर ने इस ग्रंथ में आए हरियाणवी, पंजाबी, ब्रज, अवधी, राजस्थानी तथा द्रविड़ तत्वों पर विस्तार से लिखा है। जिस प्रदेश में दकनी फली-फूली उसपर प्रदेश की भाषा तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, मराठी का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इस दिशा में दक्षिण के सुधी विद्वान डॉ. एन.पी. कुट्टन पिल्लै ने विस्तृत अध्ययन किया है। उनके अनुसार, 'बोलचाल की दक्खिनी गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक के अतिरिक्त तमिलनाडु तथा केरल में भी सुनी जाती है। इस पर क्षेत्रीय भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा है। इसलिए क्षेत्रीय आधार पर भेद-उपभेद हैं। ... उसने (खड़ी बोली) गुजराती तथा मराठी के कई तत्वों को कालांतर में आत्मसात किया। इन तत्वों को उसने इस ढंग से आत्मसात किया वे दक्खिनी के निजी गुण बन गए। लेकिन दक्खिनी ने जब अपनी सीमा का विस्तार किया तब उस पर तेलुगु, तमिल, मलयालम का भी प्रभाव पड़ा। दक्खिनी हिंदी के प्रारंभिक ग्रंथों में तत्सम तथा अर्ध-तत्सम शब्दों की ओर झुकाव स्पष्ट देखा जा सकता है, पर मध्यकाल में यह भाषा फ़ारसीकरण की ओर धीरे-धीरे झुकती-सी दिखाई देती है।' (भारतीय भाषाओं का दक्खिनी पर प्रभाव (अध्ययन और अनुशीलन), पृ. 224)

दक्खिनी पर जिन अन्य विद्वानों ने विशेष कार्य किया है, उनमें से सर्वश्री डा. श्रीराम शर्मा, डॉ. भालचंद्र राव तैलंग तथा डॉ. परमानंद पांचाल मुख्य हैं।

इस भाषा को कुछ अन्य नामों से भी पुकारा जाता है - गोसाधि भाषा, तुलुक भाषा (मुसलमानों की भाषा), पट्टाणि भाषा (पठानों की भाषा), हिंदी भाका, हिंदवी, गूजरी, रेखता, भाका आदि।

मीराजी उसको हिंदी या भाका (भाखा) कहते थे तो वजही उसे 'दखनी' कहते थे। वैसे 'हिंदी' शब्द का प्रयोग भी दक्खिनी' के गद्य-पद्य लेखकों ने खूब किया है :

- यों देखत हिंदी बोल (शाह मीराजी - 1475 ई.)
- ऐब न राखे हिंदी बोल (शाह बुहरानुद्दीन - 1582)
- हिंदी जबान सो। (मुल्ला वजही : सबरस)
- मैं इसको दर हिंदी जबां, इस वास्ते कहने लगा।

मिर्जा खां, बरकुल्ला प्रेमी, खकी खाँ हिंदवी (जुनूनी - 1690 ई.) का प्रयोग भी करते हैं। सूफ़ी कवि नूर मुहम्मद (सन् 1773 ई.) ने तो स्पष्ट शब्दों में लिखा है :

> हिंदु मग पर पाँव न राख्यौ।
> का जो बहुतै हिंदी भाख्यौ।

इससे यह व्यंजित होता हैं कि उसने हिंदू मत को नहीं अपनाया। उससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता है यदि मैं हिंदी में भाखूँ (वर्णन करूँ) - फ़ारसी-अरबी में नहीं।

दक्खिनी के कवि 'बहरी' भी 'मन लगन' में अपनी भाषा को हिंदी ही बताते हैं :

> हिंदी तो जबां च है हमारी
> कहने न लग हमन कूं भारी।

"इसका माना तहकीक खुदा मिन्नत किया है, मुसलमानां होर मुसलमानां की औरतां को तुमारे तनां में मुहम्मद का नूर रखिया हूँ सो तुमीं बूझ होर जानो हरेक पराई पछांत करना वाजिब है, ये बड़ी न्यामत है।" (मिराजुल लाशिकीन)

"दुवा मांगने का तरीका यों है कि हातां दोनो दराज करे। खंदयां के मुकाबिल होर दोनों हातां के दरमियानी खड्डा अछे होर दुआ मांगे बाद अज भू पर सूं हातां उतारे यो सब सुन्नत है।" (अहका मुस्सलात)

दक्खिनी की भाषागत अन्य विशेषताओं के लिए डॉ. भाटिया की पुस्तक 'ब्रजभाषा और खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन' (पृ. 66.67) का अवलोकन करें।

5.7.2 प्रमुख विशेषताएँ

1. हिंदी के बोलचाल के सभी स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ दक्खिनी में भी मौजूद रहे। डॉ. कादरी के अनुसार उकार और ओकार के बीच का स्वर दक्खिनी में और सुनाई पड़ता है जो उत्तर भारत की बोलचाल की हिंदी में नहीं सुनाई पड़ता। स्टैंडर्ड 'पट्ठा' शब्द का दक्खिनी रूप 'पुट्ठा' है जिसका उकार न 'उ' ही है न 'ओ' ही।

2. जब दो पास-पास के अक्षरों में दीर्घ स्वर हो तो पहले का उच्चारण कभी ह्रस्व हो जाता है।

3. सभी व्यंजन भी दक्खिनी में मिलते हैं, शिक्षित लोगों में ख़, ज़, ग़, फ़, क़ भी उच्चरित हो जाते हैं।

4. उत्तर भारत की हिंदी में जहाँ दो मूर्धन्य ध्वनियां पास-पास आती हैं, वहीं दक्खिनी में पहली मूर्धन्य ध्वनि दंत्य में बदल जाती है :

तुटे (टुटे)	दाट (डाट)
थंडी (ठंडी)	दबटना (डपटना)

   इस प्रवृत्ति को हम आज की मराठी भाषा में भी देख सकते हैं। तुटणे (टूटना), थंडा (ठंडा) मराठी के शब्द हैं।

5. दक्खिनी में प्रथम व्यंजन ह्रस्व हो जाता है, तो द्वितीय द्वित्व में परिवर्तित :
सुन्ना (सोना)
चुन्ना (चूना)

6. दक्खिनी में महाप्राण ध्वनियाँ बहुधा अल्पप्राण मिलती है :

चाक (चाख), रकते (रखते), समज (समझ), पिचें (पीछे), हात (हाथ), सात (साथ), अदिक (अधिक), जीब (जीभ), पिनाना (पिन्हाना), कुमलाते (कुम्हलाते)। देखें मराठी हात, समज।

7. जैसे हिंदी में मध्य का लिखा तो जाता है, पर स्वर के रूप मे उच्चरित होता है, पर दक्खिनी में वर्तनी में छोड़ दिया जाता है : कता (कहता), कते (कहते), ठैरते (ठहरते) आदि।

हिंदी में गद्य साहित्य के विकास के अध्येता डॉ. प्रेमप्रकाश गौतम ने 'दक्खिनी' के गद्य साहित्य पर भी अध्ययन किया है। गेसूदराज़ की कृतियों का उल्लेख किया जा चुका है। गेसूदराज बंदानवाज़ की अन्य प्रमुख रचनाओं का उल्लेख किया है, जैसे - हिदायतनामा, शिकारनामा और तर्जुमावजूदुल आरिफ़िन। उनके अनुसार :

"भक्तिकालीन दक्खनी गद्य की अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ हैं - बुरहानुद्दीन जानम कृत 'कल्पितुल हकायक (1580 ई. के लगभग), मौला अब्दुल्ला कृत 'अहका मुस्सलात' (1623 ई.), मुल्ला वजही का 'सबरस' (1636) (सबरस तथा अन्य कृतियों से नमूने के उद्धरण दिए जा चुके हैं!) अब्दुस्समद लिखित 'तफ़सीर बहावी' (1640 के लगभग)। इसमें प्रथम रचना प्रश्नोत्तर शैली में लिखित सूफ़ी सिद्धांत विषयक, द्वितीय रचना इस्लाम विषयक, तृतीय (सबरस) अन्योक्ति पद्धति की सूफ़ी प्रेमकथा और चौथी कुरान की व्याख्या है।

पुराना दक्खिनी गद्य अधिकतर सूफ़ी और इस्लामी संतों पर लिखा गया है और अधिकांश में अललित, धार्मिक तथा उपदेशात्मक है। उल्लिखित रचनाओं में 'सबरस' में ललित गद्य प्रयुक्त है। अनेक स्थलों पर इस ग्रंथ का गद्य सानुप्रास है।''

(भक्तिकालीन गद्य साहित्य (हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 262)

इस प्रकार 'दक्खिनी' में लिखा पद्य-गद्य की रचनाओं का साहित्यिक दृष्टि से मूल्य चाहे सीमित हो पर हिंदी - खड़ी बोली हिंदी - के विकास में उसका अप्रतिम योगदान है, वह भी हिंदी के प्रारंभिक स्वरूप को जानने के लिए।

5.7.3 उर्दू का विकास

उर्दू का दरख्ते संस्कृत और भाषा (ब्रज) की जमीन में उगा, मगर फ़ारसी की हवा में सरसब्ज हुआ है।' (शम्शुल उलेमा मुहम्मद हसन)

इससे स्पष्ट होता है कि मूल में उर्दू शाही दरबार तक सीमित रही पर कालांतर में वह जन-साधारण की आम बोलचाल की भाषा हो गई। हिंदी के साथ-साथ हिंदी की शैली के रूप में विकसित होते हुए भी अरबी-फ़ारसी की शब्दावली तथा मुहावरेदारी की ओर झुकाव के कारण पृथक से विकसित हो गई फलत: संविधान की अष्टम अनुसूची में इसको स्थान मिला।

दिल्ली के साथ-साथ लखनऊ, अलीगढ़, हैदराबाद इसके प्रमुख केंद्र हो गए। मध्यकाल तक उर्दू पद्य की मुख्य साहित्यिक विधाएँ - ग़ज़ल, मसनवी और कसीदा सुव्यवस्थित हो चुकी थीं। अठारहवीं शती के उत्तरकाल में कुछ शायरों - दर्द (मृत्यु 1786), सौदा (म. 1781), मीर हसन (1786), मीर (म. 1810) प्रमुख रहे। अनेक स्थानों पर उर्दू के शायरों को राज्याश्रय प्राप्त हुआ। मर्सिया (शोकगीत) के लेखन में विशेष प्रगति हुई।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में सुप्रसिद्ध कवि नजीर अकबराबादी हैं, जिनको हिंदी, उर्दू दोनों का माना जाता है। उनकी संपूर्ण रचनाएँ 'नजीर ग्रंथावली' (संपा. नजीर मुहम्मद) के रूप में अब

प्रकाशित हैं। सन 1857 में जब दिल्ली का वैभव समाप्त हो रहा था तो उसके पूर्व तीन सुप्रसिद्ध शायर हुए – ज़ौक, मोमिन तथा ग़ालिब। ग़ालिब में सर्वाधिक संतुलित भावबोध और दर्शन की झलक मिलती है :

दुनिया मेरे आगे बच्चों का खेल है,
रात दिन मेरे आगे तमाशा होता रहता है,

उनके एक शेर का अनुवाद इस प्रकार है :

आयु रूपी घोड़ा दौड़ रहा है, देखिए कहाँ थमता है
न बाग पर हाथ है और न पाँव रकाब में है।

उर्दू को आगे बढ़ाने में 'इकबाल' का महत्वपूर्ण योगदान रहा। 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदुस्ताँ हमारा' पंक्ति पर किस भारतीय को गर्व नहीं। सामासिक संस्कृति का सच्चा प्रतिनिधित्व इसके शायरों में मिलता है। 'सुबहे आज़ादी' पर फ़ैज की यह पंक्ति प्रसिद्ध हुई :

वह इंतजार था जिसका यह वह सहर तो नहीं।

जाँनिसार अख़्तर को अवश्य भविष्य के प्रति आशा बनी रही।

कुछ हो, उम्मीद की सीने में झलक आज भी है।
दिल में बुझते हुए शोले की लपक आज भी है।

साहिर, कैफी, मज़ाज, जमील, जोश, जिगर, फ़िराक और फ़ैज के नाम उल्लेखनीय हैं। फ़िराक साहब को ज्ञानपीठ सम्मान भी प्राप्त हुआ। प्रगतिशील कवियों में सरदार जाफ़री, साहिर लुधियानवी अर्श, आले अहमद सुरूर, कैफी आज़मी, गुलाम रब्बानी ताबां, सागर निजामी, जगन्नाथ आज़ाद, आनंद नारायण मुल्ला प्रमुख हैं। आज जिनकी धूम है उनमें से शहरयार, वहीद अख़्तर, काज़ी सलीम के नाम उल्लेखनीय हैं। नए ग़ज़लकारों में बशीर बद्र लोकप्रिय हुए हैं।

गद्य में दकिनी में लिखी वजही की कृति 'सबरस' – दिल और सौंदर्य की कहानी बहुत पहले ही लिखी गई थी। फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के बाद मीर अम्मन के 'बाग-ओ-बहार', 'चहार दर्वेश' (चार भिक्षुओं की कहानी) 1803 ई. सरस शैली में लिखी गई।

आगे चलकर सर सैयद अहमद, हाली, आज़ाद, नजीर आदि ने उर्दू गद्य के निर्माण में उल्लेखनीय कार्य किया। साहित्य से इतर अन्य विषयों की पुस्तकें भी उर्दू गद्य में लिखी गईं। गालिब द्वारा अपने दोस्तों और शिष्यों को लिखे गए पत्र भी सरल उर्दू में हैं जिनसे पत्र-साहित्य समृद्ध हुआ। बीसवीं शताब्दी में हाली, मुहम्मद हुसैन आज़ाद ने यद्यपि शायरी की पर उर्दू गद्य को शैली भी प्रदान की।

कथा साहित्य में हिंदी के सुप्रसिद्ध कथाकार प्रेमचंद ने भी उर्दू में लिखना प्रारंभ किया था। आज़ादी के बाद विभाजन की पृष्ठभूमि पर पर्याप्त (गद्य में) साहित्य लिखा गया। प्रेमचंद के बाद आज़ादी से पहले के लेखकों में सज्जाद जहीर, मंटो, अजीज़, अहमद, कृश्न चन्दर, इस्मत चुग़ताई के उपन्यासों की धूम रही। सर्वाधिक पढ़े जाने वाले लेखकों में कृश्न चन्दर का नाम लिया जा सकता है जिनके 'शिकस्त' में कश्मीर की प्राकृतिक शोभा तथा 'जब खेत जागे' में तेलंगाना के किसानों के विद्रोह के स्वर हैं। उनकी कृति 'एक गधे की आत्मकथा' व्यंग्य प्रधान है। कुर्रतुल एन हैदर के उपन्यासों में विभाजन प्रभावित ज़मींदार वर्ग की नौजवान पीढ़ी की तबाही का चित्रण है। तीन बृहद उपन्यासों – 'लहू के फूल' (हयात उल्ला अंसारी), 'उदास नस्लें' (अब्दुल्ला हुसैन), तथा 'खुदा की बस्ती' (शौकत सिद्दीकी) – में ऐतिहासिक चेतना है। 'लहू के फूल' में भारतीय समाज और राजनीति की उथल-पुथल है। रज़िया सज्जाद ज़हीर के उपन्यासों – अल्लाह मेघ दे, सरेशाम आदि में श्रमजीवी वर्ग प्रधान है। लघु उपन्यास भी लिखे गए।

आत्मकथा विधा में ऐजाज हुसैन की 'मेरी दुनिया' (सन 1965) की धूम रही। उपन्यासकारों ने कहानियाँ भी पर्याप्त लिखीं जिनमें मंटो, कृश्न चंदर, राजेंद्र सिंह बेदी, ख्वाजा अहमद अब्बास,

कुर्रतुल-एन-हैदर, काज़ी अब्दुल सत्तार आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। नए लेखकों में असगर वज़ाहत ने कई नए प्रयोग किए हैं। हंसराज रहबर, अश्क, देवेंद्र सत्यार्थी ने उर्दू-हिंदी दोनों भाषाओं में पर्याप्त लिखा। उर्दू में नाटक भी पर्याप्त लिखे गए। डॉ. मोहम्मद हसन के 'मीर तक़ी मीर' और 'नज़ीर अकबराबादी' में कवियों के जीवन संघर्ष की गाथा है।

आज उर्दू जम्मू-कश्मीर की राजभाषा है, आंध्र प्रदेश, बिहार आदि राज्यों की द्वितीय राजभाषा है। अब तक तीन साहित्यकार ज्ञानपीठ से सम्मानित हो चुके हैं। उर्दू भारत के संविधान की अष्टम अनुसूची में भारतीय भाषाओं में शामिल है।

5.7.4 रेख़्ता

रेख़्ता हिंदी की वह शैली कहलाई जिसमे अरबी-फारसी शब्दों का सम्मिश्रण हो। रेख़्ता उर्दू का पर्यायवाची नहीं। रेख़्ता की व्युत्पति के संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ मत इस प्रकार हैं :

रेख़्ता : फारसी रेख़तन = छिड़कना

रेख़्ता : मुख़्तलिफ़ ज़बानों के अल्फ़ाज़ से (विभिन्न भाषाओं के शब्दों से) भाषा को रेख़्ता-पुष्ट या अलंकृत किया गया हो, जैसे - ईंट की दीवार को चूने या सीमेंट के प्लास्टर से पायदारी और हमवारी मज़बूती और सजावट के लिए रेख़्ता करते हैं। (आबेहयात)

रेख़्ता बमानी गिरे हुए। जो ज़बान अपनी असलियत से गिर जाए। (मुंशी दुर्गा प्रसाद)

विभिन्न अंग्रेज़ विद्वानों ने इसको इस प्रकार परिभाषित किया :

- The Hindustani Language (being mixed one) is called Rekhta. (बाटे)

Hindustani verse written in the tones and idioms of women with peculiar sentiments and characterstics. (फैलन)

'हिंदी रेख़्ता' का प्रयोग विशेष महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार हिंदुस्तानी आज हिंदी और उर्दू के बीच का चीज़ समझी जाती है, उसी प्रकार उस समय रेख़्ता बीच की भाषा समझी जाती थी। रेख़्ता उर्दू नहीं चाहे, व्यवहार में उर्दू का साथ देती रहे। फोर्ट विलियम कॉलेज के मुंशियों को सलाह दी गई कि वे ठेठ हिंदुस्तानी, खड़ी बोली, "हिंदी रेख़्ता में लिखना शुरू करें। इसी से साहबों का काम चलेगा।"

साहिब (जान गिलक्राइस्ट) ने लल्लूलाल जी से कहा कि ब्रजभाषा में कोई अच्छी कहानी हो, उसे रेख़्ते की बोली में कहो।

मीर का मशहूर शेर है :

> मजबूत कैसे कैसे कहे रेख़ते वाले,
> समझा न कोई मेरी ज़बाँ इस दियार में।

सौदा ने मज़हर को टोका था : (भाका) (भाखा) ब्रजभाषा से प्रेम था)

> मज़हर का शेर फ़ारसी और रेख़्ते के बीच,
> सौदा यकीन जान कि रोड़ा है बाट का
> आगाह फ़ारसी तो कहें उसको रेख़्ता
> वाक़िफ़ जो रेख़ते के ज़रा होवे ठाट का।

आज के संदर्भ अब इस शब्द (रेख़्ता) का प्रयोग नहीं किया जाता है।

5.8 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि हिंदी साहित्य के आदिकाल में ही 'पुरानी हिंदी' नाम से खड़ी बोली का अस्तित्व था और आदिकाल के रोडा कृत राउरवेल और अमीर खुसरो की रचनाओं में आधुनिक खड़ी बोली का पुट मिलता है। उस समय पूर्व में विद्यापति मैथिली में लेखन कर रहे थे और पश्चिम में डिंगल भाषा में साहित्य रचना हो रही थी। उन दोनों के साथ हिंदवी या हिंदुई के नाम से खड़ी बोली का साहित्यिक रूप प्रचलन में आया जिसमें मुख्य रूप से अमीर खुसरो का साहित्य दिखाई पड़ता है। लेकिन हिंदवी या हिंदुई केवल खड़ी बोली का रूप नहीं बल्कि यह खड़ी बोली के आधार पर निर्मित होने वाली उर्दू भाषा का प्रमुख रूप है जिसमें कई प्रमुख लेखकों ने साहित्य रचना की। प्राकृत पैंगलम में भी हमें हिंदी भाषा के प्रमुख रूप के नमूने प्राप्त होते हैं।

खड़ी बोली का समय वही है जो हिंदी की अन्य बोलियों का है। यद्यपि इसमें अमीर खुसरो और कबीरदास जैसे प्रख्यात कवियों नें साहित्य सृजन किया, खड़ी बोली मध्यकाल की प्रमुख साहित्यिक भाषा नहीं बन पाई। तुलसीदास और सूफ़ी काव्यधारा ने अवधी भाषा का आश्रय लिया जबकि कृष्ण भक्ति साहित्य और रीतिकालीन साहित्य में ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया। इस संदर्भ में खड़ी बोली साहित्य सृजन का माध्यम नहीं बन पाईं

इसी युग में उर्दू भाषा का विकासक्रम शुरू हुआ जो दिल्ली से चलकर हैदराबाद पहुँची और दक्षिण में दक्खिनी के नाम से स्थापित हुई। दूसरे शब्दों में, हम यह कह सकते हैं कि प्रमुख उर्दू भाषा वास्तव में खड़ी बोली का ही रूप था, जिसमें अरबी-फारसी शब्दों की बहुलता दिखाई देती है। दक्खिनी फिर जब उत्तर में आई तो वह रेख्ता कहलाई और दिल्ली तथा लखनऊ में इसमें साहित्य सृजन हुआ। रेख्ता वास्तव में उर्दू और खड़ी-बोली हिंदी के बीच का सेतु है। उर्दू अलग साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई और इस कारण खड़ी बोली हिंदी ने भी मानक हिंदी के रूप में अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित किया। यही कारण है कि केवल आधुनिक काल में हम खड़ी बोली में साहित्य सृजन का व्यापक विस्तार देखते हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि खड़ी बोली मात्र आधुनिक युग की उपज नहीं है। इसका उपयोग आदिकाल से ही होता आया है। मध्यकाल में मारवाड़ी, मैथिली, अवधी और ब्रजभाषा - ये चारों बोलियाँ अलग-अलग जगह, अलग स्थानों पर साहित्यिक भाषा का दर्जा प्राप्त किए हुए थीं और खड़ी बोली का व्यवहार प्रच्छन्न रहा। आधुनिक काल में इन बोलियों का महत्व थोड़ा कम हुआ और बोलचाल की भाषा के रूप में संपर्क भाषा के रूप में उर्दू से भिन्न खड़ी बोली का व्यापक प्रचार हुआ और इस कारण खड़ी बोली आधुनिक युग में लगभग साहित्य सृजन का अकेला माध्यम बन गई।

5.9 अभ्यास प्रश्न

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150-150 शब्दों में दीजिए :

1. हिंदवी या हिंदुई क्या है?
2. उर्दू भाषा का आविर्भाव कब और कैसे हुआ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों में से प्रत्येक का उत्तर लगभग 300-300 शब्दों में दीजिए :

1. आदिकाल से आधुनिक काल तक हिंदी के विकासक्रम का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. हिंदी साहित्य की प्रमुख साहित्यिक बोलियों का परिचय दीजिए।
3. उर्दू भाषा के विकास और वर्तमान का विवेचन दीजिए।

इकाई 6 आधुनिक युग में हिंदी भाषा का विकास

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 फोर्ट विलियम कालेज

6.4 हिंदी की पत्रकारिता

- 6.4.1 हिंदी की पत्रकारिता का विकास
- 6.4.2 उन्नीसवीं शताब्दी के कुछ उत्कृष्ट पत्रकार
- 6.4.3 बीसवीं शताब्दी के कुछ यशस्वी संपादक

6.5 राजा द्वय - राजा शिवप्रसाद सिंह तथा राजा लक्ष्मण सिंह

6.6 भारतेंदु युग

6.7 द्विवेदी युग

6.8 हिंदी के बढ़ते चरण

- 6.8.1 साहित्यिक गतिविधियाँ
- 6.8.2 भाषा का विकास

6.9 सारांश

6.10 अभ्यास प्रश्न

6.11 संदर्भ ग्रंथ

6.1 उद्देश्य

इस इकाई में 18वीं शताब्दी से लेकर आज तक हिंदी के विकास के बारे में चर्चा की गई है। इस युग में हिंदी न केवल साहित्यिक सृजन का सशक्त माध्यम बनी बल्कि अपनी विकास-यात्रा में हिंदी भाषा ने देश की राजभाषा का प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया और शिक्षा, जनसंचार आदि विविध क्षेत्रों में उसके प्रकार्यों का विस्तार हुआ। इस युग में हिंदी की प्रतिष्ठा के साथ-साथ हिंदी और उर्दू के आपसी संबंध और अस्तित्व के संघर्ष का भी दृश्य देखने को मिलता है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- आधुनिक मानक भाषा के रूप में हिंदी के विकास का परिचय दे सकेंगे;
- 18वीं-19वीं शताब्दी में हिंदी के विकास में योगदान देने वाले मनीषियों की चर्चा भारतेंदु युग और द्विवेदी युग के संदर्भ में कर सकेंगे;
- साहित्यिक भाषा के रूप में हिंदी भाषा के विकास को समझा सकेंगे; और
- वर्तमान युग में हिंदी के प्रकार्यों और प्रयोजनों की चर्चा कर सकेंगे।

6.2 प्रस्तावना

साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ी बोली का विकास भी ग्यारहवीं शताब्दी से होने लगा था जिसका नाम समय-समय पर भिन्न रहा। इसके विकास पर अलग से चर्चा की जा चुकी है। नाथ-सिद्धों की बानियों तथा संतों ने इसको विशेष रूप से आगे बढ़ाया। हिंदुवी, हिन्दवी, हिन्दुई आदि विविध नामों से इसका प्रचार-प्रसार होता रहा। 'दक्खिनी' के अनेक कवियों ने काव्यभाषा के रूप में इसको दक्षिण भारत में फैला दिया। शिवाजी के दरबार में अनेक लेखक/कविगण ऐसे थे जो हिंदी में लिखते थे

जिनमें उनके गुरु रामदास प्रमुख थे। रामप्रसाद निरंजनी का योगदान सर्वविदित है। गुजरात में प्राणनाथ ने इसको फैलाया। महामति प्राणनाथ का अब विशाल साहित्य उपलब्ध है।

खड़ी बोली : यह सब होते हुए भी 'खड़ी बोली' शब्द का प्रयोग पहली बार फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के साथ हुआ। इसका श्रेय गिलक्राइस्ट को दिया जाता है। अठारहवीं शताब्दी के अंत में गिलक्राइस्ट कलकत्ता पहुँच चुके थे और वहीं हिंदी का पठन-पाठन करते थे। संयोग से जब उनकी नियुक्ति फोर्ट विलियम कालेज में हो गई तो इस बहुप्रयुक्त भाषा का नामकरण 'खड़ी बोली' किया और वहाँ नियुक्त लल्लू जी लाल को इसमें लिखने का आदेश दिया जिसका उल्लेख प्रथम बार लल्लू जी लाल ने प्रेम सागर' की भूमिका में इस प्रकार किया :

श्रीयुक्त गुनगाहक गुनिथन-सुखदायक जान गिलकिरिस्त महाशय की आज्ञा से सं. 1860 (सन् 1803 ई.) में श्री लल्लू जी लाल कवि ब्राह्मन गुजराती सहस्र अवदीच आगरे वाले ने जिसका सार ले, यामनी भाषा छोड़, दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कह, नाम 'प्रेमसागर' धरा'' (ना. प्र. सभा, काशी, सं. 1979, पं. 1)

लगभग इसी समय फोर्ट विलियम कालेज के डॉ. जान गिलक्राइस्ट तथा सदल मिश्र ने भी इस नाम (खड़ी बोली) का उल्लेख किया है। सन् 1803 ई. में ही प्रकाशित पुस्तकों में तीन बार 'खड़ीबोली' का उल्लेख गिलक्राइस्ट ने स्वयं किया:

"इन (कहानियों) में से कई खड़ीबोली अथवा हिंदुस्तानी के शुद्ध हिंदवी ढंग की हैं। कुछ ब्रजभाषा में लिखी जाएंगी।'' (हिंद स्टोरी टेलर, भाग 2) "मुझे खेद है कि ब्रजभाषा के साथ खड़ीबोली की उपेक्षा कर दी गई थी''।(दि ओरियंटल फेब्युलिस्ट)

सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' में खड़ीबोली का उल्लेख किया :

> " अब संवत् 1860 में नासिकेतोपाख्यान को जिसमें चन्द्रावली की कथा
> कही है, देववाणी में कोई समझा नहीं सकता इसलिए खड़ी बोली में किया।

(ना.प्र. सभा, काशी, सं. 2007, पृ. 2)

इस प्रकार सन् 1803 में ही 'खड़ीबोली' शब्द का प्रयोग पाँच बार किया गया। इसके बाद सन् 1804 में गिलक्राइस्ट ने लिखा है:

"शकुन्तला का दूसरा अनुवाद खड़ी बोली अथवा भारतवर्ष की निराली (खालिस) बोली में है। हिंदुस्तानी में इसका भेद केवल इसी बात में है कि अरबी और फ़ारसी का प्रत्येक शब्द छाँट दिया जाता है।''

x x x

"प्रेमसागर एक बहुत ही मनोरंजक पुस्तक है जिसे लल्लू लाल जी ने हमारे विद्यार्थियों को हिंदुस्तानी की शिक्षा देने के निमित्त ब्रजभाषा की सुन्दरता और स्वच्छता के साथ खड़ीबोली में किया। इससे अंग्रेजी भारत की हिंदू जनता के वृहत् समुदाय को भी लाभ होगा।''

सन् 1805 में सदल मिश्र ने 'रामचरित्र' में भी खड़ी बोली का उल्लेख इस प्रकार किया:

"अब इस पोथी को भाषा करने का कारण सिद्ध है कि मिस्टर जान गिलक्रस्त साहब ने ठहराया और एक दिन आज्ञा दी कि अध्यात्म रामायण को ऐसी बोली में करो जिसमें अरबी-फ़ारसी न आवे। तब मैं इसको खड़ी बोली में कहने लगा और सं. 1862 में इस पोथी को समाप्त किया और नाम इसका रामचरित्र रखा।''

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में प्राप्त इन उद्धरणों से कुछ प्रश्न उठते हैं:

1. क्या गिलक्राइस्ट महोदय को इस बोली का नाम पता था?
2. खड़ी बोली किस अर्थ का द्योतक है?
3. आगरा ब्रजभाषा क्षेत्र में है तो फिर दिल्ली-आगरा की बोली से क्या तात्पर्य है?
4. क्या इस भाषा का अविष्कार किया गया?

डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया ने इन सभी प्रश्नों पर बड़े विस्तार से विचार अपनी पुस्तक 'ब्रजभाषा और खड़ीबोली का तुलनात्मक अध्ययन' में किया है। गिलक्राइस्ट ने स्वयं अठाहरवीं शताब्दी में लिखे, अपने ग्रंथों में नाम नहीं दिया। इससे यह सिद्ध होता है कि 'खड़ीबोली' नाम का श्रेय फोर्ट विलियम कालेज में आने के बाद उनको दिया जा सकता है पर वह भाषा व्यापक रूप से आगरा से पटना तक समझी जाती थी। एक व्यक्ति आगरा से लिया जबकि दूसरा पटना से। कैलॉग ने अपने व्याकरण में इसको विशुद्ध या बिना मिलावट की भाषा माना है:

"This form of Hindi has also often been termed 'Khari boli' or the 'pure speech' and also, by some European scholars after analogy of the German, 'High Hindi',

इसी प्रकार ईस्टविक ने परिभाषित किया:

खड़ी बोली **The true genuine language or the pure language.**

टी.जी. बेली ने पूछा कि क्या इसको गँवारी से भिन्न माना जा सकता है?

गिलक्राइस्ट ने स्वयं इसको प्योर 'स्टर्लिंग' माना और अपने कोश में स्टर्लिंग का अर्थ दिया:

Sterling, standard, genuine

लगता है कि व्यावहारिकता की दृष्टि से परिनिष्ठित भाषा का रूप देने के लिए 'हिंदी' को 'खड़ीबोली' कहना पसंद किया होगा। आज इसको ही 'मानक हिंदी' कहा जाता है।

इसी समय फोर्ट विलियम कालेज के बाहर रहते हुए दो साहित्यकार भी उसी प्रकार की भाषा में लिख रहे थे जिनके नाम हैं:

(i) सदासुख लाल और (ii) इंशाअल्ला खाँ।

सदासुख लाल उर्दू के अच्छे लेखक थे तो भी उन्होंने खड़ीबोली के उस रूप को ही महत्व दिया जिसमें पंडिताऊपन और अन्य बोलियों का चित्रण न हो। एक उदाहरण द्रष्टव्य है:

"विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका सतोवृत्ति है, वह प्राप्त हो...। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कहके लोगों को बहकाइये और फुसलाइये और असत्य छिपाइए, व्यभिचार कीजिए और सुरापान कीजिए।''

इस प्रकार की परिष्कृत भाषा में लिखते हुए भी वह 'तिस पीछे', 'जब लग', 'सब को सुनाय के' जैसे रूपों से अपने का मुक्त न कर पाये।

इंशा ने भी 'रानी केतकी की कहानी' ऐसी ठेठ भाषा में लिखी जिसमें ध्यान रखा गया कि 'हिंदी छुट किसी बाहर की बोली का पुट' न मिले। इंशा ने इस बारे में स्पष्ट कहा:

"एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिंदवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो। बस जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते-चालते हैं ज्यों-का-त्यों वही सब डौल रहे और छाँह किसी की न हो।''

यहाँ 'भाखापन' से तात्पर्य है ब्रजभाषापन। जब हिंदी गद्य को ये चारों लेखक सम्पन्न कर रहे थे (दो फोर्ट विलियम कालेज में रहते हुए और दो बाहर रहते हुए) तो उनके आसपास ही नज़ीर अकबराबादी पद्य में लिख रहे थे। नज़ीर भी आगरा में थे और लोकभाषा में श्रीकृष्ण पर भी मुसलमान होते हुए लिख रहे थे। अब उ.प्र. हिंदी संस्थान लखनऊ से डॉ. नज़ीर मुहम्मद के सम्पादन में 'नज़ीर ग्रंथावली' प्रकाशित हो गई है।

"यदि नज़ीर की भाषा और लल्लू लाल जी की भाषा की तुलना की जाए तो उनमें बहुत कुछ समानताएँ पाई जायेंगी, हालाँकि एक ने गद्य में लिखा, दूसरे ने पद्य में। एक हिंदू था और दूसरा मुसलमान। एक ने अंग्रेजों की छत्रछाया में उनके निर्देशानुसार "यामिनी'' शब्दों को त्याज्य मानकर लिखा है और दूसरे ने सच्चे लोककवि के रूप में हिंदू-मुसलमानों दोनों का प्रतिनिधित्व करते हुए जन-समाज में प्रचलित खड़ी बोली के समस्त शब्द-भंडार का स्वच्छन्द उपयोग करते हुए स्वतंत्र रूप

से लिखा है। लल्लू लाल जी की भाषा में जैसे ब्रजभाषा के प्रयोग मिलते हैं वैसे ही नज़ीर की भाषा मे भी। ... भाषा के इस जनसम्मत आडम्बरहीन सजीव रूप को लक्ष्य करके इंशाअल्लाखाँ ने बिना किसी मिलावट की हिंदी लिखने की ठानी थी। उसमें किसी गँवारी भाषा का भ्रम तो नहीं किया जा सकता। न तो इंशा ने न, नजीर और न लल्लू लाल ने गँवारी भाषा में साहित्य की रचना की। उनकी भाषा भी दिल्ली-आगरे की चलती खड़ी बोली थी जिसके रूप के विषय में (जैसा लिखा जा चुका है) इंशा के शब्दों में कहा जा सकता है, "जैसे भले लोग अच्छों-से आपस में बोलते-चालते हैं।''

(ब्रजभाषा और खड़ीबोली, पृ. 116)

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यह 'खड़ीबोली' ब्रजभाषा और रेख्ता से भिन्न बोलचाल की भाषा थी जिसमें साहित्य रचना भी की जा रही थी। यामनी भाषा के शब्दों के जोड़ देने से वही रेखता कही जाती होगी। साहित्यिक भाषा के रूप में इसकी प्राचीन परम्परा थी और इसका विस्तार मात्र दिल्ली-आगरा तक नहीं वरन् पटना व आरा तक था। इस भाषा का अविष्कार नहीं किया गया यह तो 'बहता जल' था।

वहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि लल्लू जी लाल ने अनेक ग्रंथों की रचना की जिनमें से सिंहासन बत्तीसी, बेताल पच्चीसी, शकुन्तला नाटक, माधोनल तथा प्रेमसागर अधिक प्रसिद्ध हैं। ब्रजभाषा का व्याकरण भी लिखा। बेताल पच्चीसी की भाषा का एक अंश उद्धृत है:

"इतना कह राजा इन्द्र अपने स्थान को गया और राजा ने उन दोनों लोथों को ले उस तेल के कड़ाह में डाल दिया तब वह दोनों वीर आ हाजिर हुए और कहने लगे कि हमें क्या आज्ञा है? राजा ने कहा जब मैं याद करूँ तब तुम आना। इस तरह से उनसे वचन ले, राजा अपने घर आ राज करने लगा।''

शकुन्तला को ब्रज में अनुवादित किया गया और बाद में रेखता में। जैसा स्पष्ट किया जा चुका है कि 'रेख्ता' में अरबी-फ़ारसी की शब्दावली की भरमार होती थी, जैसे:

"चमकावट उसके चिहरे की, अजब जलवे दिखाती थीं, और ज़ुल्फ़ें बिखरी हुई, मुँह पर उसके, इस रंग से नजर आतियाँ थीं जैसे नमूद धुवें की शुअले पर होती है, या कुछ-कुछ घटा सूरज पर आ जाती है।''

ब्रजभाषा काव्याभाषा के रूप में इस शताब्दी के अंत तक प्रतिष्ठित रही पर गद्य पर भी उसकी काव्यात्मकता का प्रभाव बना रहा। ब्रजमंडल के बाहर के कवि भी इस भाषा में लिखते थे जिससे क्षेत्रीय प्रभाव भी ब्रजभाषा पर पड़ता रहा। बुंदेलखंड और कन्नौज तो ब्रजमंडल की सीमा पर स्थित थे पर दूर के प्रदेशों की शब्दावली भी ब्रज में समाहित होती गई। रीतिकालीन प्रवृत्तियों के बाद सामाजिक व सांस्कृतिक समस्याएँ उपस्थित हुई जिनके फलस्वरूप नवजागरण की प्रवृत्तियों का विस्तार हुआ। मुद्रण की व्यवस्था प्रारंभ होने से काफी बड़ी संख्या में साहित्य प्रकाशित होने लगा। खड़ी बोली के विकास में ईसाई मिशनरियों का विशेष योगदान रहा। आगरा के समीप सिकन्दरा में प्रेस भी था और ईसाइयों का प्रचार-प्रसार का केंद्र भी। सन् 1857 तक सिकन्दरा केंद्र से काफी साहित्य प्रकाशित हुआ।

उन्नीसवीं सदी की प्रारंभिक भाषा में तुकबंदी, लयात्मकता, अलंकारमयता, नाना प्रकार के प्रयोग और अनेक बोलियों के शब्दों का मिश्रण मिलता है फिर भी सामूहिक प्रयास से ब्रजभाषा के समक्ष खड़ी बोली अंततः खड़ी हो गई। यह ठीक है कि कोई परिनिष्ठित या मानक रूप स्थिर नहीं हो सका पर विस्तार खूब हुआ और फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता के प्रश्रय के कारण मान्यता प्राप्त हुई।

सन् 1802 में सिविल सेवा के यशस्वी अधिकारी विलियम बटरवर्थ बेली (1782-1860) ने हिंदुस्तानी और हिंदी का एक ही अर्थ में प्रयोग किया: उनको 'हिंदुस्तान में कार्रवाई के लिए हिंदी जबान' शीर्षक निबंध पर पन्द्रह सौ रुपये नकद और मैडल प्राप्त हुआ। बाद में कुछ समय के लिए गवर्नर जनरल भी रहे। उस समय अंतर्राष्ट्रीय संपर्क की भाषा भी हिंदी ही थी:

"It is moreover the general medium by which persons communicate their wants and ideas to each other. Of the truth indeed we ourselves are an evidence, as are the Portuguese, Dutch, French, Arabs, Turks, Greeks, Armenians, Georgians, Persians, Moguls and Chinese."

6.3 फोर्ट विलियम कालेज

गवर्नर जनरल लार्ड वेलेज़ली ने सन् 1800 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। लार्ड वेलेज़ली यद्यपि साम्राज्यवादी कार्यों में रूचि रखते थे पर विद्वान थे और ग्रीक लैटिन तथा अंग्रेजी के विद्वान थे। उनकी नियुक्ति सन् 1798 ई. में हुई।

बंगाल पर अधिकार होने के बाद भारत की भाषाओं को ज्ञान होने के कारण कठिनाइयाँ बढ़ती गई। 15 जनवरी, 1784 ई. के एशियाटिक सोसायटी की स्थापना हो चुकी थी।

सन् 1781 में ब्रिटिश संसद में यह निश्चय किया गया कि भारतीय न्यायालयों में मुकद्मों का निर्णय अंग्रेज़ी कानून के आधार के स्थान पर भारतीय धर्म रीति रिवाजों के आधार पर किया जाए। सन् 1783 ई. में जॉन बोर्थविक गिलक्राइस्ट (1759-1841) की नियुक्ति मैडिकल ऑफिसर के पद पर हुई। सन् 1790 ई. तक उन्होंने 'अंग्रेजी और हिंदुस्तानी' कोश के दो भाग प्रकाशित कर दिए थे। उनके अन्य उल्लेखनीय ग्रंथ हैं:

हिंदुस्तानी ग्रामर - 1796-98

ओरियन्टल लिंग्विस्ट - 1798

दस जुलाई 1800 ई. को कालिज का रेगुलेशन पास हुआ पर चार मई 1800 ही स्थापना की तारीख रखी गई (श्री रंगपट्टनम, मैसूर के विजयोत्सव की तिथि)। छात्रों को पुरस्कार स्वरूप जो मैडल दिए गए उनमें एक ओर यही तिथि तथा दूसरी ओर श्रीरंगपट्टनम का चित्र बना रहता।

(मेमोरियल ऑफ ओल्ड हैलबरी फ्रेडिरिक चार्ल्स कालेज, डनवर्स) 1893

गिलक्राइस्ट की सेवाओं से प्रसन्न होकर वेलेजली ने उनकी नियुक्ति सन् 1800 में की। राइटर्स बिल्डिंग (जिसमें आजकल सचिवालय है) में फोर्ट विलियम कॉलेज प्रारंभ किया गया। इस कॉलिज का इतिहास ही वास्तव में ईस्ट इंडिया कंपनी के सिविल कर्मचारियों का इतिहास है। बाद में लार्ड डलहौजी की सिफ़ारिश पर जनवरी 1854 में कालिज बंद कर दिया गया। इस कॉलेज में प्रशासन, कानून तथा क्षेत्रीय भाषाएँ, विशेष रूप से खड़ीबोली हिंदी, की पढ़ाई की व्यवस्था की गई। कर्मचारियों की नैतिक दशा में सुधार करना तथा उन्हें देश की भाषाओं, रीति रिवाजों से परिचित कराना तथा कुशल प्रशासक बनाना था।

हिंदी के लिए इससे अधिक और क्या गौरव की बात थी कि वह उस समय संपर्क भाषा के रूप में मान्य थी। आगरा व्यापार का बड़ा केंद्र था। ऐसी स्थिति में फोर्ट विलियम कालेज को विशेषत: आगरा से हिंदी (खड़ीबोली) पढ़ाने के लिए मुंशी (अध्यापक) को बुलाना पड़ा और आगरा की भाषा को महत्व देना पड़ा। 'न्यू टेस्टामेंट' (बाइबिल) का प्रथम हिंदी अनुवाद सन् 1807 में प्रकाशित हुआ।

फोर्ट विलियम कालेज की चर्चा प्राय: गिलक्राइस्ट के साथ इतिश्री कर दी जाती है। प्रो. गिलक्राइस्ट तो बहुत कम समय वहीं रहे (जनवरी 1804 ई. तक)। इनके बाद निम्नलिखित व्यक्तियों ने यह महत्वपूर्ण पद सम्झाला, वैसे कॉलेज तो सन् 1854 ई. तक चलता रहा:

1. कैप्टन माउन्ट (6.1.1806 से 20.2.1808)
2. कैप्टन टेलर (22.2.1808 से मई 1823 तक)
3. कैप्टन विलियम प्राइस (23.5.1823 से दिसम्बर 1831 तक)

इस दृष्टि से श्री टेलर लम्बे काल तक रहे। कैप्टन टेलर ने सन् 1815 ई. में सर्वप्रथम हिंदी शब्द का प्रयोग आधुनिक अर्थ में किया था। कम्पनी की भाषानीति फ़ारसी भाषा प्रयोग की थी। सर्वप्रथम विलियम प्राइस ने गिलक्राइस्ट के मत की आलोचना की। उन्हीं के समय में हिंदी का निश्चित रूप से आधुनिक अर्थ में प्रयोग किया गया। सन् 1816 ई. के अध्यादेश में अनेक परिवर्तन हुए जिसके फलस्वरूप सन् 1825 ई. में विलियम प्राइस ने (जो हिंदी और हिंदुस्तानी विभाग के अध्यक्ष थे) पहली बार हिंदी भाषा को हिंदुस्तानी से पृथक्, एक प्रमुख देशी भाषा के रूप में स्वीकार किया। प्राइस के पद त्याग करने के बाद सन् 1831 से कोई प्रोफेसर नहीं हुआ। 26 फरवरी 1824

को फोर्ट विलियम से प्रकाशित सामग्री में यह सूचना महत्वपूर्ण है। यह संतोष का विषय है कि संस्था से संबंधित विद्यार्थियों की एक पर्याप्त संख्या हिंदी के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दे रही है। उनकी प्रगति, इस भाषा में, आशा से अधिक दिखाई देती है। (डॉ. शारदा वेदालंकार की पुस्तक से पृ. 120)

इसी समय सन् 1826 में वहाँ के पं. गंगाप्रसाद शुक्ल ने हिंदी भाषा का शब्दकोश संकलित किया। इससे पहले कैप्टन टेलर ने सन् 1808 में हिंदुस्तानी-अंग्रेजी कोश बनाया था और विलियम हन्टर ने इसको दोहराया था। इस दिशा में शेक्सपियर का कोश भी महत्वपूर्ण है। विलियम प्राइस ने 'प्रेमसागर के मुख्य शब्द' (खड़ीबोली और अंग्रेजी की शब्दावली), कलकत्ता, सन् 1825 (पृ.सं. 159) तैयार किया। शब्द नागरी तथा रोमन लिपियों में दिए गए। इस शताब्दी के अन्य कोशकारों में थोम्पसन, येट्स, डंकन फोर्बस, मथुरा प्रसाद मिश्र तथा बेट्स के नाम उल्लेखनीय है।

6.4 हिंदी की पत्रकारिता

हिंदी की पत्रकारिता का प्रारंभ

हिंदी में पत्रकारिता का उदय और विकास इसी शताब्दी में हुआ। बंगाल से प्रकाशित 'गोस्पेल मैगज़ीन प्रारंभ में द्विभाषी (अंग्रेजी तथा बंगला में) थी बाद में त्रिभाषी हो गई। इस पत्रिका में कुछ अंश नागरी में भी प्रकाशित हुए जिसकी सर्वप्रथम सूचना डॉ. शारदा वेदालंकार ने अपने ग्रंथ 'प्रारंभिक हिंदी गद्य का स्वरूप' में दी है। अगस्त 1820 से अब हिंदी पत्रकारिता का उद्‌गम माना जाना चाहिए। तीसरे अंक में 'नागरी' के स्थान पर 'हिंदुवी' का प्रयोग किया जाने लगा। इसके प्राप्त अंकों से भाषा के कुछ नमूने भी दिये हैं, जैसे:

''किसी एक समय में कोई एक मनुष्य ने तुर्कीय पुरोहित के समीप जायके तीन बात पूछीं।''

स्पष्ट है कि 'जायके' अंश ब्रजभाषा से प्रभावित है। इस पत्र से जहाँ ईसाई धर्म का प्रचार हुआ वहाँ हिंदी भाषा को पादरियों से सहायता मिली। पत्रकारिता जगत में सामाजिक सुधारों के अगुआ राजा राममोहन राय (सन् 1774-1833 ई.) का विशेष योगदान रहा है। वह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रबल पक्षधर थे।

राममोहन राय द्वारा बंगला में 'बंगदूत' तथा 'संवाद कौमुदी' (सन् 1821) का संपादन किया गया। हिंदी में पत्रकारिता के उदय का सूत्रपात यहीं से होता है। 'संवाद' तथा 'संवाददाता' शब्द जो बंगाल में प्रचलित हुए, वही आज तक प्रचलन में है।

आगे चलकर कलकत्ता ही प्रारंभ में हिंदी पत्रकारिता का गढ़ कहा जा सकता है।

6.4.1 हिंदी की पत्रकारिता का विकास

हिंदी की पत्रकारिता का इतिहास काफ़ी प्राचीन तथा विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है। हिंदी का पहला समाचार पत्र 30 मई 1825 ई. को कलकत्ता से 'उदंत मार्तण्ड' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसका पता लगाने का श्रेय पं. बनारसी दास चतुर्वेदी को है जो स्वयं यशस्वी पत्रकार थे और वृन्दावन में संपन्न हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन पर राष्ट्रभाषा के संदर्भ में पत्रकारिता के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष भी हुए। फलत: चतुर्वेदी जी ने विशाल भारत के कई अंकों में सन् 1831 ई. में इस पत्र की विस्तार से सूचनाएँ दीं। 'उदंत मार्तण्ड' के संपादक पं. युगल किशोर सुकुल ने इस पत्र के प्रकाशन के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए संपादकीय में लिखा:

''यह उदन्त मार्तण्ड पहले पहल हिंदुस्तानियों के हित के हेत जो आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अंग्रेजी और पारसी और बंगला में जो समाचार का कागज छपता है उसका सुख उन बोलियों को जानने व पढ़ने वालों को ही होता है। इसमें सत्य समाचार हिंदुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ और समझ लेय।''

इसको उन्होंने 'नया ठाठ' बताया जिससे अपनी राष्ट्रभाषा के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ। उनके अनुसार संपादक को बहुभाषाविद होना चाहिए। वे संस्कृत, हिंदी, ब्रजभाषा, उर्दू, फारसी तथा अंग्रजी भाषाओं के ज्ञाता थे। इससे पहले बैपटिस्ट मिशन का बंगला भाषा में 'दिग्दर्शन' जरूर प्रकाशित

होता था जो बाद में हिंदी में भी प्रकाशित हुआ पर इसकी प्रतियाँ अभी तक किसी को नहीं मिली हैं। हिंदी का पहला समाचार पत्र दो वर्ष भी नहीं चल सका। अंतिम अंक में प्रकाशित पंक्तियाँ इसकी पुष्टि करती हैं:

आज दिवस औ उग चुक्यौ मार्तण्ड उदन्त। अस्ताच को जात है दिनकर दिन भयअन्त।।

(ग्यारह दिसंबर 1827)

सुप्रसिद्ध पत्रकार पराड़कर जी ने हिंदी पत्रकारिता पर बड़े विस्तार से प्रकाश डाला है। उनका मानना था कि प्रारंभ में संपादकों के समक्ष दो भाषाओं का साहित्य था - अंग्रेजी और संस्कृत/गद्य साहित्य के निर्माण में इन पत्रों ने विशेष योग दिया। उनका कथन था:

"मेरा अनुभव यह है कि हमारे गद्य के जनक इस संस्कृत गद्य शैली का और अपने समय अथवा उसके पहले की सुप्रसिद्ध अंग्रेजी लेखकों की रचनाओं का अनुसरण कर मराठी, हिंदी, बंगला आदि गद्यों का स्वरूप निश्चित करते थे।''

उस युग के पत्रकार स्वयं साहित्यकार भी थे। एक पत्र से दूसरे क्षेत्र के पत्रों ने शिक्षा ग्रहण की।

भारतेंदु युग तक आते-आते पत्रों के प्रकाशकों को दिशा मिल चुकी थी।

इस पत्र के बंद होने से ही पहले मई 1829 से 'बंगदूत प्रारंभ हो चुका था। यह साप्ताहिक पत्र शनिवार को प्रकाशित होता था। संपादक मंडल में राजा राममोहन राय भी थे। इसके प्रारंभ में लिखा रहता था।

बंगाल का दूत पूत वहि वायु को जानो।
होय विदित सब देश क्लेश को लेश न मानो।।

प्रथम हिंदी दैनिक 'सुधावर्षण' (सन् 1854) है जिसका प्रकाशन सन् 1868 ई. तक रहा। इसके सम्पादक श्री श्याम सुन्दर सेन थे। सन् 1845 ई. से राजा शिव प्रसाद सितारेहिंद का 'बनारस अखबार' प्रारंभ हुआ जिसकी भाषा हिंदुस्तानी थी। इसकी उर्दू प्रधान शैली का खूब विरोध हुआ। यह उर्दू का हिमायती था। पंजाब से नवीनचन्द्र राय ने 'ज्ञान प्रकाशिनी' प्रकाशित की। नवीनचन्द्र शुद्ध हिंदी के पक्षपाती थे।

सन् 1852 में सदासुखलाल जी ने 'बुद्धि प्रकाश' पत्रिका आगरा से प्रारंभ की। इसकी भाषा की आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रशंसा की। एक नमूना देखिए - शिक्षा के कारण बाल्यावस्था में लड़कों को भूलचूक से बचावें और सरल विद्या उन्हें सिखावें।

भारतेंदु ने पन्द्रह अगस्त सन् 1867 में 'कविवचन सुधा' नामक मासिक पत्रिका प्रारंभ की। यह सोलह पृष्ठों की पत्रिका थी जिसमें भारतेंदु स्वयं लिखते थे और अपने परिकर की सामग्री प्रकाशित करते थे। इससे भाषा-शैली का स्वरूप स्पष्ट हुआ। भारतेंदु ने ही 1873 ई. में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' निकाली जो सन् 1874 ई. में 'हरिश्चंद्र चन्द्रिका' कर दी गई। उस काल के अन्य पत्रों में वृत्तान्त दर्पण (सदासुखलाल), विद्यादर्श, समय विनोद, हिंदू प्रकाश, प्रयाग दूत, प्रेमपत्र, बिहार बंधु, बालबोधिनी, नागरी प्रकाश, आर्यदर्पण, आर्यभूषण आदि प्रमुख हैं।

6.4.2 उन्नीसवीं शताब्दी के कुछ उत्कृष्ट पत्रकार

अमृत लाल चक्रवर्ती (सन् 1863-1936) : हिंदी बंगवासी, हिंदोस्थान, भारत मित्र, वेंकटेश्वर समाचार आदि पत्रों का संपादन। हिंदी पत्रकारिता के विकास में अभूतपूर्व योगदान।

पं. अंबिका दत्त व्यास (1859-1900) : भारतेंदु युग में 'वैष्णव पीयूष प्रवाह' का संपादन किया।

पं. अंबिका प्रसाद बाजपेयी (1890-1968) : हिंदी बंगवासी, नृसिंह, भारतमित्र, सनातन धर्म आदि के संपादक। पत्रकारिता जगत के संस्मरण बड़े विस्तार से लिखे हैं।

गोपाल रामगहमरी (1866-1946) : वेंकटेश्वर समाचार, बिहार बंधु, दैनिक हिंदोस्थान का संपादन किया। सामाजिक रचनाओं द्वारा हिंदी-सेवा की।

पं. माधव प्रसाद मिश्र (1871-1907) : 'सुदर्शन' तथा 'वैश्योपकारक' के यशस्वी संपादक।

पं. राधाचरण गोस्वामी-वृन्दावन : 'भारतेंदु' पत्र का संपादन किया।

राधामोहन गोकुल (1866-1935) : ब्राह्मण तथा प्राणवीर द्वारा राष्ट्रीय जागरण का उद्घोष।

पं. झाबरमल शर्मा (1888-1983) : यशस्वी साहित्यकार झाबरमलजी भारत, कलसमाचार के संपादक रहे।

दुर्गा प्रसाद मिश्र (1860-1910) : सार सुधानिधि, उचितवक्ता, भारत मित्र का संपादन।

नरेंद्र देव (1868-1960) : जनवाणी, रणभेरी, संघर्ष के संपादक।

प्रतापनारायण मिश्र (1856-1894) : ब्राह्मण और हिंदोस्थान।

बालकृष्ण भट्ट (1844-1914) : 'हिंदी प्रदीप' के संपादक।

बदरीनाथ चौधरी प्रेमघन' (1855-1923) : आनंद कादम्बिनी और नागरी नीरद।

बाल मुकुंद गुप्त (1865-1907) : भारतमित्र, बंगवासी, हिंदोस्थान।

पं. मदनमोहन मालवीय (1861-1946) : 'हिंदोस्थान' व 'अभ्युदय' का संपादन, हिंदी साहित्य सम्मेलन के संस्थापक, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के जनक, हिंदी भाषा के लिए उन्नायक, कचहरी में नागरीलिपि का प्रारंभ करने का श्रेय 18.4.1900 ई.।

महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938 ई.) : 'सरस्वती' के यशस्वी संपादक, युगनिर्माता, हिंदी को मानक रूप प्रदान करने में विशेष योगदान।

गंगाशंकर मिश्र (1887-1972) : 'सन्मार्ग' का संपादन।

नवजादिक लाल श्रीवास्तव (1888-1939) : मतवाला, वीरभूमि, हिंदीमंच, चाँद आदि पत्रों का संपादन।

बद्रीदत्त पाण्डेय (1882-1968) : शक्ति और अल्मोड़ा अखबार के संपादक रहे।

शारदा चरण मित्र (1848-1917) : 'हावड़ा हितकारी', देवनागर' का संपादन।

राधाकृष्ण दास (1866-1907) : साहित्य सुधानिधि, सरस्वती के संपादक रहे।

पं. माधवराव सप्रे (1871-1926) : हिंदी केसरी, छत्तीसगढ़ मित्र तथा कर्मवीर के संपादक।

6.4.3 बीसवीं शताब्दी के कुछ यशस्वी संपादक

इंद्र विद्यावाचस्पति (1889-1960) : सत्यवादी विजय, अर्जुन के संपादक। हिंदी पत्रकारिता के स्तम्भ।

गणेश शंकर विद्यार्थी (1890-1931) : 'अभ्युदय' तथा 'प्रताप' के संपादक। हिंदु-मुस्लिम एकता के पक्षधर।

रामलोचन चरण 1890-1971) : 'हिमालय' और 'बालक' के संपादक। बाल साहित्य के यशस्वी लेखक।

बदरीदत्त पाण्डेय (1882-1965) : 'शक्ति' और 'अल्मोड़ा अखबार'।

मुंशी प्रेमचंद (1880-1936) : 'जागरण', माधुरी, मर्यादा आदि। 'हंस' के यशस्वी संपादक।

रामचंद्र वर्मा (1890-1969) : बिहार बंधु, हिन्दी, केसरी, नागरी प्रचारिणी पत्रिका का संपादन।

केशवराम भट्ट (1885-1905) : 'बिहार के बंधु' के संपादक।

रामदहिन मिश्र (1886-1952) : किशोर, पारिजात, बालमित्र, बाल साहित्य के पोषक।

कृष्णकांत मालवीय (1893-1941) : अभ्युदय, किसान, मर्यादा के संपादक।

कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'बेढ़ब बनारसी' (1895-1968) : भारत जीवन, तरंग का संपादन। हास्य व्यंग्य की विधाओं को पुष्ट किया।

मातादीन शुक्ल (1891-1954) : अभ्युदय और माधुरी के संपादक।

माखनलाल चतुर्वेदी (1889-1968) : प्रताप, प्रभा और कर्मवीर के संपादक। यशस्वी साहित्यकार। म.प्र. शासन ने उनके नाम से पत्रकारिता का विश्वविद्यालय।

देवीदत्त शुक्ल (1888-1970) : बालसुधा और सरस्वती का संपादन।

पद्मसिंह शर्मा (1877-1932) : भारतोदय, परोपकार का संपादन। संस्मरण विधा के यशस्वी लेखक। सुप्रसिद्ध शैलीकार।

इसी धारा को जिन अन्य संपादकों ने आगे बढ़ाया उनमें कुछ उल्लेखनीय हैं : सर्वश्री कृष्ण व्यास (नई दुनिया), कृष्णबिहारी मिश्र (माधुरी), गिरजादत्त शुक्ल गिरीश (बालसुखा, मनोरमा), गंगाशरण सिंह (युवक, जनता), रामनरेश त्रिपाठी (कवि कौमुदी), रामवृक्ष बेनीपुरी (किसान, तरुणभारत, जनवाणी), सत्यदेव विद्यालंकार (विश्वमित्र, विजय), श्रीराम शर्मा (प्रताप, प्रभा, विशाल भारत), हरिशंकर शर्मा (भारतोदय, आर्य मित्र), हरिभाऊ उपाध्याय (प्रताप, त्यागभूमि), दुलारे लाल भार्गव (माधुरी, सुधा), द्वारिका प्रसाद मिश्र (सारथी, लोकमत), पद्मकांत मालवीय (अभ्युदय), धर्मवीर भारती (धर्मयुग), अज्ञेय (सैनिक, विशालभारत, प्रतीक, दिनमान, नवभारत टाइम्स), राजेंद्र यादव (हंस), राजेंद्र अवस्थी (कादंबिनी), प्रभाष जोशी (जनसत्ता), राजेंद्र माथुर, मनोहर श्याम जोशी (हिंदुस्तान), विद्यानिवास मिश्र (नवभारत टाइम्स, साहित्य अमृत) आदि।

6.5 राजा शिवप्रसाद सिंह तथा राजा लक्ष्मण सिंह

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में दो साहित्यकार उभर कर आए :

1. राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' और
2. राजा लक्ष्मण सिंह

प्रथम ने हिंदी और उर्दू को समीप लाने की चेष्टा में हिंदी को उर्दू से भर दिया जबकि दूसरा संस्कृत की तत्समता की ओर झुका।

राजा शिवप्रसाद ने अनेक पाठ्यपुस्तकों की रचना भी की और हिंदी को शिक्षा जगत में आगे बढ़ाया। सितारे हिंद की नीति सरकारी नीति का पक्ष लेना था। 'राजा भोज का सपना' प्रसिद्ध पुस्तक है जिसका एक उद्धरण भाषा के नमूने के लिए प्रस्तुत है :

> "तू ईश्वर की निगाह में क्या है क्या हवा में बिना धूप तृस रेणु भी दिखाई देते हैं पर सूर्य की किरन पड़ते ही कैसे अनगिनत चमकने लग जाते हैं। क्या कपड़े में छाने हुए पानी की दरमियान किसी को कीड़े मालूम पड़ते हैं। पर जब शीशे को लगाकर देखो जिससे छोटी चीज़ बड़ी नज़र आती है तो उस एक बूंद में हजारों ही जीव सूझने लगते हैं।"

हिंदी को व्यापक स्वीकृति दिलाने के लिए वह हिंदी को सरलता की ओर ले जाने के लिए उर्दू की शब्दावली लाने लगे। उनका विचार था कि "हम लोगों को जहाँ तक बन पड़े चुनने में उन शब्दों को लेना चाहिए जो आमफहम खास पसन्द हों अर्थात् जिनको ज्यादा आदमी समझ सकते हों।"

उनके प्रयास से भाषा पंडिताऊपन से मुक्त हुई। वर्तनी में एकरूपता नहीं आ सकी। दो-दो रूप चलते रहे, जैसे उनने-उन्ने, उसके-उस्के, सकता-सक्ता। भाषा को व्याकरण सम्मत बनाया गया और

अरबी-फारसी की ध्वनियों - क़, ख़, ज़, फ़, रा को शुद्ध लिखने की ओर ध्यान दिलाया।

राजा साहब की शैली का पर्याप्त विरोध हुआ विशेषत: 'इतिहास तिमिरनाशक' की भाषा को लेकर। इस पुस्तक की भाषा को प्रकारान्तर से उर्दू कहा जा सकता है :

"बगावत का शुबहा हुआ पूछने पर उक़ूबत और सियासत के डर से झूठा इक़रार कर दिया...।"

मात्र व्याकरणिक शब्दों को - क्रियारूप - छोड़कर शेष हिंदी नहीं है। इस एक वाक्य में 'के डर से' मात्र हिंदी है।

शिवप्रसाद की भाषानीति के विरोध में राजा लक्ष्मण सिंह दूसरी दिशा में जाते हुए दिखाई दिये। वे विशुद्ध हिंदी के पक्षधर थे। वे उर्दू को मुसलमानों की भाषा मानते थे। उन्होंने शकुन्तला नाटक और मेघदूत के अनुवादों में भाषा के इस रूप को ही दिखाया :

"पहले तो राज बढ़ाने की कामना चित्त को खेदित करती है फिर जो देश जीतकर बस गए हैं उनकी प्रजा के प्रतिपालन का नियम दिन रात मन को विकल रखता है जैसा बड़ा छत्र यद्यपि घाम की रक्षा करता है परंतु बोझ भी देता है।"

अनेक प्रयोग मानक नहीं कहे जा सकते। राजा लक्ष्मण सिंह का विचार था कि "हमारे मत में हिंदी और उर्दू दो बोली न्यारी न्यारी हैं। हिंदी इस देश के हिंदू बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमानों और पारसी पढ़े हुए हिंदुओं की बोलचाल है। हिंदी में संस्कृत के पद बहुत आते हैं उर्दू में अरबी पारसी के। परंतु कुछ आवश्यक नहीं कि अरबी पारसी के शब्दों के बिना न बोली जाए और न हम उस भाषा को हिंदी कहते हैं जिसमें अरबी पारसी शब्द भरे हों।"

भाषा के इसी रूप के पक्षधर हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती, पं. भीमसेन शर्मा, अम्बिका दत्त व्यास आदि। आज अनेक विद्वानों ने इसी शैली को परिष्कृत कर अपनाया है। भाषा को परिनिष्ठित रूप देने में उक्त दोनों ध्रुवों ने बाधा पहुँचायी। धीरे-धीरे खड़ीबोली व्यावहारिक रूप की ओर अग्रसर हुई।

मौलिक लेखन तथा अनुवादों की भाषा में भी अंतर बना रहा। लक्ष्मण सिंह यदि मौलिक लेखन अधिक करते तो वे ही भाषा को वह रूप प्रदान कर सकते थे जो कुछ दशक बाद आया।

6.6 भारतेंदु युग

ऐसी परिस्थितियों में भारतेंदु युग का आविर्भाव हुआ। इस समय की साहित्यिक गतिविधियाँ भारतेंदु की रुचि, साहित्य सेवा और सजगता में समर्पित है। गद्य की दृष्टि से सही अर्थों में यही गद्य का प्रवर्तन काल था। काव्य के संदर्भ में नई धारा का शुभारम्भ हुआ। भारतेंदु और उनकी मण्डली का व्यक्तित्व और कृतित्व मुखर रूप में प्रस्तुत हुआ।

'कविवचन सुधा' के प्रकाशन से नई पत्रकारिता को प्रोत्साहन मिला। ब्रजभाषा के साथ-साथ खड़ीबोली में काव्य रचना होने लगी। काव्यभाषा के संदर्भ में अयोध्या प्रसाद खत्री का खड़ी बोली का आंदोलन उल्लेखनीय है। खड़ीबोली कविताओं का संकलन (सन् 1887 में) प्रकाशित हुआ जो बाद में सजधज के साथ इंग्लैंड से प्रकाशित हुआ। पिन्कॉट ने इस संकलन की भूरि-भूरि प्रशंसा की। बाद में तो श्रीधर पाठक भी खड़ीबोली में काव्य रचना करने लगे। सन् 1886 में 'एकान्तवासी योगी' की खड़ीबोली में प्रस्तुत किया।

कविता नई चाल में ढलने लगी। कवियों का झुकाव खड़ीबोली की ओर होने लगा। भारतेंदु स्वयं खड़ीबोली में काव्यरचना करने में संकोच करते थे। उन्हें भय था कि कहीं इस बहाने उर्दू ही न आ जाए। भारतेंदु ने शिवप्रसाद सितारे हिंद और राजा लक्ष्मण सिंह की संस्कृतनिष्ठ हिंदी के बीच में से मध्यम मार्ग निकाला। भाषा में न पंडिताऊपन हो और न उर्दू शैली की क्लिष्टता। भाषा में से हिंदीपन न जाने पाये, इस बात का भरसक प्रयत्न किया। खड़ीबोली को क्लिष्ट प्रयोगों और पंडिताऊपन से मुक्त रखा। साधु शैली का रूप निश्चित किया और उसे 'नये चाल की हिंदी' की संज्ञा सन् 1873 में प्रदान की। "निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल" का मंत्र देने वाले भारतेंदु की सर्वत्र प्रशंसा हुई। यहाँ कुछ सार्थक सम्मतियाँ देना उपयुक्त होगा :

"जो लोग विवेकी हैं वे इसे अवश्य स्वीकारेंगे कि श्री हरिशचंद्र जी ने उस बिगड़ी हुई भाषा को जो ग्रामीण स्त्री देश में थी, सुधाकर सुसम्पन्न नागरी करके नागरी शब्द को सार्थक कर दिखलाया। हिंदी भाषा ने उनके समय में वह लावण्य या माधुर्य धारण किया कि लोग देखते ही मुग्ध हो जाते हैं और जिन लोगों को बाल्यावस्था से मियाँ जी की तख्ती लिखने का अभ्यास था वे भी इसी पर लट्टू हुए फिरते हैं, अधिक कहाँ तक उन्होंने उसकी आकृति ऐसे साँचे में खींची कि सब में हिंदी का समादर होने लगा।''

(मित्र विलास दिनांक 17.10.87
डॉ. बाहरी की 'हिंदी भाषा' पृ. 52 से उद्धृत)

"यह सच बात है कि आपकी हिंदी और हिंदुस्तान सबसे मनोहर है, इसके बदले में राजा शिवप्रसाद को अपना ही हित सबसे भारी बात है।''

'पिन्कॉट'

आगे चलकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में लिखा :

> "जब भारतेंदु अपनी मँजी हुई परिष्कृत भाषा सामने लाए तो हिंदी बोलने वाली जनता को गद्य के लिए खड़ी बोली का प्राकृत साहित्यिक रूप मिल गया और भाषा के स्वरूप का प्रश्न न रह गया। भाषा का स्वरूप स्थिर हो गया।''

भारतेंदु ने एक साथ कई प्रकार की गद्य शैलियों को अपनाया। भारतेंदु की भाषा में सामाजिक यथार्थ प्रस्तुत हुआ है और चुभता व्यंग्य भी। फ़ारसी शब्दों से भी उन्हें परहेज नहीं था, (खुदा इस आफत से जी बचाये।) तत्सम-तद्भव से युक्त भाषा (यदि हमको भोजन की बात हुई तो भोजन का बधान बाँध देंगे।), कहीं-कहीं अंग्रेजी शब्दों का समुचित प्रयोग (कंपनियों के सैकड़ों गैंग), संस्कृतिनिष्ठता (अनवरत आकाश मेघाच्छन्न रहता है।) आदि अनेक भाषा के शैली रूप उनके साहित्य में चलते रहे। उनके परिकर में बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', श्रीं निवासदास, पं. प्रतापनारायण मिश्र राधाचरण गोस्वामी, तोताराम, बालकृष्ण भट्ट आदि प्रमुख साहित्यकार थे।

राधाचरण गोस्वामी वृन्दावन के होने के नाते ब्रजभाषा में निष्णात थे और शुद्ध हिंदी के पक्षधर थे। राधाकृष्ण दास भी नाटकों में पात्रानुकूल भाषा अपनाते थे वैसे उन्हें संस्कृतनिष्ठता प्रिय थी। बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, तोताराम, लाला श्री निवास दास चलती भाषा अपनाते थे जिससे प्रभावी हो सके। प्रतापनारायण मिश्र की भाषा सभी को आकर्षित करती थी। भाषा गें पूर्वीपन की झलक है। व्यंग्यात्मक भाषा लिखने में सिद्धहस्त थे। भाषा का प्रांजल स्वरूप द्रष्टव्य है :

"यह तो समझिए यह देश कौन है? वही न? जहाँ पूज्य मूर्तियाँ भी दो-एक छोड़ चक्र या त्रिशुल व खड्ग व धनुष से खाली नहीं हैं, जहाँ धर्म ग्रंथ में भी धनुर्वेद मौजूद है।''

बालकृष्ण भट्ट अच्छे निबंधकार थे। किसी भी विषय पर बड़ी कुशलता से लिख लेते थे। हिंदी का निबंध साहित्य बिना बालकृष्ण भट्ट के अधूरा ही माना जाएगा। अपने विचारों की पुष्टि के लिए संस्कृत के उद्धरण देते थे। शुद्ध हिंदी के पक्षधर होते हुए भी यथावश्यक अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी करते थे। उठाय, बैठाय जैसे लोकभाषा के प्रयोग भी उनके निबंधों में मिल जाते हैं। भट्ट जी ने अपने लेखन से हिंदी को गौरव दिलाया और दिखा दिया कि खड़ीबोली भी साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। श्रीनिवासदास ने उपन्यास लिखा। तोताराम ने विविध समाजोपयोगी सामग्री से हिंदी साहित्य के भंडार को भरा। भारतेंदु परिकर में पूर्व-पश्चिम दोनों ही क्षेत्रों के साहित्यकार थे, मथुरा के श्रीनिवासदास, अलीगढ़ के तोताराम, वृन्दावन के राधाचरण गोस्वामी, आदि पश्चिमी हिंदी-क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते थे तो गोपाल राम, बद्रीनारायण चौधरी, पं. प्रतापनारायण मिश्र आदि पूर्वी क्षेत्र का। उल्लेखनीय बात यह थी कि कोई भी लेखक किसी भी क्षेत्र का हो, उस क्षेत्र की बोली के प्रभाव से मुक्त होकर खड़ीबोली में रचना कर रहा था।

देवकीनंदन खत्री अपने उपन्यासों के माध्यम से हिंदी का प्रचार कर रहे थे। फ़ारसी के कठिन शब्दों के प्रयोग से अपने को बचाते हुए उपन्यास लिखने लगे।

लगभग सभी लेखक पत्रकार जगत से जुड़े हुए थे। आम आदमी की चिन्ता के कारण भाषा सहज व सरल अपनायी गई। भाषा का प्रचार-प्रसार उनका उद्देश्य तो नहीं था पर साहित्य के माध्यम से इसको प्राप्त किया। यह सब होते हुए भी खड़ीबोली पूरी तरह से ब्रजभाषा के प्रयोगों तथा पूर्वी हिंदी के प्रयोगों से मुक्त नहीं थी। अरबी-फ़ारसी की शब्दावली का यथावश्यक प्रयोग भी चलता रहा।

अंग्रेजी के आगत शब्द भी बढ़ते गये, जैसे - पालिसी, फीलिंग, लालटेन, गिलास आदि।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक खड़ीबोली साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई थी। इस शताब्दी के भाषिक स्वरूप पर सुप्रसिद्ध भाषाविद् डॉ. हरदेव बाहरी ने टिप्पणी करते हुए लिखा है

"उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध की भाषा-स्थिति का अवलोकन करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि भारतेंदु हरिशचंद्र और उनके युग के साथी खड़ी बोली की उन्नति के लिए बहुत सक्रिय थे और उन्होंने मौलिक कृतियों तथा अनुवाद द्वारा साहित्य को समृद्ध करने का भरसक प्रयत्न किया परंतु भाषा शैली परिमार्जित नहीं हो पाई थी। अत: सामान्य रूप से भाषा का गठन, शब्दावली प्रयोग, वर्तनी, व्याकरण तथा कथ्य की अव्यवस्था बनी रही। भारतेंदु भाषा नीति के संबंध में जागरूक अवश्य थे। उन्होंने राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा पद्धति में से एक बीच का मार्ग निकाला तो, परंतु प्राय: लेखकगण अपने-अपने ढंग से चलते रहे। ...काव्यभाषा में ब्रजभाषा का प्रयोग चलते रहने के कारण खड़ीबोली साहित्य की वेदी पर प्रतिष्ठित तो हुई परंतु एक आदर्श की स्थापना नहीं हो पाई।"

काव्यभाषा के रूप में शताब्दियों से ब्रजभाषा प्रतिष्ठित थी अतएव जल्दी से उसको हटाना संभव नहीं था पर प्रयत्न प्रारंभ हो गए जिनमें अयोध्या प्रसाद खत्री का प्रयास सराहनीय रहा। हिंदी-शिक्षण के लिए जो 'हिंदी मैन्युअल' तैयार हुए उनमें श्रीधर पाठक जी का नाम विशेष उल्लेखनीय इस दृष्टि से है कि उनकी रचनाओं को उसमे स्थान मिला।

गद्य के क्षेत्र में खड़ीबोली ने अपना स्थान बना लिया पर उसके स्वरूप को परिनिष्ठित बनाने का कार्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में किया। पद्य के क्षेत्र में खड़ीबोली ने अपना प्रवेश कर लिया पर पैर जमाने का श्रेय आचार्य द्विवेदी को है जिन्होंने सरस्वती के माध्यम से नाथूराम शंकर तथा मैथिलीशरण गुप्त को व्यापक रूप से स्थान दिया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रेमचन्द या प्रसाद आदि की रचनाओं ने भी सर्वप्रथम सरस्वती में स्थान पाया। हिंदी को प्रतिष्ठित करने में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा उस युग की पत्रिका 'सरस्वती' के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। दूसरी पत्रिका 'समालोचक' (सन् 1902) का विशिष्ट स्थान रहा। इसके पहले संपादक गोपालदास गहमरी थे। सन् 1903 में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने संपादन का कार्यभार सम्हाला।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में बाबू श्यामसुंदर दास के अथक प्रयासों से काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हो चुकी थी। नागरी प्रचारिणी सभा ने हिंदी शब्दकोश का कार्य प्रारंभ किया जो आगे चलकर 'हिंदी शब्द सागर' शीर्षक से प्रकाशित हुआ और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसकी भूमिका के रूप में 'हिंदी साहित्य का इतिहास' की रचना की।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध को संक्रमणकाल कहा जा सकता है। यह नई तथा पुरानी प्रवृत्तियों का संधिकाल है। सामाजिक चेतना उभरकर आयी जिससे देशभक्ति का स्वर उभरा यद्यपि राजभक्ति भी चलती रही। नाटक विधा का प्रारंभ हुआ और जनसंपर्क की सशक्त विधा पत्रकारिता का आविर्भाव हुआ। पत्रों के माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार प्रारंभ हुआ तो गद्य साहित्य में नई विधाओं का पदार्पण हुआ।

6.7 द्विवेदी युग

सन् 1900 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अनुमोदन से 'सरस्वती' मासिक का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जिसने युगान्तरकारी भाषा-चेतना उत्पन्न की। इसकी संपादन समिति में श्री कार्तिक प्रसाद खत्री, पं. किशोरी लाल गोस्वामी, बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर, बाबू राधाकृष्ण दास व बाबू श्यामसुंदर दास थे। इस पत्रिका का उद्देश्य था - "हिंदी रसिकों के मनोरंजन के साथ भाषा के सरस्वती भंडार की अंगपुष्टि, वृद्धि और पूर्ति।" पत्रिका में गद्य-पद्य नाटक, शिल्प, कला-कौशल, साहित्य ग्रंथों की समालोचना भी प्रकाशित होती थी।

साहित्य के नव-उत्थान के लिए इसका जन्म हुआ। साहित्य के इतर जीवन-चरित्र, प्रकृति वर्णन, यात्रा वर्णन, कवि-परिचय, फोटोग्राफी, ज्ञान-विज्ञान के नए विषय भी सम्मिलित थे। कुछ समय बाद ही आचार्य द्विवेदी ने इसका संपादन सम्हाल लिया और बड़ी निष्ठा से दो दशक तक इसका संपादन

किया। इसके माध्यम से हिंदी भाषा का परिष्कार किया और मानकता देने में भरसक लगे रहे। वह सामग्री का ऐसा संशोधन करते थे कि अधिकतर लोगों की समझ में भाषा आए। उनके कुछ आदर्श रहे। उन्होंने संकल्प किया था :

- वक्त की पाबंदी करूँगा।
- मालिकों का विश्वासपात्र बनने की चेष्टा करूँगा।
- अपने हानि-लाभ की परवाह न कर पाठकों के हानि-लाभ का सदा ध्यान रखूँगा।
- न्याय-पक्ष से कभी न विचलित हूँगा।

लोगों के साथ द्विवेदी जी की टिप्पणियाँ भी रहती थीं। भाषा परिष्कार के संबंध में उनका कथन था :

"यह न देखना कि यह शब्द अरबी का है या फारसी का या तुर्की का। देखना सिर्फ़ यह कि इस शब्द, वाक्य या लेख का आशय अधिकांश पाठक समझ लेंगे या नहीं। अल्पज्ञ होकर भी किसी पर विद्वता की झूठी छाप छापने की कोशिश मैंने कभी नहीं की।''

द्विवेदी जी स्वयं संस्कृत के विद्वान थे साथ ही भारतीय संस्कृति के पक्के समर्थक तथा स्वदेश-प्रेमी साहित्यकार थे। उन्होंने इस दृष्टि से कवियों को इस ओर मोड़ा जिसके फलस्वरूप भारतीय आदर्श स्थापित हुआ। मानव के आदर्श और यथार्थ दोनों रूपों का चित्रण पत्रिका में किया गया। मानव के आदर्श रूप को चित्रित करने के लिए कवियों को मोड़ा और राजा रवि वर्मा के चित्रों को प्रकाशित किया। ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ीबोली को स्थापित किया जिसके संबंध में पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी (कालांतर में 'सरस्वती' के संपादक भी रहे) थी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है।

"द्विवेदी जी ने सरस्वती के शक्तिशाली माध्यम से अनुयायियों की सहायता और समर्थन से अंत में ब्रजभाषा को साहित्य जगत से निकाल बाहर करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की और उनके बाद जो पीढ़ी आयी उसके संस्कार खड़ी बोली ही के थे।''

(आधुनिक हिंदी का आदिकाल, पृ. 236)

आचार्य द्विवेदी के समय ही जो ग्रीवज़ ने हिंदी साहित्य का इतिहास (रेखांकन-स्केच) लिखा उसमें उनके बाद में स्पष्ट शब्दों में लिखा :

"आचार्य द्विवेदी एक अध्यवसायी व्यक्ति हैं और संपादकीय लेखों में श्रम करने के अतिरिक्त उन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं। उनकी कुछ पुस्तकें मौलिक हैं कुछ संस्कृत और अंग्रेजी से अनूदित हैं। अनूदित पुस्तकों में मिल कृत 'स्वतंत्रता' और हर्बर्ट स्पेंसर कृत 'शिक्षा' उल्लेखनीय है।''

(पृ. 156)

इस युग का सम्यक् मूल्यांकन करते हुए डॉ. रामचंद्र तिवारी ने व्यक्त किया है :

"नयी जीवन दृष्टि ने नयी भाषा को माध्यम बनाया। खड़ीबोली पूर्णत: प्रतिनिष्ठित हुई। उसे पंडिताऊ और ठेठ गँवारूपन से मुक्त करके माँजा-सँवारा गया। साहित्य सृजन की मूल प्रेरणा, समाज-सुधार, चरित्र-निर्माण या व्यापक राष्ट्रीय हित होने के कारण इस काल की साहित्यिक कृतियों में कलात्मक निखार तो नहीं आया, किंतु सभी प्रकार की गद्य-विधाओं की विकास परंपरा का आरंभ अवश्य हो गया। साहित्य का स्वर क्रमश: गंभीर हुआ और उसमें दायित्व-बोध जागा। साहित्य को शिष्ट समाज में प्रवेश पाने योग्य समझा जाने लगा और सब मिलाकर हिंदी को व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।''

(हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 526)

सामान्यत: द्विवेदी काल सन् 1898 से 1918 ई. तक माना जाता है और इसको बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दो दशक कहा जा सकता हैं।

6.8 हिंदी के बढ़ते चरण

राजभाषा के रूप में हिंदी का प्रतिष्ठापन के बाद हिंदी के परिचय में वृद्धि हुई और उसके प्रकार्य बढ़ गए। साहित्यिक दृष्टि से अंतर्राष्ट्रीय संपर्क के कारण, नई-नई विधाओं और साहित्यिक धाराओं का प्रवर्तन हुआ जिससे हिंदी समुन्नत बनी। हम आगे इसकी विस्तार से चर्चा करेंगे।

6.8.1 साहित्यिक गतिविधियाँ

द्विवेदी काल के बाद साहित्यिक दृष्टि हिंदी भाषा का विभिन्न दिशाओं में जो विकास हुआ है उसके समक्ष विश्व की कुछ ही भाषाएँ ठहर सकती हैं। यही कारण है कि आज भारत में संप्रेषणीयता की दृष्टि से हिंदी सर्वोपरि है। साहित्यिक दृष्टि से द्विवेदी जी के सामने ही 'छायावाद' की धारा प्रवाहित हो गई थी जिसके तत्काल बाद प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नवलेखन में नयी कविता, गीत, अकविता से लेकर क्षणिकाएँ (हाइकू) लिखी जाने लगी हैं। आधुनिक काल में रचित कुछ उल्लेखनीय प्रबंध काव्य हैं :

'तक्षशिला' (उदयशंकर भट्ट), 'नूरजहाँ' (गुरु भक्त सिंह), 'सिद्धार्थ' (अनूप शर्मा), 'तुलसीदास' (निराला), 'हल्दीघाटी' (श्याम नारायण पांडेय), 'कृष्णायन' (द्वारिकाप्रसाद मिश्र), 'एकलव्य' (रामकुमार वर्मा), 'कुरुक्षेत्र' (दिनकर), 'जननायक' (रघुवीर शरण मित्र), 'पार्वती' (रामानंद तिवारी), 'नारी' (अतुलकृष्ण गोस्वामी), 'मीरा' (परमेश्वर द्विरेफ), 'उर्मिला (बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'), 'झांसी की रानी' (आनंद मिश्र), 'द्रौपदी' (नरेंद्र शर्मा), 'लोकायतन' (सुमित्रानंदन पंत), 'कनुप्रिया' (भारती), 'आत्मजयी' (कुँवरनारायण), 'संशय की एक रात' (नरेश मेहता)।

अज्ञेय ने जो 'तारसप्तक' का संपादन किया उसके बाद दूसरा, तीसरा तथा चाथा सप्तक प्रकाशित हुआ। गीत काव्य व नई कविता पर कई ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

गद्य में जहाँ उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी लिखे जा रहे हैं, वहीं गद्य की अनेक अन्य विधाओं का पर्याप्त विकास हो रहा है जिनमें प्रमुख हैं :

रिपोर्ताज, डायरी, साक्षात्कार (इंटरव्यू), ललित निबंध, आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, व्यंग्य विनोद, यात्रा-साहित्य, पत्र, फीचर, लघुकथा, नुक्कड़ नाटक, रेडिया-रूपक, ध्वनि नाट्य, सोप ओपेरा, वार्तालाप-बतकही, अचर्चा, टिप्पणी, पोस्टर, कोलाज आदि।

ज्ञान की विविध विधाओं में पर्याप्त साहित्य अब प्रकाशित हो रहा है। धार्मिक साहित्य का प्रकाशन तो उन्नीसवीं शताब्दी से ही प्रारंभ हो गया था जिसमें निरंतर प्रगति होती गई। प्रौढ़-शिक्षा तथा बाल-शिक्षा की दृष्टि से गत कुछ दशकों में इतना अधिक साहित्य प्रकाशित हुआ है जिसको सूचिबद्ध करने में भी कई ग्रंथ बन सकते हैं।

6.8.2 भाषा का विकास

बीसवीं शताब्दी में हिंदी भाषा का विकास सभी दृष्टियों से हुआ है। शताब्दी के प्रारंभ में नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ने 'शब्द सागर' की जो योजना बनायी वह तीसरे दशक में आठ खंडों में पूर्ण हुई। इसका संक्षिप्त संस्करण रामचंद्र वर्मा ने तैयार किया। उन्होंने ही 'मानक कोश' तैयार किय और बाद में हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से पाँच खंडों में बृहत् कोश भी तैयार किया। इस समय अनेक प्रकार के कोश डॉ. हरदेव बाहरी, डॉ. बदरीनाथ कपूर, डॉ. सुरेश अवस्थी आदि विद्वानों द्वारा तैयार किए गए, प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं। श्री अरविंद कुमार जी ने गहन परिश्रम से 'समानांतर कोश' तैयार किया जो नेशनल बुक ट्रस्ट से प्रकाशित है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग और विधि मंत्रालय द्वारा अनेक कोश प्रकाशित किए गए हैं। बैंकिंग एसोशिएशन ने भी बैंकिंग की दृष्टि से कोश प्रकाशित किया है।

सूचना क्रांति ने तो इक्कीसवीं शताब्दी में खटखटाया है पर हिंदी भाषा इस दिशा में निरंतर अग्रसर होती गई है। अनेक दिशाओं में से कुछ हैं:

- वेब डेवलमेंट, वेब मार्केटिंग की दृष्टि से सर्व प्रथम 'वेब दुनिया' आया।
- टाइपराइटर, टेलीप्रिंटर की दृष्टि से कई दशक पहले नागरी लिपि आगे आई पर अब तो 'फैक्स' पेजिंग व्यवस्था कंप्यूटर आदि सर्वत्र में हिंदी व नागरी लिपि है।
- आई.आई.टी., कानपुर द्वारा विकसित जिस्ट (GIST) का विकास सी-डैक, पुणे द्वारा किया गया है
- 'पाठ से वाचन' (Text to speech) का विकास द्रुत गति से हो रहा है।
- कंप्यूटर के लिए अनेक सॉफ्टवेयर तैयार हो गए हैं - फैक्ट, सुलिपि, आकृति, पी.सी. डॉस,

बैंक्स, श्रीलिपि, प्रकाशक, लीप आफ़िस, अक्षर आदि प्रमुख हैं। अब तो ऑफिस एक्सपी भी उपलब्ध है।

– हिंदी सीखने के लिए 'लीला प्रबोध', 'लीला प्रवीण' 'गुरु' जैसे अन्य कई प्रोग्राम उपलब्ध हैं।

– ई-मेल, इंटरनेट में सुविधाएँ उपलब्ध हैं। विस्तार के लिए पृथक् से अध्ययन करना होगा।

6.9 सारांश

इस इकाई में संक्षेप में खड़ीबोली हिंदी के आधुनिक विकास की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। वैसे तो खड़ीबोली के तत्व हिंदी भाषा के आदि काल से पुरानी हिंदी में प्रकट होते हैं जिनका विकास अमीर खुसरो, कबीर की भाषा में स्पष्टत: दिखाई देता है तथा दकनी में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं पर 'खड़ीबोली' नाम देने का श्रेय कलकत्ता स्थित फ़ोर्ट विलियम कॉलेज को जाता है। कॉलेज की भूमिका और 'खड़ीबोली' नाम पर विशेष रूप से सामग्री दी गयी है।

हिंदी के विकास में पत्र-पत्रिकाओं का विशेष योगदान रहा है जो आज भी चल रहा है। जब से सूचना प्रौद्योगिकी में संचार माध्यमों का महत्व बढ़ा है, हिंदी विश्व भाषा के रूप में उभर कर आ रही है। यही कारण है कि हिंदी की पत्रकारिता पर विस्तार से दिया जा रहा है।

भारतेंदु जी ने 'नए चाल की हिंदी' का उद्घोष किया जिसको मानक स्वरूप प्रदान करने का श्रेय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को है जिन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन में यह कौशल दिखाया। इस पर विस्तार से हमने इस इकाई के भाग 30.4 में चर्चा की है।

6.10 अभ्यास प्रश्न

1. 'खड़ी बोली' नामकरण के संबंध में विभिन्न मतों का उल्लेख करते हुए अपने विचार लिखिए।
2. खड़ीबोली के उन्नयन में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
3. खड़ीबोली के विकास में पत्र-पत्रिकाओं के योगदान पर संक्षिप्त निबंध लिखिए।
4. राजा शिवप्रसाद सिंह तथा राजा लक्ष्मण सिंह ने खड़ीबोली के विकास में भाषा के किस-किस रूप को महत्व दिया।
5. खड़ीबोली के विकास भारतेंदु युग के महत्व को प्रतिपादित कीजिए।
6. भारतेंदु की 'नए चाल की हिंदी' से क्या तात्पर्य है?
7. हिंदी के विकास में आचार्य द्विवेदी का महत्व किस दृष्टि से विशेष है? उनका योगदान स्पष्ट कीजिए।
8. हिंदी के विकास की विभिन्न दिशाओं को स्पष्ट कीजिए।

इकाई 7 हिंदी के बढ़ते चरण

इकाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 संविधान में हिंदी

- 7.3.1 राजभाषा हिंदी
- 7.3.2 हिंदी का प्रकार्यात्मक पक्ष : प्रयोजनमूलक हिंदी

7.4 हिंदी की भूमिकाएँ

- 7.4.1 राजभाषा और राष्ट्रभाषा; संपर्क का सूत्र
- 7.4.2 अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी

7.5 हिंदी भाषा का विकास

- 7.5.1 हिन्दी का आधुनिकीकरण
- 7.5.2 प्रौद्योगिकी और हिंदी

7.6 मानकीकरण का सवाल

7.7 सारांश

7.8 अभ्यास प्रश्न

परिशिष्ट : संविधान के उपबंध

7.1 उद्देश्य

इस इकाई में स्वतंत्रता के बाद हिंदी की स्थिति और प्रकार्यों की चर्चा की गई है। हिंदी एक विशाल देश की राजभाषा है, उसका अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप और महत्व है और वह देश की अन्य विकासशील भाषाओं के लिए अग्रणी और सहयोगी है। हम यह देखना चाहेंगे कि इन भूमिकाओं के निर्वाह के लिए क्या कदम उठाए जा रहे हैं और हिंदी का विकास किन दिशाओं में हो रहा है, इसका अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- राजभाषा की परिभाषा कर सकेंगे और राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रकार्य समझा सकेंगे;
- हिंदी की विविध भूमिकाओं की व्याख्या कर सकेंगे;
- प्रयोजनमूलक भाषा के संदर्भ में हिंदी के प्रकार्य बता सकेंगे;
- प्रौद्योगिकी के विकास के युग में हिंदी के विकास की स्थिति और समस्याओं की चर्चा कर सकेंगे; और
- हिंदी के मानकीकरण की आवश्यकता और अद्यतन प्रयासों की चर्चा कर सकेंगे।

7.2 प्रस्तावना

जिस तरह साहित्य के इतिहास में उत्थान के समय आते हैं और समय-समय पर गतिविधियों का तेज़ दौर आता है, उसी तरह भाषा के इतिहास में भी उत्थान और उन्मेष के क्षण आते हैं। यह अपने में रोचक तथ्य है कि एक स्थानीय बोली के रूप में प्रचलित खड़ीबोली आधुनिक युग में पूरे देश को गति देने वाली हिंदी भाषा बनी और अब अंतर्राष्ट्रीय महत्व की आधुनिक भाषा भी बनी

है। यही नहीं तकनीकी युग की इंटरनेट की भाषा के रूप में इसका वर्चस्व है।

पिछली इकाइयों में हम चर्चा कर चुके हैं कि किस तरह आदिकाल से ही मध्यदेश की भाषा के रूप में खड़ी बोली हिंदी का जन सामान्य के संपर्क के लिए उपयोग होता रहा है। केवल संयोग की बात है कि आधुनिक युग तक इसमें व्यापक स्तर पर साहित्य रचना नहीं हुई। आधुनिक युग में प्रवेश के साथ ही हिंदी भाषा पूरे हिंदी प्रदेश की साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। आधुनिक युग की परिस्थितियों के संदर्भ में हिंदी भाषा ने अपने प्रयोजनों का विस्तार किया। हिंदी साहित्यिक भाषा के साथ साथ पत्रकारिता की भाषा, जन संचार माध्यमों की भाषा और शिक्षण-प्रशिक्षण की भी भाषा बनी और उसका तेज़ी से विस्तार हुआ।

हम आगे इस इकाई में पढ़ेंगे कि किस तरह स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में हिंदी देश की अस्मिता की भाषा बनी और लोगों ने व्यापक जन संपर्क के लिए इस भाषा को चुना। हिंदी भाषा आधुनिक युग तक एक क्षेत्रीय भाषा थी जिसमें साहित्य की रचना हुई। मध्यदेश की भाषा होने के कारण यह देश में संपर्क भाषा भी बनी।

आधुनिक युग में देश में स्वतंत्रता का संग्राम छिड़ा तो सारा देश इस संग्राम में कूद पड़ा। पढ़े - लिखे लोग अंग्रेजी के माध्यम से एक दूसरे से जुड़ते थे। महात्मा गांधी ने अनुभव किया कि पूरे देश की जनता को इस संग्राम में शामिल करने के लिए देश की भाषा की आवश्यकता है। व्यापक जन संपर्क के लिए उन्होंने हिंदी भाषा को चुना, क्योंकि यह अधिकांश जनसंख्या की भाषा है और देश में सर्वत्र बोली-समझी जाती है। वे इस बात से भी अवगत थे कि हिंदी और उर्दू में अलगाव बढ़ रहा है। इस खाई को पाटने के लिए गांधी जी ने मिले जुले रूप हिंदुस्तानी को देश की राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता दी। उन्होंने देश में हिंदुस्तानी के व्यापक प्रचार की योजना बनाई और इसके अंतर्गत दक्षिण में हिंदी के प्रचार के लिए 1917 में दक्षिण भारत हिंदुस्तानी प्रचार सभा की स्थापना की। तब से लेकर अब तक देश के विभिन्न प्रदेशों में स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं की स्थापना हो चुकी है। इससे देश भर में हिंदी के व्यापक प्रचार को गति मिली।

1947 में देश स्वतंत्र हुआ और 1950 में गणतंत्र बना। भारत के संविधान ने हिंदी को संघ की राजभाषा घोषित किया। राजभाषा की भूमिका में हिंदी के सामने कई नये दायित्व उपस्थित हुए, कई नए कार्यक्षेत्र खुले। शिक्षा, प्रशासन, व्यापक जन संपर्क तथा जन संचार आदि क्षेत्रों में हिंदी के प्रयोग की संभावनाएँ बढ़ीं। लेकिन उस समय अंग्रेजी ही इन भूमिकाओं का निर्वाह कर रही थी। हिंदी में इन क्षेत्रों में काम करने के लिए तकनीकी और प्रक्रियात्मक साहित्य का अभाव था। एक आधुनिक युग की भाषा के रूप में हिंदी भाषा के विकास का सवाल उठा और सरकारी प्रयत्नों से विकास के कार्यान्वयन की योजनाएँ बनी। पिछले 50 वर्षों में हिंदी भाषा में अभूतपूर्व विकास हुआ है।

इस इकाई में हम पिछले 50 वर्षों में हिंदी भाषा की स्थिति, समस्याओं और संभावनाओं की चर्चा करेंगे।

7.3 संविधान में हिंदी

भारत के संविधान में भाषाओं के सवाल को जो महत्व दिया गया है, उसी से हम भाषा के बारे में चिंतन का अनुमान कर सकते हैं। 17 भागों में से एक (भाग 17) पूरा भाषा के लिए दिया गया है। कुल 395 अनुच्छेदों में से 11 भाषा के लिए हैं, जो लगभग 3% बनता है। 9 अनुसूचियों में से एक (अष्टम अनुसूची) भाषा के सवाल के लिए है। संविधान में भाषाओं के संदर्भ में जो चिंतन दिखायी पड़ता है, वह जनतांत्रिक है, राष्ट्रीय दृष्टि से संघीय प्रकृति का है।

भाषा के राष्ट्रीय संदर्भ में तीन शब्द सुनायी पड़ते हैं - राष्ट्रभाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा। प्राय: लोग इन तीनों संदर्भों में अंतर नहीं करते। कई लोग प्राय: हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा कहते हैं, जबकि यह शब्द भारत के संविधान में कहीं नहीं है। लेकिन यह शब्द अपने आप अस्तित्व में नहीं आया। महात्मा गांधी ने 1917 में ही भारत की राष्ट्रभाषा (National

Language) पर चर्चा में[1] हिंदी को ही इस पद के लिए उपयुक्त माना। उनके इस भाषा में राष्ट्रभाषा के पद के लिए पहली आवश्यकता सरकारी कर्मचारियों द्वारा सीखी जाने योग्य सरल भाषा की थी। अत: यह निश्चित है कि उन्होंने राजभाषा के संदर्भ में ही राष्ट्रभाषा की कल्पना की थी। लेकिन साथ ही स्वतंत्रता से पूर्व के हिंदी आंदोलन में राष्ट्रभाषा की संकल्पना राष्ट्र के एकीकरण की दृष्टि से, देशभक्ति के विकास के साधन के रूप में प्रस्तुत की गई। अब भी हम हिंदी के सवाल को मात्र केंद्र सरकार के कार्यालयों की राजकाज की भाषा के रूप में नहीं देखते हैं, बल्कि राष्ट्रीय एकता के सूत्र के रूप में देखते हैं। संपर्क भाषा और राजभाषा में भी विद्वान संबंध नहीं जोड़ पाते। कई तो राष्ट्रभाषा और संपर्क भाषा को एक ही मानते हैं।

हम इस इकाई में एक ओर इन तीनों शब्दों की सही व्याख्या की कोशिश करेंगे और संविधान में भाषा सवाल पर प्रस्तुत विचारों को भी संघीय दृष्टि से देखेंगे। संघ[2] शासन का यह तात्पर्य है कि कई समुदाय इस रूप में एकत्र हुए हों कि अपनी-अपनी अस्मिता सुरक्षित रखते हुए अपने स्वशासन और स्वायत्तता कायम रखते हुए भी एक बृहत राष्ट्र के घटक के रूप में कार्य करें, इसी दृष्टि से उन समस्त समुदायों के सह-अस्तित्व और पारस्परिक सहयोग के आधार पर मिलकर रहने की बात आती है। भाषा के प्रश्न पर भी इस संघीय प्रकृति का विशेष महत्व है, क्योंकि सारी भाषाएँ अपनी अपनी जगह उन्नति करें, कोई भाषा दूसरी भाषा की उन्नति में बाधा न बने और भाषा के प्रश्न पर कोई भी समुदाय प्रतिकूल स्थिति में न रहे। भाषिक सह-अस्तित्व तथा पारस्परिक सहयोग ही संघीय प्रकृति का परिचायक है।

गणतंत्र का तात्पर्य यह है कि संविधान के समक्ष देश का हर नागरिक न्याय (Justice), वैचारिक स्वतंत्रता (Liberty) तथा प्रतिष्ठा और अवसर की समता (Equality) की दृष्टि से समान है। भाषा के सवाल पर भी हर व्यक्ति के संदर्भ में गणतांत्रिक मूल्यों की सत्यता संविधान का लक्ष्य होना चाहिए। हम आगे भाषा के सवाल पर गणतांत्रिक मूल्य और राष्ट्र की संघीय प्रकृति की चर्चा करेंगे।

व्यक्ति के संदर्भ में : भाषा के संदर्भ में व्यक्ति स्वातंत्र्य का अनुच्छेद 350 में उल्लेख है। देश का कोई नागरिक संघ या राज्य के किसी भी पदाधिकारी को व्यथा के निवारण के लिए (नेमी पत्राचार के लिए नहीं, नियमित कार्यों के लिए नहीं) क्रमश: संघ या राज्य में प्रयुक्त (Used)[3] किसी भाषा में अभिवेदन दे सकता है। अर्थात नागरिक व्यक्तिगत व्यथा निवारण की स्थिति में देश की 750 भाषाओं में से किसी भी भाषा में संघ शासन के द्वारा खटखटा सकता है। अर्थात राजभाषा न जानने के कारण वह न्याय पाने के हक से वंचित रह जाए, ऐसी स्थिति नहीं है। 700 भाषाओं के देश में 70 करोड़ की आबादी वाले इस देश में हर व्यक्ति को मिला यह भाषा स्वातंत्र्य अद्भुत है, अतुलनीय है।

सामूहिक, नियमित कार्यों के संदर्भ में जन प्रतिनिधियों को क्रमश: संसद के सदन तथा विधान मंडलों में, स्वीकृत राजभाषाओं का ज्ञान न होने पर अपनी मातृभाषा में संबोधित करने की अनुज्ञा मिल सकती है। इस प्रकार संघ के तीनों अंगों में मातृभाषा के प्रयोग का हर नागरिक को अधिकार है।

इस अधिकार के संदर्भ में यह भी सुनिश्चित किया जाना होगा कि व्यक्तियों के वर्ग (अल्पसंख्यक) भाषा प्रयोग की विधिवत दीक्षा लें। अनुच्छेद 350 क में अल्पसंख्यकों को अपनी मातृभाषा में शिक्षा की सुविधा का प्रावधान है। इस अनुच्छेद के अनुसार अल्पसंख्यकों के हित रक्षा न होने की स्थिति में राष्ट्रपति संबंधित राज्य सरकारों को निदेश दे सकते हैं जिससे सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित हो सके।

भाषाओं के संदर्भ में संघीय दृष्टिकोण प्रादेशिक भाषाओं से संबंधित अध्याय के तीन अनुच्छेदों (345-7) में स्पष्ट है। जहाँ तक हिंदी भाषा का सवाल है; वह संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए स्वीकृत भाषा है और किसी भी प्रदेश के लिए हिंदी में कार्य करने का बंधन नहीं है।

---

1 द्वितीय गुजरात शिक्षा अधिवेशन का अध्यक्ष भाषा, 20, 10, 1917 बडौच, गुजरात।

2 संविधान में संघ Union के अर्थ में प्रयुक्त और Federal नहीं। लेकिन यहाँ "संघ", "संघीय" आदि शब्दों को हम वैचारिक दृष्टि से Federal आदि के अर्थ में ले रहे हैं।

3 [illegible] सकता है। लेकिन सीमित करने के स्पष्ट उल्लेख के अभाव में सारी भाषाओं से ही [illegible]

अतः यह मत कि हिंदी अन्य प्रदेशों पर थोपी जा रही है, गलत है। तमिलनाडु की यह माँग कि संविधान में परिवर्तन किया जाए, अनावश्यक है, क्योंकि संविधान में तमिलनाडु या किसी अन्य सरकार के लिए हिंदी में कार्य करने का बंधन नहीं है और प्रदेश जब तक चाहें उन्हें अंग्रेजी में कार्य करते रहने की छूट है। अतः संविधान में इस समय ऐसा कुछ नहीं है जो प्रदेशों की स्वायत्तता के विरुद्ध जाए। हाँ, तमिलनाडु सरकार को हिंदी के बढ़ते प्रयोग से ज़रूर तकलीफ़ हो रही है। लेकिन इस संदर्भ में अंग्रेजी के पल्ले को पकड़े रहना असलियत को झुठलाना है, शतुर्मुर्गीय वृत्ति है।

अनुच्छेद 345 में राज्यों के लिए राजभाषा के रूप में राज्य में प्रयुक्त किसी एक या अनेक भाषाओं को या हिंदी को राजकीय प्रयोजनों में से तब या किसी के लिए अंगीकार करने का प्रावधान है। और जब तक अन्यथा उपबंध न किया जाए, अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता रहेगा। इस तरह राज्य आवश्यकतानुसार एकाधिक भाषाओं को राजभाषा की मान्यता दे सकते हैं। अनुच्छेद 347 में अल्पसंख्यक वर्गों या जनसमुदाय की हित रक्षा का भी ध्यान रखा गया है। इस अनुच्छेद में निदेश का अधिकार राष्ट्रपति को है जिससे निर्णय स्थानीय संघर्षों से, वैचारिक संकुचितता से परे हो। राष्ट्रपति निदेश दे सकते हैं कि ऐसी भाषा को उस राज्य में सर्वत्र अथवा उसके किसी भाग में विशिष्ट प्रयोजनों के लिए राजकीय मान्यता दी जाए। उल्लेखनीय है कि यहाँ राजभाषा का दर्जा नहीं कहा गया है, बल्कि राजकीय मान्यता कहा गया है। यह शब्द उक्त भाषा के प्रयोजन को कार्य तथा भौगोलिक सीमा में बांधता है। यह सामान्य शब्दों में प्रयोक्ता के संदर्भ में इन भाषाओं को राजभाषा का ही प्रकार्य दिया गया है। इस उपबंध के कारण किसी राज्य में रहने वाले भाषिक समुदाय (जैसे सीमावर्ती जिलों में रहने वाले द्विभाषिक समुदाय) राज्य की राजभाषा के अलावा अपनी-अपनी भाषाओं में भी कार्य कर सकते हैं। भारत बहुभाषी देश है, हर प्रदेश में अन्य भाषाएँ बोलने वाले पर्याप्त संख्या में रहते हैं। भारत में कोई प्रदेश पूर्णतः एकभाषिक नहीं है। इस दृष्टि से प्रदेशों में भाषा प्रयोग की स्थिति में जो लचीलापन और उदारता का भाव दृष्टिगोचर होता है, वह सच में संघीय प्रकृति का है।

भारतीय संविधान में हिंदी के संदर्भ में जो उपबंध है, उन्हें आप इकाई के परिशिष्ट में देखेंगे। इस व्याख्या को पढ़ने के बाद आप उन उपबंधों को समझकर उनकी चर्चा कर सकेंगे।

7.3.1 राजभाषा हिन्दी

राजभाषा संबंधी संवैधानिक उपबंध : ब्रिटेन के औपनिवेशिक शासनकाल के दौरान शासन का काम-काज अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से होता था। इस प्रकार तब अंग्रेज़ी, भारत की राजभाषा थी। किंतु, आजादी मिलने के बाद देश की शासन-व्यवस्था का समस्त कार्य देश की भाषा में ही करना अनुभव किया गया। फलस्वरूप संविधान में राजभाषा संबंधी व्यवस्था करके देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी भाषा को अंग्रेज़ी के स्थान पर राजभाषा के रूप में अपनाया गया। संविधान के कुल 395 अनुच्छेदों में से 11 अनुच्छेदों का संबंध भाषा से है। भारत के संविधान के कुल 18 भागों में से एक पूरा भाग (भाग 17) भाषा संबंधी व्यवस्था के लिए दिया गया। संविधान के अनुच्छेद 343 से 351 में राजभाषा संबंधी उपबंध (व्यवस्था) दिए गए हैं। इनमें से कुछ प्रमुख अनुच्छेदों को इस इकाई के अंत में दिया गया है।

हालाँकि संविधान में संघ शासन के संदर्भ में केवल राजभाषा हिंदी की बात की गई, किंतु देश की बहुभाषिकता की स्थिति और देश में विद्यमान अन्य भाषाओं के महत्व को स्वीकार करते हुए संविधान निर्माताओं ने हिंदी सहित देश की 14 प्रमुख भाषाओं को संविधान की आठवीं अनुसूची में मान्यता प्रदान की। बाद में सिंधी, मणिपुरी, नेपाली और कोंकणी को भी इस सूची में शामिल कर लिया गया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 18 प्रमुख भाषाओं को संविधान में मान्यता प्रदान की गई। ये भाषाएँ हैं :

1.	असमिया	7.	तमिल	13.	संस्कृत
2.	उड़िया	8.	तेलुगु	14.	सिंधी
3.	उर्दू	9.	पंजाबी	15.	मणिपुरी
4.	कन्नड़	10.	बंगला	16.	नेपाली
5.	कश्मीरी	11.	मराठी	17.	कोंकणी
6.	गुजराती	12.	मलयालयम	18.	हिंदी

भारतीय संविधान के लागू होने के साथ-साथ हिंदी को सरकारी काम-काज की भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया। किंतु हिंदी का प्रयोग एकदम शुरू करना संभव नहीं था। चूँकि समस्त प्रशासनिक कार्यविधि साहित्य अंग्रेज़ी में था, सभी कानून अंग्रेज़ी में थे। शासकीय स्तर पर एकदम भाषा परिवर्तित करने पर होने वाली असुविधा को अनुभूत करते हुए संविधान के लागू होने के प्रारंभ से लेकर अगले पंद्रह वर्षों तक के लिए संघ के उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग जारी रखने की व्यवस्था की गई जिनके लिए उसका ऐसे प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था। साथ ही, संसद को यह अधिकारी दिया गया कि वह पंद्रह वर्ष की अवधि के बाद भी किन्हीं प्रयोजनों के लिए अंग्रेज़ी का प्रयोग जारी रखने की व्यवस्था कानून के माध्यम से कर सकती है। इस व्यवस्था का यह तात्पर्य था कि राजभाषा के रूप में हिंदी क्रमिक दायित्व ग्रहण करें और अंग्रेज़ी के यथावश्यकता बने रहने का प्रावधान रहे।

संविधान के अनुच्छेद 344 के अनुसार राजभाषा के कार्यान्वयन हेतु राजभाषा आयोग गठित करने की व्यवस्था की गई, जिसमें संविधान की आठवीं अनुसची में उल्लिखित भाषाओं के प्रतिनिधि हों। आयोग की सिफ़ारिशों पर विचार करने के लिए एक संसदीय समिति बनायी गयी और समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन पर विचार के उपरांत राष्ट्रपति द्वारा कार्यान्वयन के निर्देश देकर राजभाषा हिंदी के क्रमिक विकास पर बल दिया गया। इस संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार कार्यवाई करते हुए विभिन्न प्रयास किए गए, राजभाषा आयोग और संसदीय समिति का गठन किया गया, वर्ष 1960 में राष्ट्रपति का आदेश जारी किया गया। इन प्रयासों में भाषा नीति की तीन प्रमुख बातें स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आईं :

1. 1965 के बाद भी अंग्रेज़ी का प्रयोग आवश्यकतानुसार जारी रखा जाएगा।
2. हिंदी को क्रमिक तथा योजनाबद्ध तरीके से अपनाया जाएगा, इसके लिए भाषा विकास के आवश्यक कदम उठाए जाएंगे।
3. हिंदी के साथ-साथ देश की अन्य भाषाओं को भी राजभाषा के रूप में विकसित करने की सलाह दी थी।

राजभाषा अधिनियम, 1963 (1967 में संशोधित रूप में) : संविधान के उपबंधों के अनुसार 1965 तक अंग्रेज़ी को राजभाषा का दर्जा और उसके बाद राजभाषा की नीति निर्धारण की व्यवस्था की गई थी। 1963 में संसद में राजभाषा अधिनियम पारित हुआ, जिसके विरोध में तमिलनाडु में व्यापक विरोध हुआ। इस विरोध के कारण राजभाषा अधिनियम को 1967 में संशोधित किया गया। इस अधिनियम से पंद्रह वर्ष की अवधि के पश्चात अंग्रेज़ी को सह-राजभाषा (Associate Official Language) का दर्जा प्राप्त हुआ। अर्थात् हिंदी देश की राजभाषा और अंग्रेज़ी सह-राजभाषा। राजभाषा अधिनियम में आम जनता के संपर्क के विविध संदर्भों में द्विभाषिक रूप में कार्य करना स्वीकार किया गया। अधिनियम की धारा 3 में संकल्पों, साधारण आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं, प्रशासनिक अथवा अन्य प्रतिवेदनों, प्रेस विज्ञप्तियों, अनुज्ञप्तियों, अनुज्ञा-पत्रों, सूचनाओं और निविदा प्रारूपों आदि कुछ निश्चित प्रकार के कागज़ातों को अंग्रेज़ी और हिंदी, द्विभाषी रूप में प्रकाशित करने की व्यव्स्था की गई। पत्रादि लेखन के संदर्भ में जहाँ सदैव द्विभाषिक रूप से कार्य कर पाना संभव नहीं इस बात की व्यवस्था की गई कि स्थिति-विशेष में किस भाषा का अथवा दोनों भाषाओं का प्रयोग किया जाए। अधिनियम में यह भी व्यवस्था की गई कि जो व्यक्ति जिस भाषा में दक्ष हो, वह उस भाषा में काम करता जाए। यह उल्लेख किया गया कि जब तक सभी राज्यों के विधान मंडल यह संकल्प न पारित कर लें कि वे धारा 3 में उल्लिखित प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त न कर दें तब तक अंग्रेज़ी इन प्रयोजनों के लिए व्यवहार में लाई जाती रहेगी। राजभाषा अधिनियम में अंग्रेज़ी और हिंदी राजभाषाओं के प्रकार्यों की स्थिति को स्पष्ट किया गया है, वहीं इसके संदर्भ में की जाने वाली कार्रवाई की देख-रेख के लिए और हिंदी के प्रयोग में की गई प्रगति कें आकलन के लिए एक राजभाषा संसदीय समिति के गठन का भी उल्लेख किया गया। साथ ही, अधिनियम के कार्यान्वयन के लिए केंद्र सरकार को आवश्यक कदम उठाने का दायित्व सौंपा गया। तदनुसार केंद्र सरकार के गृह मंत्रालय में राजभाषा विभाग कार्यरत हैं, जो राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन की देख-रेख का काम करता है। राजभाषा विभाग ने राजभाषा अधिनियम के आधार पर घोषित नियमों का अध्ययन किया और संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए राजभाषा के प्रयोग के

संबंध में 1976 में नियम बनाए। राजभाषा अधिनियम की मूल भावना यह रही कि (क) व्यक्ति को भाषिक स्वतंत्रता दी जाए और भाषा के कारण किसी का अहित न हो; और (ख) लेकिन व्यक्ति की सुविधा अथवा रुचि के कारण भाषा की नीति प्रभावित न हो। सरकार का यह दायित्व है कि वह उपबंधों के कार्यान्वयन की व्यवस्था करें।

राजभाषा नियम, 1976 : राजभाषा के व्यवहार के बारे में सूचनाएँ, व्यक्तियों एव पदाधिकारियों द्वारा इन नियमों के अनुपालन करने के बारे में पता चलता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, संविधान के कार्यान्वयन की व्यवस्था करने के लिए राजभाषा अधिनियम 1963 के आधार पर भारत सरकार के गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग ने 1976 में नियम घोषित किए। इन नियमों में राजभाषा अधिनियम की मूल भावना को सुरक्षित रखा गया। केंद्र सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैनुअलों, संहिताओं और प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, लेखन सामग्री आदि को द्विभाषी (हिंदी-अंग्रेज़ी) रूप में मुद्रित/प्रकाशित करने का नियम बनाया गया। वहीं, पत्रादि की भाषा के संदर्भ में भी नियम बनाए गए। शासकीय काम-काज में पत्रादि का विशेष स्थान है। यह पत्राचार केंद्र सरकार के कार्यालयों के बीच, केंद्र और राज्य सरकार के बीच, राज्य सरकारों के बीच; और केंद्र सरकार एवं व्यक्ति के बीच हो सककता है। इस तरह की विभिन्न भाषिक-स्थितियों में पत्राचार की भाषा को राजभाषा संबंधी नियम के संदर्भ में देखने के लिए राजभाषा नियम 1976 में सुझाव दिया गया। इसके लिए पूरे देश को तीन क्षेत्रों - 'क', 'ख' और 'ग' - में बाँटा गया। क्षेत्र 'क' के अंतर्गत बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश एवं दिल्ली हिंदी-भाषा क्षेत्र को; क्षेत्र 'ख' के अंतर्गत गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, अंडमान-निकोबार द्वीप समूह एवं चंडीगढ़ को; एंव देश के अन्य भागों को क्षेत्र 'ग' में शामिल किया गया। तदनुसार पत्राचार की भाषा संबंधी नियम निश्चित किए गए। इस मूल भावना को बनाए रखा गया कि क्षेत्र-वार विभिन्न स्थितियों में किस एक भाषा या दोनों भाषाओं का प्रयोग किया जाए। राजभाषा अधिनियम में उल्लिखित अन्य निर्देशों को भी राजभाषा नियम में प्रशिक्षण आदि विभिन्न स्थितियों के संदर्भ में जहाँ स्पष्ट किया गया है वहीं साथ ही उनके अनुपालन का उत्तरदायित्व भी निर्धारित किया गया।

संविधान के उपबंध, राजभाषा अधिनियम और राजभाषा नियम के संबंध में विस्तृत अध्ययन के लिए आप कृपया हमारे स्नातक उपाधि कार्यक्रम के हिंदी से संबंधित ऐच्छिक पाठ्यक्रम -06 'हिंदी भाषा : इतिहास का वर्तमान' (ई.एच.ई. -06) देखें।

राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन की दिशाएँ :

हिंदी के कार्यान्वयन की ज़िम्मेदारी प्रमुखत: गृह मंत्रालय पर है। गृह मंत्रालय में पहले राजभाषा के लिए अलग विभाग नहीं था, बल्कि गृह मंत्रालय के साथ जुड़े हुए हिंदी सलाहकार इस कार्य को देखते थे। 1976 में राजभाषा विभाग की स्थापना की गई और इसका प्रमुख राजभाषा सचिव है। राजभाषा विभाग भारत सरकार में राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन की व्यवस्था और देखरेख करता है।

हिंदी के कार्यान्वयन की व्यवस्था के संदर्भ में हम तीन प्रकार की समितियों का उल्लेख करेंगे जो विभिन्न स्तरों पर कार्यान्वयन की देखरेख कर रही है।

i) **केंद्रीय हिंदी समिति** : यह राजभाषा के कार्यान्वयन के लिए सबसे बड़ा अभिकरण है, इसका गठन 1967 में किया गया था। भारत के प्रधान मंत्री इस समिति के अध्यक्ष है और प्रमुख मंत्रालयों के मंत्रियों तथा संसद सदस्यों के अतिरिक्त हिंदी के कुछ वरिष्ठ विद्वान इसके सदस्य होते हैं। यह समिति देश के हिंदी के कार्यान्वयन के संदर्भ में महत्वपूर्ण समस्याओं पर विचार करती है और नीति निर्धारण करती है।

ii) **हिंदी सलाहकार समिति** : प्राय: सभी मंत्रालयों में राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन हेतु मंत्रालय स्तर की हिंदी सलाहकार समितियों का गठन किया गया है। संबंधित मंत्री इस समिति के अध्यक्ष होते हैं। मंत्रालय के विभागों के अध्यक्ष तथ संबंधित निकायों, कार्यालयों के शासी प्रधान इसके सदस्य होते हैं, साथ ही कुछ संसद सदस्य और हिंदी के विशिष्ट विद्वान इसके नामित सदस्य होते हैं। इस समिति का काम संबंधित मंत्रालय में हिंदी के कार्यान्वयन की प्रगति को देखना और विकास के उपाय सझाना है।

iii) **राजभाषा कार्यान्वयन समिति** : मंत्रालयों तथा इसके अधीन कार्य करने वाले कार्यालयों, स्वायत्त संस्थाओं तथा भारत सरकार द्वारा स्थापित उपक्रमों में हिंदी के कार्यान्वयन के लिए राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया गया है। मंत्रालय की समिति का अध्यक्ष संयुक्त सचिव होता है, अन्य कार्यालयों में कोई वरिष्ठ अधिकारी मुख्य राजभाषा अधिकारी की हैसियत से इस कार्य को देखता है। हर कार्यालय में जो हिंदी प्रकोष्ठ है, प्राय: मुख्य राजभाषा अधिकारी की देखरेख में काम करता है।

अगर किसी शहर में कई कार्यालय हों, तो उन सभी कार्यालय की कार्यान्वयन समितियों का एक सामूहिक संगठन होता है, जिसे **नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति** कहते हैं। उस नगर का सबसे वरिष्ठ पदाधिकारी इस समिति का अध्यक्ष होता है। यह समिति सभी कार्यालयों की प्रगति के आकलन के साथ-साथ समस्याओं के समाधान के भी उपाय ढूँढ़ती है।

प्रगति संबंधी सूचना का आकलन और निरीक्षण : भारत सरकार के हर कार्यालय के प्रधान का यह दायित्व है कि वह कार्यालय में राजभाषा संबंधी नियम के अनुपालन तथा हिंदी में कार्य करने की प्रगति संबंधी विवरण हर तीन माह में राजभाषा विभाग को भेजे। इसे त्रैमासिक विवरण कहा जाता है। यह विवरण तैयार करने के लिए राजभाषा विभाग द्वारा जाँच बिंदुओं की एक सूची जारी की गई है कि कितने पत्र हिंदी या द्विभाषिक रूप से प्राप्त-जाँच बिन्दुओं में दिया गया है। हिंदी प्रकोष्ठ संबंधित जानकारी एकत्र करता है और विभागध्यक्ष को प्रस्तुत करता है। अपने स्तर पर विभागाध्यक्ष सुधारात्मक उपाय कर सकते हैं और स्थिति में सुधार ला सकते हैं। राजभाषा विभाग इन रिपोर्टों का अध्ययन करता है और उनके आकलन और विश्लेषण के आधार पर संसद के पटल पर अद्यतन प्रगति की रिपोर्ट प्रस्तुत करता है।

हमने देखा कि संविधान में एक संसदीय समिति की सिफ़ारिश की गई थी जो राजभाषा आयोग के सुझावों पर विचार करे। हमने यह भी देखा कि 1960 के राष्ट्रपति के आदेश में संसदीय समिति को प्रगति के निरीक्षण हेतु मान्यता दी गई। वर्तमान स्थिति भी यही है कि 30 सदस्यों की एक *संसदीय राजभाषा समिति* है जो देश में राजभाषा के क्षेत्र में विभिन्न कार्यालयों की स्थिति का अध्ययन करती है और अपनी रिपोर्ट संसद को प्रस्तुत करती है। कुल मिलाकर इन सब निकायों के कारण राजभाषा संबंधी आदेशों के अनुपालन की स्थिति को देखा जा सकता है और समस्याओं के समाधान के उपरांत कार्य को सही दिशा में आगे बढ़ाया जा सकता है।

राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन का एक दूसरा पहलू अनुवाद है। भारत सरकार के नेमी प्रशासनिक साहित्य (मैनुअल, संहिताएँ आदि) के अनुवाद की ज़रूरत पड़ सकती है जिससे राजभाषा अधिनियम नियम 8 के अनुसार कर्मचारियों को हिंदी भाषा में साहित्य उपलब्ध कराया जा सके। इसके लिए केंद्रीय अनुवाद ब्यूरों नामक संस्था व्यवस्था करती है। ब्यूरो की स्थापना मार्च, 1971 में गृह मंत्रालय के अधीन हुई, उससे पहले अनुवाद का कार्य केंद्रीय हिंदी निदेशालय के अधीन था। ब्यूरो न केवल अनुवाद करता है बल्कि हिंदी स्टाफ को अनुवाद में प्रशिक्षण भी देता है।

कर्मचारियों के संदर्भ में हिंदी के लिए शिक्षण प्रशिक्षण की व्यवस्था : राजभाषा के प्रयोग को बढ़ाने के लिए न केवल साहित्य चाहिए बल्कि कार्य करने वाले व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने की भी आवश्यकता है। इस प्रशिक्षण के संदर्भ में गृह मंत्रालय के अधीन 'हिंदी शिक्षण योजना' नामक निकाय काम करता है, जो सरकारी अधिकारियों के लिए प्राज्ञ नामक परीक्षा चलाता है। सरकारी कार्यालयों से अपेक्षा की जाती है कि वे हिंदी के कार्यसाधक ज्ञान न रखने वाले व्यक्तियों को इस योजना के तहत प्रशिक्षण के लिए भेजें और उन्हें कार्यसाधक ज्ञान दिलाएँ।

गृह मंत्रालय के अतिरिक्त केंद्रीय हिंदी निदेशालय सरकारी अधिकारियों के लिए प्रबोध, प्रवीण और प्राज्ञ के लिए पाठ्यक्रम पत्राचार द्वारा आयोजित करता है।

हिंदी शिक्षण योजना का एक दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है - टंककों और आशुलिपिकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना। देश के विभिन्न नगरों में कार्यरत अंग्रेज़ी के टंकक और आशुलिपिक, इन पाठ्यक्रमों में हिंदी में टंकण और आशुलिपि का प्रशिक्षण ले सकते हैं। इस योजना के अंतर्गत प्रशिक्षित व्यक्तियों को दोनों भाषाओं में काम करने के लिए अतिरिक्त वेतन आदि की भी सुविधा है।

हिंदी में कार्य करने के लिए प्रशिक्षण के लिए केंद्रीय राजभाषा प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना 1984 में की गई। इस संस्थान द्वारा हिंदी में अधिकारी को तैयार करने के लिए विभिन्न स्तरों पर सेवा पूर्व या सेवा के मध्य प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है। जो लोग सेवा से पूर्व ही हिंदी में प्रशिक्षित हो जाते हैं उनके लिए बाद में हिंदी में दक्षता के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है लेकिन लोग हिंदी में काम कर कार्यशालाओं में हिंदी में का करने का प्रशिक्षण देता हैं। प्रशिक्षण के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह कार्य अब भी सकारात्मक ढंग से प्रोत्साहन आदि के माध्यम से किया जाता है और किसी व्यक्ति को काम न करने की स्थिति में दंडित नहीं किया जाता। परीक्षा पास करने पर नकद पुरस्कार दिया जाता है, हिंदी में पर्याप्त रूप में काम करने पर लोगों को प्रोत्साहित करने के लिए पुरस्कार आदि दिए जाते हैं, जो विभाग हिंदी में काम करते हैं, उनको शील्ड आदि देकर सम्मानित किया जाता है।

सरकारी कार्यालयों द्वार विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहनों के अतिरिक्त हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य विभिन्न स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा भी किया जा रहा है। इस संबंध में राजभाषा आदेश में यह उल्लेख है कि प्रचार के कार्य में जो स्वैच्छिक संस्थाएँ काम कर रही हैं उनको बढ़ावा दिया जाए, आर्थिक अनुदान दिया जाए और उनके सहयोग से प्रचार के कार्य के लिए स्वैच्छिक संस्थाओं का सहयोग लेती है। असम राजभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी हिंदी विद्यापीठ, उड़ीसा राष्ट्र भाषा परिषद्, गुजरात विद्यापीठ (अहमदाबाद), दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा (चेन्नै), बंबई हिंदी विद्यापीठ महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा (पुणे), मणिपुर हिंदी परिषद् (इंफाल), राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा), सौराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति (राजकोट), हिन्दुस्तानी प्रचार सभा (बंबई), हिंदी प्रचार सभा (हैदराबाद), हिंदी विद्यापीठ (देवघर), हिंदी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग), कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति (बंगलूर) कर्नाटक हिंदी प्रचार समिति (बंगलूर), केरल हिंदी प्रचार सभा (तिरुअनंतपुरम) और केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद् (दिल्ली) आदि विभिन्न स्वैच्छिक संस्थाएँ हिंदी के प्रचार-प्रसार के कार्य में अपना सक्रिय योगदान दे रही हैं।

7.3.2 हिंदी का प्रकार्यात्मक पक्ष : प्रयोजनमूलक हिंदी

भाषा समाज में संप्रेषण का माध्यम है। आधुनिक जीवन के कई क्षेत्रों में भाषा के माध्यम से संप्रेषण होता है, जैसे कार्यालयों में, विज्ञान के क्षेत्र में। यह युग की माँग है। इन क्षेत्रों में भाषा के इस्तेमाल के लिए योजना बनाना, व्यवहार के लिए भाषा को विकसित करना, व्यक्तियों में व्यवहार की योग्यता पैदा करना - ये प्रयोजनमूलक भाषा के आयाम हैं। इस तरह प्रयोजन मूलक भाषा व्यवसाय से जुड़ती है, समाज की आवश्यकताओं से जुड़ती है। सामान्यत: साहित्यकपरक भाषा का अध्ययन व्यक्ति सापेक्ष है, वैयक्तिक अनुभूति के लिए है; प्रयोजनमूलक भाषा सामाजिक प्रयोजनों से जुड़ता है; समाज सापेक्ष है। इसके लिए पूरे देश के संदर्भ में भाषा नियोजन करना पड़ता है। साहित्यिक भाषा का विकास प्रयासों से। साहित्य की भाषा में हर विचलन (जो संप्रेषित करे) और समस्त पर्याय स्वीकार्य हैं, उनपर पाबंदी नहीं; प्रयोजनमूलक भाषा विपरीत होती है।

भाषा के तीन प्रमुख सामाजिक प्रयोगों के संदर्भ में भाषा के प्रकार्य को निम्नलिखित आरेख द्वारा दिखा सकते हैं-

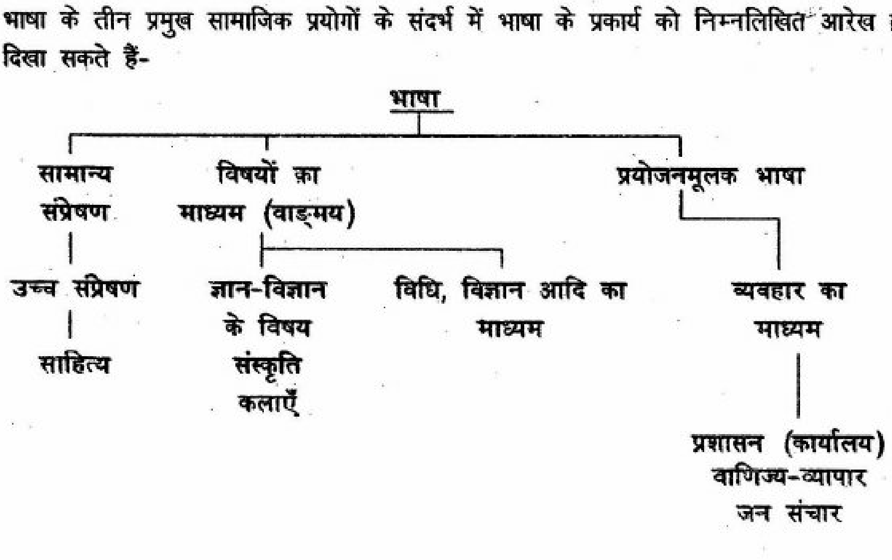

प्रयोजनमूलक हिंदी की चर्चा के साथ-साथ हम प्रयुक्ति या रजिस्टर की संकल्पना को देखते हैं। प्रयुक्ति किसी सामाजिक संदर्भ में प्रयुक्त भाषा के प्रकार का नाम है। समाज के स्तर भेदों में प्रयुक्त भाषा सामाजिक प्रयुक्ति है, जैसे मित्र के साथ भाषा, बाज़ार में भाषा आदि। प्रयोजनमूलक प्रयुक्ति भाषा के उस रूप को स्पष्ट करता है जो किसी विषय क्षेत्र में प्रयुक्त हो। (यहाँ हमें बोली और प्रयुक्ति में अंतर करना होगा – बोली वर्गगत है, जबकि प्रयुक्ति व्यक्तिगत। प्रयुक्ति बोली के भीतर है)। प्रयोजनमूलक प्रयुक्ति का क्षेत्र वैज्ञानिक विश्लेषण और वर्णन का है। प्रयोजनपरक प्रयुक्ति एक सुनिश्चित भाषिक रूप है, एक समुदाय का व्यवहृत रूप है।

एक तरफ प्रयोजनमूलक भाषा के स्वरूप, शब्दावली तथा वाक्य रचना का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। फिर प्रयोजनमूलक भाषा के शिक्षण की योजना होती है। प्रयोजनमूलक शिक्षण आधुनिक युग की देन है।

प्रयुक्ति का भाषिक स्वरूप – प्रयुक्ति की वाक्य संरचना का अपना स्वरूप होता है। नयी रचना से अधिक प्रयोजनों के लिए किन्हीं पुरानी रचनाओं पर बल (कार्यालय हिंदी में वाच्य)। पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग के साथ शाब्दिक सहप्रयोग भी महत्वपूर्ण हैं (मुझे यह कहने का निदेश.......)। आवश्यकतानुसार नये शब्दों और प्रयोगों की सृष्टि होती है। भाषा की मूल प्रकृति से संगति, स्पष्टता आदि के संदर्भ में विकास किया जाना चाहिए।

हैलिडे प्रयुक्तियों को तीन आधारों पर देखते हैं-

वार्ता क्षेत्र	–	सामान्य	तकनीकी
वार्ता प्रकार	–	मौखिक	लिखित
वार्ता शैली	–	अनौपचारिक	औपचारिक

प्रयोजनमूलक प्रयुक्तियाँ तकनीकी, लिखित और औपचारिक होती हैं।

प्रयोजनमूलक भाषा के संदर्भ में भाषा प्रयोग के संदर्भों को पहचानना और तदनुरूप प्रशिक्षण का आयोजन करना आवश्यक होगा। हर पेशे में भाषा की आवश्यकता पड़ती है - किसी में एक कौशल, दूसरे में अन्य कोई कौशल। तदनुरूप व्यवस्था होनी चाहिए। अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के क्षेत्र (कोशकला, अनुवाद विज्ञान) भी प्रयोजनमूलक सामग्री और प्रशिक्षण में मदद देते हैं। केंद्रीय स्तर पर प्रपत्र, मुहर, पत्र शीर्ष आदि का प्रयोग, शब्दावली का निर्माण आदि कार्य होने चाहिए। इस तरह प्रयोजनमूलक भाषा के प्रसार में भाषा विस्तार तथा भाषा मानकीकरण की बातें जुड़ती हैं। आधुनिक युग के ये प्रयोजन सार्वभौम हैं। अतः इस क्षेत्र में बहुभाषिकता की समस्याएँ सामने आती हैं और किसी स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली आदि बातें उठती हैं।

पहले सामान्य भाषा पढ़ाने के बाद सभी लोगों को नियुक्ति के बाद प्रयोजन के पक्षों में प्रशिक्षित करना युक्तिसंगत नहीं। शिक्षा पद्धति में ही प्रयोजनमूलक पक्ष कहीं जुड़ना चाहिए। फिर सेवारत व्यक्तियों के लिए प्रशिक्षण की अन्य व्यवस्थाएँ होनी चाहिए। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि दिल्ली, इग्नू, हैदराबाद, पुणे आदि विश्वविद्यालयों में प्रयोजनमूलक पाठ्यक्रम शामिल किये गये हैं।

7.4 हिंदी की भूमिकाएँ

हिंदी एक जन समुदाय की भाषा है। हर जन समुदाय की भाषा के साथ कई भूमिकाएँ जुड़ती है। वह सामान्य संप्रेषण के साथ-साथ साहित्यिक भाषा बनती है, धर्म की भाषा बनती हैं। इन्हीं प्रकार्यों को हम भाषा की भूमिकाएँ (roles) कहते हैं। इस संदर्भ में हिंदी की कुछ विशिष्ट भूमिकाएँ हैं। देश की बहुसंख्यक तथा प्रमुख भाषा होने के नाते वह संपर्क भाषा की भूमिका का निर्वाह करती है। इसी संपर्क की भूमिका के संदर्भ में उसे राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया जाता है। राष्ट्रीय स्तर पर इस संपर्क को प्रशासन, शिक्षा, वाणिज्य-व्यापार आदि क्षेत्रों में औपचारिक स्वीकृति देने पर वह राजभाषा कहलाती है। राजभाषा के संदर्भ में ही हम प्रयोजनमूलक हिंदी की प्रमुख भूमिकाओं की चर्चा करेंगे और इन भूमिकाओं के विकासक्रम का अवलोकन करेंगे।

7.4.1 राजभाषा और राष्ट्रभाषा : संपर्क का सूत्र

इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि इस देश को सांस्कृतिक और भाषिक स्तर पर जोड़ने का महत्वपूर्ण दायित्व संस्कृत भाषा पर था जिसे उसने लगभग तीन हजार वर्षों तक निभाया। संस्कृत की पुत्री कही जाने वाली मध्य देश की भाषा 'हिंदी' ने आधुनिक युग में यह दायित्व अपने ऊँपर ले लिया। विरासत में मिला यह दायित्व हिंदी का ऐसा प्रयोजनपरक प्रकार्य है जो उसपर थोपा नहीं गया है और जिसकी आवश्यकता सभी ने महसूस की है। आज से लगभग दो सौ वर्ष पहले राजा राममोहन राय ने बंगाल से यह घोषणा की थी कि हिंदी में ही अखिल भारतीय भाषा बनने की क्षमता है। तब से आज तक देश के विभिन्न प्रांतों में अबाध गति से हिंदी की प्रांजल धारा प्रवाहित हो रही है - किसी ने इसको चुनौती नहीं दी है। बंगाल में ब्रज बुलि में साहित्य लिखना प्रारंभ हुआ तो दक्षिण में स्वाति तिरुनाल ने ब्रजभाषा में कविता की रचना की। उन्नीसवीं शताब्दी में आंध्र प्रदेश में पुरुषोत्तम कवि ने खड़ी बोली हिंदी में कई नाटकों का प्रणयन किया और उनका सफलतापूर्वक मंचन किया। आजादी की लड़ाई के साथ-साथ स्वराज्य की संकल्पना में हिंदी भाषा अपने आप एक महत्वपूर्ण उपादान बनकर सामने आई। उस समय लगभग सभी ने सोचा कि भारत को एक राष्ट्र के रूप में देखना है तो उस स्वप्न को साकार करने में राष्ट्रभाषा हिंदी की एक अहम भूमिका है। इस संदर्भ में महात्मा गांधी कहते हैं "अगर हिंदुस्तान को सचमुच एक राष्ट्र बनाना है, तो चाहे कोई माने या न माने, राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही हो सकती है क्योंकि जो स्थान हिंदी को प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषा को कभी नहीं मिल सकता।''

1947 में स्वतंत्रता के बाद एक समस्या हमारे सामने मुँह बाए खड़ी थी। उस समय यह कल्पना थी कि जब अंग्रेज देश छोड़कर चले जाएँगे तो उनके साथ अंग्रेजी की महत्ता और अनिवार्यता भी चली जाएगी। उस स्थिति में इस देश में शासन के कार्य के लिए उपयुक्त भाषा की आवश्यकता होगी। वह हिंदी ही होगी। संविधान के निर्माताओं ने एकमत होकर नागरी लिपि में लिखी हिंदी भाषा को देश की राजभाषा घोषित किया और कल्पना की कि गणतंत्र बनने के 15 वर्षों में हिंदी भाषा समस्त देश के शासन तंत्र के समस्त कार्यों की भाषा होगी और इसी प्रकार्य को उन्होंने राजभाषा कहा। हम भाषा से सबंधित कई मंचों पर लोगों का यह निराशावादी स्वर सुन सकते हैं कि हिंदी को राष्ट्रभाषा की जगह राजभाषा का दर्जा क्यों दिया गया है? शायद उन विद्वानों की राय में यह हिंदी की गरिमा की दृष्टि से कुछ निम्न स्तर का दर्जा है। आज भी लोग यही कहना पसंद करते हैं हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा है। शायद उनके अनुसार हिंदी का राजभाषा होना उसकी दूसरे दर्जे की मान्यता है। यह प्रश्न अपने आप में हमको कहीं आंदोलित करता है। क्या हमने हिंदी भाषा को उसके महत्तम स्थान से घटाकर कहीं निम्न दर्जे का स्थान तो नहीं दे दिया है? क्या कारण है कि हम हिंदी को राष्ट्रभाषा नहीं कह पाते?

इस चिंतन के पीछे मूल्य का एक प्रश्न जुड़ा हुआ है। जब हम राजभाषा की बात करते हैं तो हमारे सामने शासन तंत्र के सारे पत्राचार और टिप्पण-आलेखन की एक कृत्रिम भाषा का रूप आता है। अक्सर यह भी कहा जाता है कि यह भाषा अनुवाद की भाषा है और अपने स्वाभाविक ओज और अपनी साहित्यिक गरिमा से हटा हुआ कृत्रिम-सा रूप ही इसका स्वरूप है। यही कारण है कि लोग इस भाषा के लिए 'राजभाषा' नामकरण से प्रसन्न नहीं होते। इस संदर्भ में यह बहुत आवश्यक है कि हम राजभाषा और राष्ट्रभाषा की संकल्पनः से परिचित हों और इन दोनों के पारस्परिक सबंध में इन भाषा-रूपों की वास्तविकता को पहचानें। इस प्रयत्न में सबसे पहले 'संपर्क भाषा' की संकल्पना को समझ लेना आवश्यक होगा।

संस्कृत भाषा वास्तव में इस पूरे उपमहाद्वीप को जोड़ने वाली भाषा थी - भले ही उस समय आधुनिक संदर्भ में राष्ट्र की संकल्पना नहीं थी और देश अलग-अलग राज्यों में बँटा हुआ था। फिर भी समस्त देश में एक सांस्कृतिक अंतर्धारा बह रही थी जिसका माध्यम पहले संस्कृत भाषा थी और धीरे-धीरे वह अंतर्धारा आधुनिक भाषाओं के माध्यम से प्रवाहित होने लगी थी। यही अंतर्धारा भारतवासियों के मन में भारत को एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में देखने में सहायक रही। देश के लोगों के लिए बद्रीनाथ और रामेश्वर या द्वारिका और पुरी देश के चार कोने नहीं थे, बल्कि इस अखंड धारा के चार महत्वपूर्ण स्तंभ थे। यही बात हम साहित्य जगत में भी देखते हैं। आधुनिक युग तक सारी भारतीय भाषाओं के साहित्य का स्वर एक जैसा मुखर था और उसमें कोई विलगता या दिशांतरता नहीं थी। आधुनिक युग में हिंदी भाषा ने इसी अविच्छिन्न धारा को अपने में

समाहित किया। भारत के किसी कोने से किसी दूसरे कोने में जाने वाले व्यक्ति स्वभावतः हिंदी भाषा का प्रयोग करने लगते। फिल्मों ने भी हिंदी भाषा के माध्यम से ही अखिल भारतीयता का दर्जा प्राप्त किया। जो भी राजनेता देश की समस्त जनता को संबोधित करना चाहते हैं वे हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं क्योंकि यही सर्वसाधारण की आम भाषा है। इसी संदर्भ में हम 'सम्पर्क भाषा' शब्द का उल्लेख करते हैं। वास्तव में 'संपर्क भाषा' शब्द का तात्पर्य राष्ट्रभाषा हिंदी की सांस्कृतिक-साहित्यिक धरातल पर एकता स्थापित करने के प्रकार्य से है। इस बात को तमिलनाडु में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही प्रसिद्ध कवि सुब्रहमण्यम भारती यों व्यक्त करते हैं - 'राष्ट्र की एकता को यदि बनाकर रखा जा सकता है तो उसका माध्यम हिंदी ही हो सकती है।' इसलिए राष्ट्रभाषा और सम्पर्क भाषा दो भिन्न संकल्पनाएँ नहीं हैं, बल्कि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं या एक ही बात को स्पष्ट करने के दो पर्याय हैं।

सम्पर्क भाषा के अर्थ को भी कई लोग बड़े सीमित अर्थ में लेकर चलते हैं क्योंकि वे यह मानकर चलते हैं कि इसका स्वरूप विभिन्न प्रांतों के बाज़ारों और रेलगाड़ियों में परस्पर संपर्क की खिचड़ी भाषा है। सम्पर्क भाषा का इतना सीमित अर्थ नहीं लिया जा सकता क्योंकि सम्पर्क मात्र आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बाज़ारों और यातायात के साधनों तक सीमित नहीं है। सांस्कृतिक और साहित्यिक स्तर पर भी देश की जनता को एक मंच पर लाने की आवश्यकता होती है और यह भाषायी सम्पर्क की उच्चतम स्थिति है।

संविधान की धारा 351 में यह कहा गया है कि हिंदी देश की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बनेगी। सामासिक संस्कृति से हमारा तात्पर्य किसी अनमेल खिचड़ी से नहीं है जिसमें हम कृत्रिम रूप से विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों को लेकर कोई एक पंचमेल सांस्कृतिक धारा निर्मित करें। इसका तात्पर्य यही है कि हिंदी के माध्यम से लोग विविध सांस्कृतिक परंपराओं का ज्ञान प्राप्त करें। यह बात इसी तरह भाषा पर भी लागू होती है। जब हम यह बात कहते हैं कि हिंदी भाषा विभिन्न भारतीय भाषाओं की संस्कृति को अभिव्यक्ति करने के लिए उन भाषाओं से शब्द ग्रहण करेगी तो हम यहाँ एक कृत्रिम भाषा के निर्माण की बात नहीं कर रहे हैं। इस धारा का तात्पर्य यह है कि हिंदी समस्त भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम होगी यानी हिंदी के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों का ज्ञान देश के सभी भागों के लोगों को उपलब्ध होगा। इस अर्थ में हिंदी भारतीय संस्कृति के विभिन्न तत्वों का ऐसा कोषागार बनेगी जिससे देश के लोग एक-दूसरे को इस भाषा के माध्यम से समझ सकेंगे। इस अभिव्यक्ति में स्वभावतः उन-उन भाषाओं के विशिष्ट सांस्कृतिक शब्द हिंदी में आएँगे ही और वे हिंदी का अपना अंग भी बनेंगे। जिस तरह से अंग्रेजी भाषा ने विश्व की भाषाओं से विशिष्ट क्षेत्रों की सटीक अभिव्यक्ति के लिए शब्द ग्रहण किए, उसी प्रकार हिंदी भाषा भी भारत के संदर्भ में यह काम करेगी। संविधान में हिंदी को यह जो दायित्व सौंपा गया है, वह वास्तव में हिंदी की राष्ट्रभाषा की भूमिका का द्योतक है। इस धारा में राष्ट्रभाषा शब्द का भले ही उल्लेख न हो, लेकिन राष्ट्रभाषा के जिस स्वरूप की हम परिकल्पना करते हैं, वह इस धारा द्वारा परिलक्षित है। इस तरह संविधान में वैचारिक धरातल पर राजभाषा और राष्ट्रभाषा दोनों को समाविष्ट किया गया है।

सम्पर्क भाषा का एक दूसरा रूप भी है जिसको हम राजभाषा के संदर्भ में व्याख्यायित कर सकते हैं। अभी हमने चर्चा की थी कि राजभाषा का कार्य केवल कार्यालय की आंतरिक प्रशासनिक व्यवस्था और पत्राचार तक सीमित नहीं है। राजभाषा को हमें एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। राष्ट्रभाषा के संदर्भ में हमने अभी जिस सम्पर्क की चर्चा की है वह अनौपचारिक सम्पर्क है और उस सम्पर्क का निर्माण और संचालन सारा राष्ट्र करता है। इस प्रकार के सम्पर्क के लिए किसी औपचारिक संगठन की आवश्यकता नहीं है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि राष्ट्र ही राष्ट्रभाषा की सृष्टि करता है और उसका स्वरूप निश्चित करता है। सम्पर्क भाषा का दूसरा क्षेत्र है औपचारिक सम्पर्क। इस बात की आवश्यकता तब पड़ती है जब हम देश के शासन के संदर्भ में प्रदेशों को एक-दूसरे से जोड़ने की कोशिश करते हैं। उदाहरण के तौर पर तमिलनाडु या पश्चिम बंगाल में छोटी अदालतों में हुई कार्रवाई के संदर्भ में अपील उच्च और उच्चतम न्यायालयों में की जाए तो यह कार्रवाई किस भाषा के माध्यम से होगी? यह तो कल्पना नहीं कर सकते कि उच्चतम न्यायालय में सारे वकील अपनी-अपनी भाषा में बहस करें और कोई एक-दूसरे को समझ न सके। सम्पर्क की आवश्यकता की यह बात संघ-शासन के तीनों अंगों पर लागू होती है और कार्यांग यानी प्रशासन उनमें से एक क्षेत्र है। विधानांग और न्यायांग में

विभिन्न भाषा-भाषी मिलकर देश के समस्त कार्यों के लिए कानून बनाते हैं और उनका परिपालन करते हैं। ये कानून मात्र फौजी मामलों के न्याय के नियम नहीं है बल्कि ये देश के सभी क्षेत्रों से सबंधित मामले हैं। कार्यांग में भी हिंदी भाषा का प्रयोग सिर्फ आंतरिक प्रशासन तक सीमित नहीं है। मंत्रालयों के समस्त कार्यों के विस्तार पर नजर डालें तो हम पाएँगें कि कृषि से लेकर अंतरिक्ष विज्ञान तक और सेना से लेकर नाभिकीय विज्ञान तक हर ज्ञान-विज्ञान का क्षेत्र मंत्रालयों के कार्यों की परिधि में आ जाता है। इन क्षेत्रों में कार्य करने वाली संस्थाओं में देश के शीर्षस्थ विद्वान और वैज्ञानिक शामिल हैं और उनका चिंतन भी देश के विकास को दिशा देता है। इस दृष्टि से राजभाषा का दायरा बहुत विशाल है और इसमें वाङ्मय यानी ज्ञान-विज्ञान के समस्त क्षेत्र आ जाते हैं। राजभाषा के कार्यान्वयन का वास्तविक अर्थ यही है कि हम देश में हिंदी भाषा के माध्यम से और राज्यों में स्थानीय राजभाषाओं के माध्यम से चिंतन के स्तर पर हिंदी और अन्य भाषाओं के उपयोग के लिए व्यक्तियों को तैयार करें और इसके लिए आवश्यक शैक्षिक और प्रशिक्षण के उपादान जुटाएँ। ये समस्त क्षेत्र पहले बताए अनुसार औपचारिक क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में काम करने के लिए हमें आवश्यक सामग्री जुटानी पड़ती है, कोशों तथा ग्रंथों का निर्माण करना होता है, शोध के माध्यम से भाषा की अभिव्यक्ति को सशक्त करना होता है और सरकार को इस पूरे कार्य के लिए समयबद्ध योजना बनाकर उसे कार्यान्वित करना होता है।

'सम्पर्क' शब्द के हमने दो अर्थ लिए - पहले अर्थ में हिंदी अनौपचारिक सम्पर्क की भाषा है। यह आम जनता की भाषा है और यही राष्ट्रभाषा है। इस राष्ट्रभाषा में देश की समस्त संस्कृति और साहित्यक संपदा का समाहार होगा। इसे जनता अपने प्रयत्नों द्वारा निर्मित करेगी। इस कार्य में यथोचित सहयोग और अनुदान सरकार का भी हो सकता है, लेकिन अगर जनता अपने कार्य को गति दे तो राष्ट्रभाषा के विकास में हमारे लिए सरकार का मुखापेक्षी होना आवश्यक नहीं है। सम्पर्क भाषा का दूसरा तात्पर्य औपचारिक सम्पर्क से है, संघ शासन के तीनों अंगों के समस्त कार्यकलापों का माध्यम बनने से है। इस भाषा के विकास और कार्यान्वयन का दायित्व निश्चित रूप से सरकार पर होगा। औपचारिक सम्पर्क भाषा के रूप में जब भाषा का विकास होगा तो उसमें न केवल पूरे देश के ज्ञान-विज्ञान के साहित्य का (जिसे हम वाङ्मय कहते हैं) प्रतिबिंबन होगा, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी ज्ञान-विज्ञान के विकास में जो आधुनिकतम चिंतन और शोध-कार्य हो रहा है उसे भी हम राजभाषा के माध्यम से जनता तक पहुँचा सकेंगे।

जो लोग राष्ट्रभाषा को महत्व देते हैं, उनसे हम थोड़ा सहमत हो सकते हैं। राजभाषा का मूल उत्स, उसका ऊर्जा-स्रोत राष्ट्रभाषा ही है। हम राष्ट्रभाषा को सुदृढ़ नहीं करेंगे, तो राजभाषा कमज़ोर बनकर रह जाएगी।

समग्र रूप से यह कहना चाहेंगे कि हिंदी भाषा के सामने एक बड़ा दायित्व यह है कि वह देश की भाषाओं में ही नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध समस्त ज्ञान-विज्ञान के साहित्य और साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों को अन्य भाषा के लोगों तक पहुँचाने का सफल माध्यम बने। इस लक्ष्य की प्राप्ति उसके इन दोनों रूपों से ही संभव होगी, जिन्हें हम राजभाषा और राष्ट्रभाषा कहते हैं। राष्ट्रभाषा और राजभाषा की संकल्पना में उच्च या निम्न स्तर की बात नहीं है। वे संकल्पनाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं और दोनों से ही भाषा की पूर्णता सिद्ध होती है।

7.4.2 अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी

हिंदी भारत की राजभाषा है, सामान्य जनसंपर्क की भाषा है, देश की एकता का सूत्र है। अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में इसकी क्या भूमिका है? क्या यह एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा है? हमारे सामने जो तथ्य हैं, वे यह स्पष्ट करते हैं कि विश्व स्तर पर इसकी एक महत्वपूर्ण भूमिका है।

भारत के बाहर 10 देशों में यह बोली और समझी जाती है। ये देश हैं- मॉरिशस, फ़िजी, सूरिनाम, गयाना, टुबैगो-ट्रिनिडाड, नेपाल, पाकिस्तान, हॉलैंड, दक्षिण अफ़्रीका और सिंगापुर। इनके अलावा विश्व के तीन प्रमुख देशों में काफी संख्या में भारतीय मूल के निवासी बसते हैं। ये देश हैं - इंग्लैंड, अमेरिका और कनाडा। इन देशों के भारतीय निवासी आपस में मिलते हैं तो बहुधा सांस्कृतिक स्तर पर बातचीत के लिए हिंदी को ही माध्यम के रूप में अपनाते हैं।

शैक्षिक स्तर पर हिंदी भाषा के अध्ययन अध्यापन की स्थिति भी इतनी ही संतोषप्रद है। भारत के बाहर लगभग 160 विश्वविद्यालयों या संस्थाओं में हिंदी भाषा के अध्यापन की व्यवस्था है। कुछ नाम जानना चाहेंगे? एक है दक्षिण अमेरिका में क्यूबा का हवाना विश्वविद्यालय और दूसरा है मंगोलिया में उलन बात्र का विश्वविद्यालय। क्या आवश्यकता पड़ी कि फिनलैंड, पोलैंड आदि सुदूर देश भी अपने यहाँ हिंदी के अध्ययन की व्यवस्था करें? क्या यह प्रच्छन्न स्वीकृति नहीं है कि भारत को समझने के लिए उसकी प्रमुख भाषा हिंदी को समझना आवश्यक है। वे अवश्य मानते हैं कि हिंदी के माध्यम से इस देश से सांस्कृतिक सबंध जोड़े जा सकते हैं। इसी प्रकार मॉरिशस, फिजी, सूरिनाम तथा अन्य देशों के प्रवासी भारतीय भी अपनी मूल संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए इस भाषा को सुरक्षित रखना चाहते हैं।

कई भारतीयों के मन में यह प्रश्न उठता है कि हिंदी विश्व की प्रमुख भाषाओं में एक है और इसके बोलने वालों की बड़ी संख्या है, फिर भी यह अभी संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा क्यों नहीं बन पायी है? उत्तर देने से पहले हम कुछ जुड़े हुए सवालों पर भी दृष्टि डालना चाहेंगे, कुछ विषम स्थितियों की चर्चा करना चाहेंगें। मॉरिशस आदि देशों में जहाँ बहुसंख्यक प्रवासी भारतीय हैं, उच्च शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं है, इसलिए उच्च स्तर पर हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की भी व्यवस्था नहीं है। इसलिए चाहते हुए भी वहाँ के लोग हिंदी साहित्य के सृजन में अधिक योगदान नहीं कर पाते। मॉरिशस के अभिमन्यु अनत, सोमदत्त बखोरी, रामेश्वर ओरी, फिजी के कमला प्रसाद मिश्र, योगेंद्र सिंह कंवल कुछ प्रमुख लेखक हैं। अनत के काव्य का एक नमूना देखिए :

> तुम्हारी रक्तरंजित चक्की। मुझे पीसते-पीसते
> एक दिन एकाएक मेरी हड्डियों से टकराएँगी।
>
> और फिर! जिस तरह हलवा खाते हुए
> किसी बूढ़े का आखिरी दाँत टूटता है
> उसी तरह तुम्हारी चक्की भी टुकड़ों में छितर जाएगी।
>
> तुम्हें तो नहीं, पर लोगों को हैरानी होगी
> पत्थर की धमनियों से बहते खून को देखकर।

ऐसे कुछ प्रतिष्ठित लेखकों को छोड़कर यहाँ की साहित्य रचना का स्तर सामान्य है, उसकी मात्रा अपर्याप्त। इसी तरह पत्र-पत्रिकाएँ भी अपना विशिष्ट स्थान नहीं बना पायी हैं। अभी तक हिंदी यहाँ की सिर्फ सांस्कृतिक भाषा है, साहित्यिक या प्रयोजनमूलक भाषा नहीं।

जहां तक अमेरिका कनाडा आदि उन्नत देशों का सवाल है, तकनीकी विकास और संचार साधनों की उपलब्धि के कारण वहाँ के हिंदी के कार्यकर्ता अधिक सक्रिय हैं, अधिक अच्छे कार्यक्रम प्रस्तुत कर पाते हैं। लंदन के रेडियो पर फोन के जरिए श्रोताओं से जो प्रश्नोत्तर कार्यक्रम प्रस्तुत होता है, वह तो भारत में भी नहीं है। अमेरिका के टेलीविजन पर भारतीयों के लिए पेश किए जाने वाले कार्यक्रमों का स्तर देखकर विस्मय होता है। लेकिन इन देशों में भी हिंदी के उच्च अध्ययन के उचित अवसर नहीं हैं।

सवाल है, दोनों प्रकार के देशों के प्रवासी भारतीयों की सांस्कृतिक अस्मिता को सुरक्षित रखने का, हिंदी की सृजनात्मक प्रतिभा को गति देने और इसके विकास को दिशा देने का, विचार और चिंतन की भाषा के रूप में हिंदी को अपनाने का। स्थिति अनुकूल है, कार्यान्वयन की आवश्यकता है। अगर इन देशों में भी हिंदी एक आधुनिक भाषा के रूप में विकसित हो, तो संयुक्त राष्ट्र संघ में उसके प्रवेश में विलंब नहीं होगा।

मॉरिशस में 1976 में आयोजित द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन में तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री विद्याचरण शुक्ल ने कहा था "विश्व में भारत की शक्ति और प्रतिष्ठा जिस गति से बढ़ेगी उसी के साथ उसे अपनी भाषा के माध्यम से अपना व्यक्तित्व प्रकट करना भी उतना आवश्यक होगा।" हम भारतीय होने का गर्व करें तो हिंदी भाषा का मान भी अपने आप बढ़ेगा। इससे हिंदी स्वयमेव अंतर्राष्ट्रीय भाषा का रूप धारण करेगी।

7.5 हिंदी भाषा विकास

यूँ तो सामान्य भाषा में 'विकास' शब्द development, growth आदि का अर्थ देते हैं पेड़ बढ़ता है तो हम उसे भी विकास कह सकते हैं। भाषा के संदर्भ में 'विकास' एक परिभाषिक शब्द है, जहाँ भाषा को आवश्यकतानुसार विधिवत् विकसित करने की योजना बनाकर उस पर अमल किया जाता है। इस विकास की दिशा निश्चित करने के लिए कोई नीति होनी चाहिए, जो देश की आवश्यकताओं के लिए भाषिक विकास का निर्देश दें। नीति से योजना बनती है जो विकास के प्रयत्नों का समाकलन करे।

भाषा नीति	भाषा नियोजन	भाषा विकास
(Language policy)	(Language Policy)	(Language development)

विकास योजना की आवश्यकता क्यों पड़ती है ? बदलती हुई परिस्थितियों में भाषा के विभिन्न प्रकार्यों के संदर्भ में नई आवश्यकताओं की पूर्ति करना आवश्यक है। अन्यथा भाषा वह प्रकार्य संपन्न नहीं कर पाएगी। उदाहरण के तौर पर राजभाषा हिंदी के संदर्भ में अनुवाद की अहम् भूमिका है। लेकिन अगर हम पर्याप्त संख्या में अनुवादकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था न करें, तो इस प्रकार्य की पूर्ति नहीं हो पाएगी। योजनाबद्ध रूप से यह काम यही भाषा विकास का लक्ष्य है।

भाषा विकास के अंतर्गत दो प्रमुख गतिविधियाँ हैं। आधुनिक प्रयोजनों के लिए भाषा को तैयार करना आधुनिकीकरण कहलाता हैं जैसे, कंप्यूटर में प्रयोग के लिए हिंदी में Font तैयार करना आधुनिकीकरण का उदाहरण है इन क्षेत्रों में भाषा के उपयोग के लिए उसमें व्यवस्था सुनिश्चित करना मानकीकरण कहलाता है। उदाहरण के लिए, जब हिंदी में टंकण मंत्र बने, तो टंकण मशीन में उपलब्ध सीमित कुंजियों के कारण हिंदी के संयुक्त व्यंजनों को सरलीकृत करना पड़ा। ह्य, ह्य, ह्, ह् से लिखे जाने लगे। इस तरह मानकीकरण आधुनिकीकरण और उससे जुड़े यांत्रिकीकरण का परिणाम है।

भाषा का प्रयोजन विस्तार यथार्थ से जुड़ा हुआ है। समाज (इस संदर्भ में राष्ट्र) निश्चित योजना द्वारा विविध आवश्यक प्रयोगों या प्रयुक्ति (कोड) का विस्तार करती है। कोड विस्तार की यह प्रक्रिया आधुनिकीकरण कहलाती है। इस प्रक्रिया द्वारा निर्मित प्रयोगों (कोड) का प्रारंभिक चयन समाज ही करता है। भाषा उन रूपों के उचित प्रयोगों को यंत्र की सुविधा, सरलीकरण की प्रक्रिया आदि कारणों से निश्चित रूप से अपनाती है। यह मानकीकरण की प्रक्रिया है। इसे हम निम्नलिखित आरेख में देख सकते हैं।

	प्रकार्य	रूप
समाज (राष्ट्र)	स्वीकृति	चयन
भाषा	कोड विस्तार (आधुनिकीकरण)	कोडीकरण (मानकीकरण)

7.5.1 हिंदी का आधुनिकीकरण

ऊपर की चर्चा के संदर्भ में कह सकते हैं कि विभिन्न प्रकार्यों के लिए भाषा में संगत सामग्री का निर्माण ही आधुनिकीकरण कहलाएगा। उदाहरण के तौर पर कार्यालयों और शिक्षा संस्थाओं में सुचारु रूप से काम करने के लिए हमें कंप्यूटर साफट्वेयर की आवश्यकता होगी। इस तरह आधुनिकीकरण से सह-व्यापार के रूप में यांत्रिकीकरण जुड़ता है।

आधुनिकीकरण के दो प्रमुख क्षेत्रों की यहाँ हम चर्चा करना चाहेंगे, क्योंकि इन क्षेत्रों में हिंदी की भूमिका पहले नगण्य ही थी।

राजभाषा

सबसे पहला क्षेत्र राज भाषा का है। हिंदी भाषा का प्रयोग प्रशासन और विधि में हो रहा है। इसके लिए आवश्यक है कि हिंदी में प्रशासनिक साहित्य और विधि का साहित्य उपलब्ध हो। तभी हिंदी के माध्यम से सहजता और सुगमता से काम हो सकता है। अंग्रेज़ी में प्रशासनिक साहित्य और विधि साहित्य विपुल मात्रा में उपलब्ध है। 1947 से पहले तत्कालीन 'इंडियन' सरकार के सारे अधिनियम, नियम-अधिनियम आदि अंग्रेज़ी में बने थे। आज तक प्रशासन के कई नियम कानून पहले के ही लागू हैं। इन नियमों को हिंदी में लाने की आवश्यकता सामने आयी तो स्वभावत: आसान तरीका यही था कि अंग्रेज़ी से हिंदी में इनका अनुवाद किया जाए। भारत सरकार ने केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो की स्थापना इसी उद्देश्य से की। यह ब्यूरो विभिन्न कई मंत्रालयों/सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के लिए प्रशासनिक साहित्य का हिंदी में अनुवाद करता है। मंत्रालयों में जो हिंदी अधिकारी आदि नियुक्त हैं, वे दैनंदिन कार्यों में पत्राचार, टिप्पणी आदि का अनुवाद करते हैं। स्थायी प्रकृति की नियमावलियाँ, मैनुअल आदि का अनुवाद ब्यूरो ही करता है। भारत सरकार ने यह भी प्रावधान किया है कि आगे से जो प्रशासनिक साहित्य बनाया जाएगा, वह एक साथ हिंदी और अंग्रेज़ी में तैयार होगा। और यह समस्त साहित्य द्विभाषी रूप में छपेगा, जिससे उपभोक्ता दोनों में किसी भाषा में संदर्भ ढूँढ़ सकें। ब्यूरो हर साल लगभग 30 हज़ार मानक पृष्ठों की प्रशासनिक और तकनीकी सामग्री का अनुवाद संबद्ध मंत्रालयों/विभागों तक पहुँचाता है।

विधि साहित्य अधिक तकनीकी है, विशिष्ट प्रकार का है। इस कारण सरकार ने विधि साहित्य के अनुवाद का कार्य विधि मंत्रालय को सौंपा है। पहले विधि मंत्रालय में राजभाषा (विधायी) आयोग नामक अभिकरण था, जो अनुवाद कार्य देखता था। अब उसकी जगह विधायी विभाग का राजभाषा खंड नामक अभिकरण है जो इस कार्य को देखता है। इन अभिकरणों ने अब तक हज़ारों पृष्ठों की सामग्री का अनुवाद कार्य पूरा किया है।

शिक्षा की भाषा

शिक्षा भाषा के आधुनिक प्रयोजनों में महत्पवूर्ण है, क्योंकि यह अन्य सारे प्रयोजनों की धुरी है। अगर शिक्षा का व्यापक प्रसार न हो, तो अन्य प्रयोजनों के लिए काम करने वाले व्यक्तियों को तैयार करना संभव नहीं होगा। इसमें से उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भाषा का स्थान और महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसी से आजीविका और प्रयोजनपरक कार्य क्षेत्र जुड़ते हैं। हिंदी में (तथा अन्य भारतीय भाषाओं में भी) उच्च शिक्षा का प्रवेश आधुनिक हैं। कुछ वर्ष पहले तक उच्च शिक्षा के सभी क्षेत्रों में अंग्रेज़ी ही माध्यम थी। 1960 के बाद सरकारी प्रयत्नों से और निजी प्रकाशकों के प्रयत्नों से विविध विषयों की पुस्तकों का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इस संदर्भ में आप इकाई 21 में पढ़ चुके हैं। केंद्रीय हिंदी निदेशालय, प्रदेशों की हिंदी ग्रंथ अकादमियाँ, दिल्ली का हिंदी माध्यम कार्यान्वयन बोर्ड, निजी प्रकाशक आदि के प्रयत्नों से अब तक विविध विषयों की कई हज़ार पुस्तकें हिंदी में जा चुकी हैं।

पुस्तकों के साथ आवश्यक हैं संदर्भ ग्रंथ। संदर्भ ग्रंथों में कोश, विश्वकोश, ग्रंथ सूचियाँ, मानचित्र आदि, वार्षिकी (yearbook), व्यक्ति कोश, अनुक्रमणिकाएँ आदि। हिंदी में कोशों के क्षेत्र में बहुत काम हुआ है। सरकारी क्षेत्र में केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पास कोश निर्माण का दायित्व है। निदेशालय ने कई द्विभाषी और त्रिभाषी कोशों का प्रकाशन किया है। निजी प्रकाशकों की ओर से भी कई कोश ग्रंथ प्रकाशित किये गये हैं। शेष सभी संदर्भग्रंथों का हिंदी में अभाव है। यह बड़ी दुखद स्थिति है। अफ़सोस है कि हिंदी में एक भी समग्र, आधुनिक विश्वकोश नहीं है। इन ग्रंथों के अभाव का शायद यही कारण है कि इनके खरीदार नहीं हैं। प्रयोजन विस्तार से इन ग्रंथों की माँग बढ़ सकती है। हम उम्मीद करें कि इस क्षेत्र में भी ग्रंथों का प्रकाशन बढ़ेगा।

इन दोनों धू क्षेत्रों में कार्य करने के लिए हमें उपयुक्त शब्दावली की भी आवश्यकता होगी। विषय विशेष की विशिष्ट शब्दावली को हम पारिभाषिक शब्द कहते हैं।

पारिभाषिक शब्द प्रमुखत: सामाजिक, भौतिक तथा जैविक विज्ञानों के शब्द होते हैं। विज्ञान का ज्ञान इन शब्दों के माध्यम से अध्येता तक पहुँचता है। अगर कोई दो व्यक्ति शब्द के दो अर्थ लें, तो विज्ञान का अध्ययन और विषयों पर चर्चा या शोध संभव नहीं हो पाता। इसलिए आवश्यक है कि

शब्द का सर्वत्र एक ही अर्थ हो। साथ ही एक ही संकल्पना के लिए एक ही शब्द प्रयुक्त हो। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि बोलचाल की भाषा के अर्थ में विस्तार होता है, कहीं संदिग्धता भी होती है, कहीं एक ही अर्थ के कई शब्द होते हैं। हम बातचीत में अपने ढंग से अर्थ ग्रहण करते चलते हैं। श्लेष का उपयोग साहित्य में गुण है, लेकिन विज्ञान में दोष। जिस तरह से 15 ग्राम कहने पर हम सबके मन में मात्रा का एक निश्चित अर्थ बोध होता है, उसी तरह पारिभाषिक शब्द का मन में एक निश्चित अर्थ आना चाहिए।

इसलिए आवश्यक है कि हर व्यक्ति अपनी पसंद से पारिभाषिक शब्द न बनाए। नहीं तो पारिभाषिक शब्दों में विविधता आ जाएगी। यह केवल एक संस्था का काम होना चाहिए। भारत सरकार ने पारिभाषिक शब्दों के निर्माण की ज़िम्मेदारी वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग को सौंपी है। यह मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा विभाग के अधीन है।

इस संस्था ने विविध विषयों के पारिभाषिक शब्द निर्मित किए हैं और इन्हें निम्नलिखित दो शब्दकोशों में प्रस्तुत किया है :

(1) बृहत पारिभाषिक शब्द संग्रह (मानविकी खंड)

(2) बृहत पारिभाषिक शब्द संग्रह (विज्ञान खंड)

इसके अतिरिक्त आयोग ने विभिन्न विषयों की शब्दावली भी प्रकाशित की जैसे 'आयुर्विज्ञान शब्दावली' 'कंप्यूटर शब्दावली' आदि।

विधि के क्षेत्र पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण एवं संकलन विधि एवं न्याय मंत्रालय के विधायी विभाग द्वारा राजभाषा खंड करता है। पहले यह कार्य राजभाषा (विधायी) आयोग करता था। इसके द्वारा निर्मित शब्दकोश 'विधि शब्दावली' नाम से प्रकाशित हैं। इस शब्दावली में करीब 50 हज़ार शब्दों को शामिल किया गया है।

7.5.2 प्रौद्योगिकी और हिंदी

जीवन में यंत्रों के प्रयोग के साथ प्रौद्योगिकी जुड़ जाती है। पहले यंत्र युग था और प्रौद्योगिकी यंत्रों के निर्माण और संचालन का विषय क्षेत्र था। आज हम कंप्यूटर के युग में हैं और अब भाषा ने प्रौद्योगिकी का सहारा लिया।

पिछली शताब्दी में मुद्रण, टंकण, फिल्मांकन, टेपांकन आदि सभी क्षेत्रों में हिंदी भाषा के लिए सुविधाएँ प्राप्त हुई। हिंदी में मुद्रण कला में (परंपरागत रूप से) अभूतपूर्व विकास हुआ। हिंदी मे 1950 के बाद से हर प्रकार के टंकण यंत्र बने और इलेक्ट्रॉनिक युग में पदार्पण करते ही द्विभाषी इलेक्ट्रॉनिक टंकण यंत्र का भी निर्माण हुआ। उन दिनों दूर संचार के लिए टेलेक्स मशीन का आविष्कार हुआ था। शीघ्र ही हिंदी में टेलेक्स द्वारा संदेश भेजना संभव हो गया। इस तरह प्रशासन, शिक्षा, मनोरंजन आदि सभी क्षेत्रों में नई प्रौद्योगिकी का लाभ प्राप्त हुआ।

सूचना प्रौद्योगिकी के युग में भाषा के माध्यम से काम करने के लिए हमें विभिन्न प्रकार के साफ़्टवेयर की आवश्यकता पड़ती है। इनका संक्षेप में यहाँ उल्लेख करेंगे।

कक्षीय मुद्रण (Desk Top Printing) भाषा के पाठों को कंप्यूटर पर ही शुद्ध करने और संपादित करने की सुविधा देता है। इसके साथ ही हम मशीन द्वारा वर्तनी की जाँच कर सकते हैं। इस सॉफ्टवेयर में शब्दों को अकारादि क्रम में रख सकते हैं। कुछ उन्नत कार्यक्रमों में पाठ की भाषा की व्याकरणिक जाँच की भी व्यवस्था होती है। हिंदी में लीप, अक्षर, आफिस एक्स. पी, सुलिपि आदि डी.टी.पी कार्यक्रम बने हैं। इनमें वर्तनी जाँच की संतोषजनक व्यवस्था है, अकारादि क्रम में शब्द लाने की व्यवस्था का प्रयास है और व्याकरणिक जाँच का अभाव है।

अन्य उपयोगी कार्यक्रमों में छपे हुए पृष्ठों के स्कैन और कंप्यूटर द्वारा पाठ को 'पढ़ने' (याने मुद्रित रूप में लेने) वाला प्रमुख है। अंग्रेज़ी में यह कार्यक्रम उपलब्ध है, लेकिन हिंदी में नहीं है। हिंदी मे मानकीकरण के अभाव के कारण ही शायद अकारादि क्रम निर्धारण और 'पठन' के कार्यक्रम नहीं बन पाये हैं।

पाठ से उच्चारण (Text to speech) एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। यह कार्यक्रम छपे हुए पाठ को उच्चारण में बदलकर देता है। इससे नेत्रहीन व्यक्तियों के लिए विस्तृत अध्ययन करना अधिक आसान होगा। उच्चारण से पाठ (Speech to Text) भी एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। **Dragon Naturally Speaking** जैसे कार्यक्रम मौखिक उच्चारण को श्रुतलेख की तरह ग्रहण कर मुद्रित पाठ में बदल देते हैं। हिंदी में इन दोनों कार्यक्रमों के विकास पर कार्य चल रहा है।

प्रौद्योगिकी के युग में इंटरनेट और ई-मेल उपयोगी साधन हैं। हम इंटरनेट पर हिंदी में अपेक्षित जानकारी प्राप्त कर सकते हैं और ई-मेल द्वारा लोगों को संदेश भेज सकते हैं। अभी वेब दुनिया, नेट जाल जैसे कुछ वेब साइट बने हैं और कई समाचार पत्र भी नेट पर उपलब्ध हैं। इंटरनेट पर काम करने के लिए html नामक विशेष फॉन्ट की आवश्यकता है, जिससे व्यापक रूप में हम नेट का उपयोग कर सकें। अभी जो वेब साइट बने हैं उन्होंने अपने-अपने फॉन्ट बनाये हैं और html का विकास नहीं हुआ है। मानकीकरण के अभाव में यह कार्य भी अभी अपूर्ण है।

7.6 मानकीकरण का सवाल

आजकल हमें लोगों के मुँह से, टेलीविज़न के पर्दे पर और लेखन में भी निम्न प्रकार की अभिव्यक्तियाँ सुनने को मिलती हैं-

चूँकि वह नहीं आया, **अत:** मैं वापस आ गया।

क्योंकि वहाँ कोई नहीं था, **इसलिए** मैं वापस आ गया।

हालाँकि उसने बुलाया था, **फिर भी** हम शादी में जा नहीं पाये।

मैंने **इसलिए** उसे बुलाया था, **ताकि** उससे बात कर सकूँ।

भाषा के प्रयोग के संदर्भ में यह एक उदाहरण है, जहाँ व्याकरण के सारे नियम टूटते दिखायी देते हैं। आधुनिक हिंदी में ऐसे ही अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनके संदर्भ में यह कहना कठिन हो जाता है कि सही क्या है, गलत क्या है, क्या होना चाहिए और क्या नहीं। यह सत्य है कि भाषा परिवर्तनशील है और भाषा के बोलने वाले भाषा को रूप देते हैं। प्रयोग ही भाषा है, नियम मात्र अनुवर्ती होते हैं। लेकिन ऊपर के उदाहरणों में जिन वाक्यों का उल्लेख किया गया है, वे प्रयोग संबंधी अराजकता का संकेत करते हैं। कोई शायद इनकार नहीं करेगा कि ऐसी अराजकता की स्थिति में प्रयोगों को गति और दिशा देने का सामूहिक और संस्थागत प्रयत्न किया जाना चाहिए। हमारे सामने उदाहरण है कि रूसी, फ्रांसीसी और अंग्रेजी जैसी विकसित देशों की भाषाओं में ऐसे प्रयत्न हुए हैं और भाषा के प्रयोगों को नियंत्रित करने में ये प्रयास सफल रहे हैं। मानकीकरण इसी संस्थागत प्रयत्न का नाम है, भाषा के नियंत्रित विकास के लिए आवश्यक साधन है।

हर आधुनिक भाषा के समक्ष मानकीकरण का सवाल कभी न कभी उठता है। मानकीकरण जीवन के हर क्षेत्र में आवश्यक है, और भाषा के क्षेत्र में भी इतना ही आवश्यक है। मानकीकरण भाषा विकास का सहायक तत्त्व ही नहीं, कई क्षेत्रों में विकास से जुड़ी हुई सहवर्ती प्रक्रिया है। अगर मानकीकरण को आधार न बनाया जाए, तो पारिभाषिक शब्द निर्माण का कार्य असंभव-सा होगा। मानकीकरण के अभाव में टंकण, मुद्रण, कंप्यूटर आदि की प्रौद्योगिकी में अराजकता पैदा हो जाएगी, जो वास्तव में इस क्षेत्र में आज की स्थिति है। इस कारण मानकीकरण का यह सवाल अत्यंत प्रासंगिक है, यह समस्या अत्यधिक ज्वलंत है।

मानकीकरण की आवश्यकता

1. हिंदी सिर्फ एक प्रदेश की भाषा नहीं है, इस समय वह देश की राजभाषा है, पूरे देश की संपर्क भाषा है और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयोग की भाषा है। शैक्षिक व्यवस्था के कारण भारत के विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में ही नहीं, लगभग 150 विदेशी विश्वविद्यालयों में इसके अध्यापन की व्यवस्था है। जहाँ करोड़ों छात्र इस भाषा का अध्ययन करते हैं, हमें उनके सीखने की सुविधा के लिए, उनके सामने भाषा का मानक रूप प्रस्तुत करना होगा।

यह सवाल किया जाता है कि क्या भाषा के लिए मानकीकरण आवश्यक है? भाषा परिवर्तनशील है, अत: उसमें वैकल्पिक प्रयोग आते रहते हैं। क्या भाषा को जकड़कर एक कृत्रिम, सार्वत्रिक मान में

बाँधा जाना चाहिए? यह बात सही है कि भाषाभाषी काफ़ी दूर तक भाषा में विसंगतियों और अनियमितताओं को बरदाश्त कर सकते हैं। सारे विभेद उनकी बोध क्षमता के अंग बन जाते हैं और जहाँ तक अभिव्यक्ति का सवाल है, हर व्यक्ति अपना 'मान' स्थापित कर लेता है। इतर भाषाभाषी भी अध्यवसाय से इस विस्तृत क्षमता सीमा में पहुँच सकते हैं, लेकिन इस लक्ष्य प्राप्ति में उन्हें अधिकाधिक श्रम और समय लगाना पड़ सकता है। करोड़ों इतर भाषाभाषी अध्येताओं के लिए यह अतिरिक्त श्रम और समय विकर्षक तत्त्व हैं।

क्या मानकीकरण भाषा का कृत्रिम नियंत्रण है? क्या भाषा के प्रयोग में विविधता स्वाभाविक नहीं है? क्या परिवर्तनशील भाषा की गति को नियंत्रित करना असफल प्रयास नहीं है? हिंदी भाषियों के लेखन को गौर से देखा जाए तो पाएँगे कि 'अ' जैसा अक्षर भी हज़ारों प्रकार से लिखा जाता है। अक्षर छोटा हो या बड़ा, सीधा लिखा जाए या टेढ़ा, भाषाभाषी इसे 'अ' के रूप में ही पहचानता है। मनोविज्ञान की भाषा में इसे दृष्टि की स्थिरता (Constancy of vision) कहते हैं। यह क्षेत्र मानकीकरण का नहीं है। दृष्टि स्थिरता के संदर्भ में किसी भाषिक इकाई की अभिव्यक्ति में विभेदों का सवाल अलग है, वर्ण या वर्तनी आदि भाषाई इकाई या रचना के लिए कई भिन्न रूपों का सवाल अलग। मानकीकरण वह व्यवस्था है जिसमें किसी एक स्वीकृत रूप का प्रस्ताव किया जाता है। मानव रूप का प्रस्ताव इतना यांत्रिक भी नहीं है; यह प्रक्रिया भाषा की परिवर्तनशीलता को ध्यान में रखकर ही की जाती है। इस तरह मानकीकरण निरंतर प्रक्रिया है। मानकीकरण में वैकल्पिक क्षेत्रीय प्रयोगों के सत्य से भी मुँह नहीं मोड़ा जाता। जीवंत भाषाओं में मानक रूपों के साथ क्षेत्रीय मानों का भी प्रावधान किया जाता या किया जा सकता है। और जहाँ तक जीवंत भाषा में संस्थागत नियंत्रण का सवाल है, यह तब किया जा सकता है, जब इससे भाषा के विकास और प्रसार का हित सिद्ध हो। जहाँ तक इस नियंत्रण की संभाव्यता का प्रश्न है, यह संभव ही नहीं, सफल प्रयोग साबित हो चुका है। अगर आधुनिक युग में प्राकृतिक विकास में जीन (genes) परिवर्तन के प्रयोग किये जा सकते हैं, तो प्राकृतिक भाषा के प्रवाह को दो किनारों की सीमा में नियंत्रित करना उचित ही है।

2. भाषा विकास हर आधुनिक भाषा की अनिवार्य शर्त है। प्रौद्योगिकी विकास का अभिन्न अंग है। जो भाषा सिर्फ़ जन संपर्क और साहित्य सर्जन तक सीमित हो, वह कुछ हद तक विकास से और संबद्ध विकास की प्रक्रिया से दूर रह सकती है। लेकिन व्यापक जन संचार, आधुनिक प्रयोगों के लिए पारिभाषिक शब्द निर्माण, अनुवाद, यांत्रिकीकरण, इंटरनेट संचार और द्रुत मुद्रण आदि कार्यकलापों से जुड़ी भाषा के लिए मानकीकरण आवश्यक अंग है। संरचना और शब्दावली के मानक के अभाव में कंप्यूटर द्वारा अनुवाद का कार्य असंभव न हुआ, तो अत्यंत कठिन हो सकता है। वर्णों की माप और बनावट के मानक के अभाव में कंप्यूटर द्वारा सूचना प्रसारण और मुद्रण आदि प्रभावित हो सकते हैं। वर्तनी के मानकीकरण के अभाव में शब्दकोश निर्माण कार्य जटिल हो सकता है।

इस समय टंकण के क्षेत्र में भी कम से कम तीन विशिष्ट कुंजीपटल हैं। यह सर्वविदित तथ्य है कि एक कुंजीपटल पर अभ्यस्त व्यक्ति के लिए दूसरे पटल पर काम करना श्रमसाध्य है। अंग्रेजी का कुंजीपटल लगभग 100 वर्षों से इसी रूप में विद्यमान है और प्रशिक्षित व्यक्ति को किसी जगह, किसी भी यंत्र पर काम करने में कठिनाई नहीं होती, तो हिंदी में यह कठिनाई क्यों हो?

इलेक्ट्रानिक मुद्रण तथा आँकड़ा अंतरण के क्षेत्र में यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है। वहाँ दो अलग यंत्रों पर एक व्यक्ति के कार्य करने की कठिनाई ही नहीं, बल्कि एक यंत्र से दूसरे यंत्र में सूचना भेजने का प्रश्न है, जो अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इलेक्ट्रानिकी के युग में एक कंप्यूटर से दूसरे में सूचनाएँ ले जाना, कंप्यूटर से आँकड़े टेलेक्स या फैक्स में भेजना, कंप्यूटर की सूचना को फोटो मुद्रक या अन्य मुद्रकों में भेजना आदि आवश्यक साधन हैं। यह तभी संभव हो सकता है, जब सारे इलेक्ट्रानिकी के यंत्र समान कुंजीपटल पर कार्य करें और समान वर्ण, वर्तनी और वर्णाकृति का उपयोग करें। जो लोग भाषा के इस क्षेत्र से जुड़े हुए हों, वे जानते हैं कि अभी हम यंत्रों के इस नेटवर्क से बहुत दूर हैं। मानकीकरण का अभाव इस कमी का एक बड़ा कारण है। ऐसी स्थिति बनी रही, तो हम इन विकसित देशों की भाषाओं से बहुत पीछे चले जाएँगे।

कहीं यह सुनने में आता है कि कुंजीपटल अब एक निजी कंपनी के स्वत्वाधिकार में है। इसी कारण अन्य सब विनिर्माताओं को उससे भिन्न रूप में अपने कुंजी पटल को व्यवस्थित करना पड़ता

है, जिससे वे उक्त कंपनी के स्वत्वाधिकार का उल्लंघन न करें। अगर यह बात सच है, तो हिंदी भाषा के विकास के साथ बहुत बड़ा खिलवाड़ हुआ है, उसका गला घोंटा जा रहा है। कुंजीपटल पर किसी एक विनिर्माता का स्वत्व कम समझ में आने वाली बात है; होना यह चाहिए था कि हम एक मानक रूप निश्चित करने के बाद आग्रह करते कि सभी उसी को अपनाएँ। सच जो भी हो, वास्तविकता यह है कि हर कंप्यूटर का कुंजीपटल दूसरों से भिन्न है, हर साफ़्टवेयर का निर्गम अलग है। यह स्थिति शीघ्र ही बदली तथा सुधारी जानी चाहिए, इसी में हिंदी भाषा का कल्याण है।

3. मानकीकरण से हमें भाषायी नीति तथा अपनी सोच का निश्चित निर्णय करने की सुविधा होगी। यह निर्णय कौन और कैसे करे कि हिंदी में चंद्र बिंदु का उपयोग किया जाना चाहिए या नहीं? एक बारगी यह निर्णय क्यों नहीं हो सकता कि हिंदी में ज़, फ़ आदि वर्ण रहेंगे या नहीं? इस संबंध में केंद्रीय हिंदी निदेशालय की सिफ़ारिशें हैं, निर्णय नहीं। अब तक ऐसे मामलों पर हमने प्रकाशकों और लेखकों की अपनी रुचि, सुविधा और सोच के अनुसार व्यवहार की छूट दी है। इसके पीछे शायद विचार यही है कि कालक्रम में कोई न कोई व्यवस्था बन ही जाएगी। लेकिन व्यवस्था बनने के दौरान हम यांत्रिक सुविधाओं के संदर्भ में जितने पिछड़ते जाएँगे, उसके संदर्भ में कुछ निर्णय किया जाना अधिक उपयोगी होगा। नीति का यह सवाल सिर्फ़ वर्ण, वर्तनी आदि तक ही सीमित नहीं है। हिंदी में 'उसने बोला', 'बारिश होनी शुरू हो गयी', 'हमने तो जाना ही जाना है', 'उसने दिया हुआ है', 'मुझे कार चलानी नहीं आती' आदि सैकड़ों संरचनागत विभेद तेजी से प्रयोग में आ रहे हैं। क्या सब ग्रहणीय हैं और पूर्व विकल्पों को अपदस्थ कर स्वीकृत हो चुके हैं? हमें 'सब चलता है' की प्रवृत्ति को छोड़कर गंभीरता से सोचना होगा कि किन रूपों के मानक मानें और किन समानक रूपों के निग्रह के लिए प्रयास करना होगा।

4. संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार हिंदी भाषा को इस रूप से विकसित होना चाहिए कि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। मैं इस अनुच्छेद का यह निहितार्थ समझता हूँ कि हिंदी भाषा में सभी भाषाओं का वाङ्मय उपलब्ध हो सके, जिससे भाषाएँ प्रत्यक्ष संपर्क के अभाव में हिंदी के माध्यम से एक दूसरे से संपर्क बना सकें। इसी तरह और इसी आधार पर अन्य भाषाओं के मानकीकरण के लिए हिंदी आधार बन सके। उदाहरण के तौर पर अंग्रेजी ने भारतीय गाँवों के नामों का मानकीकरण कर रखा था। अब हिंदी यह कार्य कर सके, तो अन्य भाषाएँ इसी आधार पर अपने यहाँ मानकीकृत रूपों का प्रयोग कर सकेंगी। इसी संदर्भ में एक मानचित्र में विदेशी शहरों के नामों को देखा तो पाया कि Zaire को उसमें 'झाइरो' दर्शाया गया था। क्या कांगो की भाषा बांटू में भी महाप्राण 'झ' का उच्चारण मिलता है। संभवत: इस लिप्यंतारण के पीछे किसी मराठी भाषी सज्जन का हाथ था, क्योंकि मराठी में 'ज़' को 'झ' लिखा जाता है।

मानकीकरण के स्तर

अगर हम उपर्युक्त चर्चा के आधार पर आश्वस्त हो जाएँ कि हिंदी के विकास के लिए मानकीकरण की प्रक्रिया शुरू कर देनी चाहिए, तो हमें निश्चित करना होगा कि भाषा के किन स्तरों पर और किस रूप में यह प्रक्रिया शुरू हो। उच्चारण, वर्णों की आकृति, वर्णमाला, वर्तनी, वाक्य संरचना और शब्दार्थ भाषिक स्तर पर प्रमुख तत्त्व हैं, जिनमें मानकीकरण की आवश्यकता है। इन स्तरों पर मानकीकरण से अन्य संबंद्ध कार्य भी मानकीकृत किये जा सकेंगे। वर्णों की बनावट के मानकीकरण से सामान्य कुंजी पटल निर्माण तथा इलेक्ट्रानिक उपकरणों के बीच सूचना संचार का कार्य संपन्न हो सकेगा। वर्तनी का मानकीकरण मानक शब्दकोश का आधार होगा। वाक्य संरचना के मानकीकरण से मानक व्याकरण की रचना का उद्देश्य पूरा हो सकेगा और कंम्प्यूटर पर व्याकरण जाँच का कार्यक्रम बन सकेगा। शब्दार्थ के मानकीकरण से पारिभाषिक शब्दों के निर्माण का कार्य अधिक वैज्ञानिक हो सकेगा। इस तरह मानकीकरण का भाषा के अन्य साधनों के निर्माण पर भी प्रभाव पड़ता है। जैसे हमने ऊपर मानक रूप और क्षेत्रीय मानों की चर्चा की थी, मानकीकरण का प्रभाव सभी भाषिक तत्त्वों पर समान रूप से नहीं पड़ेगा। वर्णाकृति मुद्रण के क्षेत्र की बात है, आम व्यक्ति इससे अधिक प्रभावित नहीं होता। ध्वनि का मानकीकरण क्षेत्रीय प्रयोगों को रोक नहीं सकेगा। लेकिन जहाँ तक वर्णमाला और वर्तनी का संबंध है, यह मानकीकरण भाषा के प्रयोग के समस्त क्षेत्रों में समान रूप से लागू किया जाएगा। इससे भाषा के प्रयोक्ता को कोई शिकायत भी नहीं होगी, क्योंकि वह स्वयं ही यह जानना चाहता है कि वह क्या लिखे। चूँकि आज उसके सामने कोई आदर्श मान नहीं है, वह स्वेच्छा से कोई प्रयोग अर्जित करता है और उसे ही सही मान लेता

है। कहने का तात्पर्य यह है कि मानकीकृत रूप व्यक्ति की आवश्यकता है; जिन क्षेत्रों में, जैसे उच्चारण में, वह मानकीकृत रूप अपना नहीं सकेगा, वहाँ स्वयमेव क्षेत्रीय मान की स्थापना हो जाती है। इस तरह कह सकते हैं कि मानकीकरण भाषा प्रयोग के व्यक्ति स्वातंत्र्य की विरोधी व्यवस्था नहीं है।

मानकीकरण की प्रक्रिया

इस संदर्भ में दो सवाल उठते हैं -- मानकीकरण कौन करे और मानकीकरण के कार्यान्वयन का क्या रूप हो? दूसरे सवाल पर पहले चर्चा करें और भारतीय संदर्भ में अन्य कुछ भाषाओं में हुए प्रयत्नों की चर्चा करें। तमिल भाषा में कुछ वर्ष पहले मानकीकरण का एक छोटा-सा प्रयत्न हुआ कि मात्रा लेखन में अपवादों को हटाकर नियमित रूप लिखे जाएँ। निर्णय सरकारी था, लेकिन दूसरे दिन से ही सभी मुद्रकों और प्रकाशकों ने नयी व्यवस्था का पालन शुरू कर दिया था। मात्र एक पत्रिका के संपादक श्री 'चो' रामस्वामी ने सुझाव का विरोध किया। इसी तरह मलयालम में लिपि संबंधी संशोधन प्रस्तुत हुए, तो तुरंत ही अनुपालन शुरू हो गया। मराठी और गुजराती भाषाओं में शब्दांत ह्रस्व-दीर्घ स्वर के संदर्भ में काफ़ी दिन तक समस्या बनी रही। कई मराठी भाषी 'शांति', 'कीर्ति' आदि ह्रस्वांत संस्कृत शब्दों को मूल रूप में लिखने के आग्रही थे, लेकिन आम व्यक्ति भाषा की प्रकृति के अनुसार इन्हें दीर्घ स्वर में लिखता था। यही समस्या गुजराती में भी थी। अब दोनों भाषाओं ने व्यवस्था दे दी है - मराठी में सारे शब्दों के अंत में दीर्घ स्वर लिखे जाएँगे; गुजराती भाषा इस संदर्भ में हिंदी भाषा की व्यवस्था का अनुसरण करेगी (जबकि हिंदी में यह समस्या बनी हुई है और 'गुरु' लिखते समय मुझे लगता है कि मैं अकेला व्यक्ति हूँ, जो इसे गलत लिख रहा हूँ)। उल्लेखनीय है कि इस नयी व्यवस्था का तुरंत पालन भी होने लगा। निदेशालय ने पंचमाक्षर की सिफ़ारिश की थी, लेकिन उसकी अपनी पत्रिका में भी इसका पालन नहीं हो रहा था[1]। हिंदी भाषी यह मानते हैं कि 'हिन्दी' सही रूप है, 'हिंदी' नहीं। निदेशालय ने यह संस्तुति की थी कि द्‌व, द्‌य को हलंत से लिखा जाए, लेकिन बाद में एक सचिव महोदय ने कुंजी पटल में फिर से द्व और द्य का फिर से प्रवेश करा दिया। निदेशालय के अनुसार 'अ', 'ख', 'झ', 'ण' आदि अमानक वर्ण हैं। लेकिन आज भी मुद्रण में इनका पूर्ववत प्रयोग हो रहा है। कुछ विद्वान संस्तुति को ठुकराकर अपना रूप अपनाने को अपना अधिकार मानते हैं। क्या कारण है कि अन्य भाषाएँ मानकीकरण के क्षेत्र में कुछ हद तक सफलता प्राप्त कर सकी हैं, जबकि हिंदी भाषी क्षेत्र इन प्रयासों की पूर्ण उपेक्षा को अपना धर्म समझता है? नीति निर्धारण की शिथिलता और कार्यान्वयन की अक्षमता ही इसका आंशिक कारण है।

निदेशालय ने पहले 'बुद्‌धि' का सुझाव दिया था, बाद में 'बुद्धि' का और अब फिर 'बुद्‌धि' पर लौट आया है। इसी तरह 'ऋ' के सुझाव के बाद बिना घोषणा के उसने 'ॠ' को शामिल कर लिया है। ऐसे ही उदाहरण स्पष्ट करते हैं की निदेशालय की कोई दृढ़ भूमि नहीं रही है। जिस समिति में जो पारित हुआ, वह नीति कहलायी।

अंत में मानकीकरण के कार्यान्वयन के बारे में दो शब्द कहना चाहेंगे। अब तक सरकारी तंत्र ही हिंदी के क्षेत्र में प्रमुख प्रकाशक है। यह सुनिश्चित करना कठिन नहीं होगा कि सरकारी तंत्र में जो भी सामग्री प्रकाशित हो, वह मानक रूप में हो (बशर्ते कि उसके सामने एक मानक रूप हो)। निजी प्रकाशकों के संदर्भ में भी सरकारी तंत्र ही सबसे बड़ा खरीददार है। अगर यह घोषित हो कि जो प्रकाशक अमानक लिपि या वर्तनी में पुस्तकें छापें, उनकी पुस्तकों पर कोई सरकारी खरीद नहीं होगी, न ही उन पुस्तकों के लिए अनुदान या पुरस्कार दिया जाएगा, तो मानकीकरण को बल मिलेगा। आवश्यकता है दृढ़ संकल्प की, कारगर कदम उठाने की। यह भी ज़रूरी है कि मानकीकरण का कोई भी सुझाव देने से पहले हम आश्वस्त हो जाएँ, तो सुझाव अपने में सही है, आवश्यक है। इसलिए आवश्यक है प्रारंभ में केवल वही सुझाव दें, जो सर्वमान्य हो, निर्विवाद हो। इसलिए यह आवश्यक होगा कि इस प्रयत्न को निरंतर प्रक्रिया का रूप दें और एक-एक करके अमल में लाएँ। इस प्रक्रिया में समय ज़रूर लग सकता है, लेकिन जहाँ चालीस वर्ष तक हमने कोई पहल ही नहीं की, वहाँ कदम-कदम बढ़ते हुए आगे के चालीस वर्षों में भी यह कार्य संपन्न कर लें, तो बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

---

1 अब निदेशालय की पत्रिका में मानकीकृत वर्तनी का पालन हो रहा।

7.7 सारांश

हिंदी भाषा एक प्रदेश की भाषा से धीरे-धीरे अखिल भारतीय संपर्क की भाषा बनी और इसके साथ ही साथ उसे प्रशासनिक प्रयोजनों के लिए तथा शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए राजभाषा का दर्जा दिया गया। संविधान की धारा 343 में उल्लेख है कि देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी देश की राजभाषा होगी। राजभाषा के अलावा, हिंदी अखिल भारतीय सांस्कृतिक और साहित्यिक आदान-प्रदान के लिए संपर्क का सूत्र भी है, जिस भूमिका के संदर्भ में उसे राष्ट्रभाषा कहते हैं। भारतवंशी भारतीयों के कारण, जो विदेशों में बस गए और हिंदी के बढ़ते महत्व के कारण हिंदी भाषा अंतर्राष्ट्रीय भाषा का भी दर्जा प्राप्त कर चुकी है। इस इकाई में हमने यह पढ़ा कि हिंदी की ये तीनों भूमिकाएँ क्या हैं और राजभाषा के संदर्भ में हमने यह भी देखा कि हिंदी की प्रशासनिक भाषा, वाणिज्य-व्यापार की भाषा, विधि आदि प्रयोजनमूलक पक्ष क्या हैं।

जब कोई भाषा आधुनिक प्रयोजनों के लिए राजभाषा जैसी भूमिका वहन करती है तो आवश्यक हो जाता है कि भाषा का विकास हो। राजभाषा की भूमिका के निर्वाह के लिए हिंदी में ज्ञान-विज्ञान का साहित्य चाहिए, कार्यालय-प्रशासन के लिए प्रक्रिया साहित्य चाहिएं, उच्च-स्तरीय अध्ययन के लिए ज्ञान-विज्ञान के ग्रंथ चाहिए। इसी तरह, संदर्भ ग्रंथों की आवश्यकता पड़ती है और विभिन्न प्रकार के कोशों और विश्वकोशों के निर्माण की आवश्यकता पड़ती है। प्रौद्योगिकी के युग में भाषा के माध्यम से काम करने के लिए कंप्यूटर सॉफ्टवेयर जैसी सामग्री की अभी आवश्यकता है। इन सबका निर्माण अपने आप नहीं हो जाता बल्कि इसके लिए देश की भाषा नीति के संदर्भ में भाषा नियोजन करना पड़ता और नियोजित ढंग से सामग्री निर्माण, शिक्षण-प्रशिक्षण, अनुवाद आदि नए क्षेत्र खोलने पड़ते हैं। इसको हम भाषा का आधुनिकीकरण कहते हैं। हमने इस इकाई में यह चर्चा की है कि हिंदी भाषा के विकास के लिए आधुनिकीकरण की प्रक्रिया कैसी अपनाई गई है और प्रौद्योगिकी के युग में हिंदी में काम करने की किस प्रकार की स्थिति है।

कोई भाषा औपचारिक संदर्भों में बहुत विविधता लेकर नहीं चल सकती। उसमें एकरूपता, उपयोग की सफलता आदि गुण चाहिए जिससे कि लोग आसानी से काम कर सकें। भाषा में साधन की इस प्रक्रिया को मानकीकरण कहते हैं। हमने इस इकाई में यह भी चर्चा की है कि हिंदी में मानकीकरण की क्या आवश्यकता है, कौन-कौन से क्षेत्र हैं जहाँ मानकीकरण अपेक्षित है और मानकीकरण के अभाव में भाषा का विकास कैसे अवरूद्ध हो जाता है।

7.8 अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के लगभग 500 शब्दों में उत्तर लिखिए :

   i) हिंदी के संदर्भ में राजभाषा और राष्ट्रभाषा की संकल्पना स्पष्ट कीजिए।

   ii) हिंदी भाषा के विकास से आप क्या समझते हैं? इसके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के लगभग 500 शब्दों में उत्तर लिखिए :

   i) हिंदी की भूमिकाओं की चर्चा कीजिए।

   ii) प्रयोजनमूलक हिंदी की संकल्पना स्पष्ट कीजिए।

परिशिष्ट : संविधान के उपबंध

अध्याय 1 संघ की भाषा

343. संघ की राजभाषा - (1) संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।

(2) खण्ड (1) में किसी बात के होते हुए भी, इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि तक संघ के उन शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उसका ऐसे प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था:

परन्तु राष्ट्रपति उक्त अवधि के दौरान, आदेश द्वारा, संघ के शासकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेज़ी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा का और भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।

(3) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी, संसद् उक्त पंद्रह वर्ष की अवधि के पश्चात् विधि द्वारा-

(क) अंग्रेज़ी भाषा का; या

(ख) अंकों के देवनागरी रूप का,

ऐसे प्रयोजनों का उपबन्ध कर सकेगी जो ऐसी विधि में विनिर्दिष्ट किए जाएँ।

अध्याय 2-प्रादेशिक भाषाएँ

345. राजभाषा या राजभाषाएं – अनुच्छेद 346 और अनुच्छेद 347 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, किसी राज्य का विधान मण्डल, विधि द्वारा, उस राज्य में प्रयोग होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अधिक भाषाओं को या हिन्दी को उस राज्य के सभी या किन्ही शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा या भाषाओं के रूप में अंगीकार कर सकेगा:

परन्तु जब तक राज्य का विधान मण्डल, विधि द्वारा, अन्यथा उपबन्ध न करे तब तक राज्य के भीतर उन शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उसका इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था।

इस धारा का तात्पर्य:

(इस व्यवस्था के अनुसार राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा, उस राज्य में प्रयोग होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अधिक भाषाओं को या हिंदी को उस राज्य के सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए राजभाषा या राजभाषाएँ स्वीकार कर सकता है। उदाहरण के लिए इस व्यवस्था के द्वारा ही महाराष्ट्र के कुछ जिलों में, जो कर्नाटक की सीमा से लगते हैं, कन्नड़ को किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए स्वीकार किया जा सकता है। इसी तरह उड़ीसा और आंध्र प्रदेश की सीमा से लगते हुए जिलों में उड़िसा या तेलुगु को कुछ शासकीय प्रयोजनों के लिए स्वीकार किया जा सकता है।)

346 एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच या किसी राज्य और संघ के बीच पत्रादि की भाषा – संघ में शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने के लिए तत्समय प्राधिकृत भाषा, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच तथा किसी राज्य और संघ के बीच पत्रादि की राजभाषा होंगी:

परंन्तु यदि दो या अधिक राज्य यह करार करते हैं कि उन राज्यों के बीच पत्रादि की राजभाषा हिन्दी भाषा होगी तो ऐसे पत्रादि के लिए उस भाषा का प्रयोग किया जा सकेगा।

इस धारा का तात्पर्य:

(इस अवस्था के अनुसार दो राज्यों के बीच पत्र-व्यवहार अथवा किसी राज्य और राज्य संघ के बीच पत्र-व्यवहार उसी भाषा में होगा जो संघ सरकार के शासकीय प्रयोजनों के लिए राजभाषा के रूप में प्राधिकृत हो।)

347. किसी राज्य की जनसंख्या के किसी विभाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध म विशेष उपबंध- यदि इस निमित मांग किए जाने पर राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि किसी राज्य की जनसंख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को राज्य द्वारा मान्यता दी जाए तो वह निदेश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को भी उस राज्य में सर्वत्र या उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिए जो वह विनिर्दिष्ट करे, शासकीय मान्यता दी जाए।

अध्याय 3 – उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों आदि की भाषा

348. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में और अधिनियमों, विधेयकों आदि के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा- (1) इस भाग के पूर्वगाभी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, जब तक संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक –

(क) उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय में सभी कार्यवाहियाँ अंग्रेजी में होंगी,

(ख) (i) संसद के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधान मंडल के सदन या प्रत्येक सदन में

पुर:स्थापित किए जाने वाले भी विधेयकों या प्रस्तावित किए जाने वाले भी विधेयकों या प्रस्तावित किए जाने वाले उनके संशोधनों के,

(ii) संसद या किसी राज्य के विधान मंडल द्वारा पारित सभी अधिनियमों के और राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित सभी अध्यादेशों के, और

(iii) इस संविधान के अधीन अथवा संसद् या किसी राज्य के विधान मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन जारी किए गए सभी आदेशों, नियमों, विनियमों और उपविधियों के, प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी भाषा में होंगे।

(2) खंड (1) के उपखंड (क) में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उस उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में जिसका मुख्य स्थान उस राज्य में है, हिंदी भाषा का या उस राज्य के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा:

परंतु इस खंड की कोई बात ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, डिक्री या आदेश पर लागू नहीं होगी।

(3) खण्ड (1) के उपखंड (ख) में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी राज्य के विधान मंडल ने, उस विधान मंडल में पुर:स्थापित विधेयकों या उसके द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में अथवा उस उपखंड के पैरा (iii) में निर्दिष्ट किसी आदेश, नियम विनियम या उपविधि में प्रयोग के लिए अंग्रेज़ी भाषा से भिन्न कोई भाषा विहित की है वहां उस राज्य के राजपत्र में उस राज्य के राज्यपाल के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेज़ी भाषा में उसका अनुवाद इस अनुच्छेद के अधीन उसका अंग्रेज़ी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।

इस धारा का तात्पर्य :

उपर्युक्त निदेश में हिंदी में विकास और प्रसार की ज़िम्मेदरी संघ सरकार को सौंपी गई है। इसमें चार बातें प्रमुख हैं :-

क) हिंदी को भारत की सामासिक संस्कृत का वाहक बनाना

ख) आठवीं सूची की भाषाओं की शैली, रूप और पदावली का हिंदी में समावेश।

ग) हिंदी में मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं मे शब्द ग्रहण

घ) ऊपर "ख" और "ग" की स्थिति में भाषा की मूल प्रकृति को कायम रखना।

आप के मन में प्रश्न उठा होगा कि हिंदी के विकास और प्रसार के प्रयास के उद्देश्य क्या हैं? इसकी जरूरत क्यों है? आप जानते हैं कि भारत अनेक भाषाओं, जातियों और धर्मों का देश है। यहाँ की संस्कृति कई संस्कृतियों के मेल से बनी है इसलिए भारतीय संस्कृति सामासिक संस्कृति हैं जब हिंदी को भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने का प्रयास किया जाएगा तो स्वाभाविक ही है कि इससे हिंदी के अखिल भारतीय स्वरूप का विकास होगा और वह राष्ट्रभाषा का दायित्व वहन करने में अधिकाधिक सक्षम होगी।

हिंदी के इसी स्वरूप के विकास के संबंध में आगे कहा गया है कि हिंदी भाषा की अपनी मूल प्रकृति को बनाए रखते हुए उसमें अन्य भारतीय भाषाओं (संविधान की आठवीं सूची में दी गई भाषाओं) की शैलियों, रूपों और अभिव्यक्तियों का समावेश किया जाए। इस तरह भारतीय भाषाओं में मूलभूत एकता स्थापित करने और उनके समान तत्वों का समन्वय करने का प्रयास किया जाए। आप सोच सकते हैं कि यह समन्वय किस प्रकार हो सकता है ? भारत की विभिन्न भाषाओं का आपसी रिश्ता बहनों का है। उनमें से अधिकांश का मूल स्रोत संस्कृत भाषा है। इसीलिए ऊपर अलग-अलग दिखाई देने पर भी उनमें घनिष्ठ समानता उसी तरह विद्यमान है जिस तरह भारतीय संस्कृति की विविधता में एकता। अत: इन भाषाओं के तत्वों के हिंदी में समावेश से भाषिक एकता का विकास हो सकेगा। उसके बाद कहा गया है कि हिंदी के शब्द-भंडार को समृद्ध बनाने के लिए मुख्य रूप से संस्कृत से शब्द ग्रहण किए जाएँ

और गौण रूप से अन्य भाषाओं से। शब्द-भंडार के विस्तार की यह व्यवस्था भी हिंदी के राष्ट्रभाषा या अखिल भारतीय संपर्क भाषा के रूप मे विकास को लक्ष्य में रख कर की गई है।

120. संसद में प्रयोग की जाने वाली भाषा - (1) भाग 17 में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए संसद में कार्य हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा :

परन्तु यथास्थिति राज्य सभा का सभापति या लोक सभा का अध्यक्ष अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो हिन्दी में या अंग्रेज़ी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, उसकी मातृभाषा में सदन को सम्बोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।

(2) जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करें तब तक इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो "या अंग्रेज़ी में" शब्दों का उसमें से लोप कर दिया गया हो।

इस धारा का तात्पर्य : *इस व्यवस्था के अनुसार संसद में कार्य की भाषा अंग्रेजी या हिंदी हो सकती है। किंतु जो सदस्य अंग्रेज़ी या हिंदी में अपने विचार व्यक्त न कर सकता हो उसे अपनी मातृभाषा में अपनी बात कहने का अधिकार दिया गया हैं।*

संविधान की उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार अंग्रेज़ी या हिंदी में से किसी का भी प्रयोग करने की व्यवस्था संविधान लागू होने के बाद 15 वर्ष की अवधि के लिए की गई थी। इस अवधि की समाप्ति पर अर्थात् 26 जनवरी, 1965 के बाद संसद के साथ-साथ अंग्रेज़ी का प्रयोग भी जारी रखा जाए।

इकाई 8 देवनागरी लिपि का विकास

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 लिपि क्या है?

8.3.1 लिपि की आवश्यकता

8.3.2 विश्व की प्रमुख लिपियाँ

8.4 प्राचीन भारत की लिपियाँ

8.5 ब्राह्मी लिपि और देवनागरी का विकास

8.6 देवनागरी लिपि

8.7 मानक देवनागरी - स्थिति और समस्याएँ

8.7.1 लिपि सुधार आंदोलन

8.7.2 मानक हिंदी वर्णमाला

8.7.3 हिंदी में लिपि के मानकीरण की आवश्यकता

8.8 सारांश

8.9 अभ्यास प्रश्न

8.1 उद्देश्य

इस इकाई में हम लिपि के गुणों की चर्चा करते हुए इस संदर्भ में विश्व की विभिन्न लिपियों विशेषकर हिंदी की वर्तमान लिपि देवनागरी का परिचय प्राप्त करेंगे। देवनागरी लिपि के संदर्भ में उसके उद्भव और विकास की चर्चा करते हुए वर्तमान युग में देवनागरी की चर्चा करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- लिपि की प्रकृति और विशेषताओं की चर्चा कर सकेंगे;
- विश्व की प्रमुख लिपियों का परिचय दे सकेंगे;
- देवनागरी के उद्भव और विकास का वर्णन कर सकेंगे;
- देवनागरी लिपि के गुणों, स्थिति और समस्याओं का विवरण दे सकेंगे; और
- देवनागरी के मानकीकरण की आवश्यकता की चर्चा कर सकेंगे।

8.2 प्रस्तावना

भाषा मूलत: उच्चरित होती है। उच्चरित भाषा में शब्दों का निर्माण ध्वनियों याने वाक् ध्वनियों से होता है। हम उच्चरित भाषा को कानों से सुनते हैं और निहित अर्थ ग्रहण करते हैं। उच्चरित भाषा के शब्दों को रेखीय (graphic) पद्धति से पत्थर, कागज़ आदि माध्यमों में अंकित करने के लिए हम लिपि (script) का उपयोग करते हैं। भाषा के शब्दों के रेखीय अंकन की भी दो प्रमुख पद्धतियाँ हैं। चीनी जैसी भाषाओं में पूरे शब्द के उच्चारण को एक चित्र द्वारा दिखाया जाता है। अंग्रेजी हिंदी जैसी भाषाओं की लिपियों में भाषा की ध्वनियों के लिए अलग-अलग वर्णों को प्रतीक के रूप में निर्मित किया जाता है और उच्चारण क्रम से वर्णों की क्रम से लिखा जाता है।

यद्यपि उच्चारण ही भाषा का मूल स्वरूप है, लिपि से भाषा का महत्व बढ़ जाता है। लिपि भाषा को स्थायित्व प्रदान करती है, लिपि से भाषा की साहित्यिक - सांस्कृतिक संपदा का संरक्षण होता है। इस तरह हम पाते हैं कि उन्नत संस्कृतियों ने लिपि का निर्माण किया; इसी तरह लिपि के निर्माण से संस्कृति उन्नत हुई।

प्राचीन युग में विश्व में तीन-चार ही लिपियाँ थी जिनमें चीनी लिपि आज तक चली आ रही है। मेसेपोटेमिया के कीलाक्षरों वाली लिपि (enneiform) का संशोधित रूप पुरानी मिस्र की लिपि में देख सकते हैं। वर्तमान रोमन (Roman) लिपि का उत्स मिस्र की ध्वनात्मक लिपि (hieroglyplnic) ही है। पुराने सिनाई के शिलालेखों में सामी परिवार की प्राचीन लिपि का परिचय मिलता है, जिससे अरबी भाषा की लिपि विकसित हुई है।

भारत में संभवत: सबसे पुरानी लिपि सिंधु घाटी की लिपि है। इसके नमूने सिंधु घाटी से प्राप्त मुहरों (clay seals) में मिलते हैं। अति सीमित नमूनों के कारण इस लिपि का आज तक अभिज्ञान नहीं हुआ है। प्राचीन भारत में दो और लिपियाँ थीं ब्राह्मी लिपि और खरोस्ती लिपि। खरोस्ती बाद में विलुप्त हो गई और ब्राह्मी ही संस्कृत के लेखन का माध्यम बनी।

ब्राह्मी कितनी पुरानी है, इसका उद्भव कहाँ हुआ, ये सब प्रश्न अभी विवाद के घेरे में है। परवर्ती इतिहास से यह तो स्पष्ट है कि ब्राह्मी लिपि से ही भारत तथा सिंहल की सारी लिपियाँ विकसित हुई। ब्राह्मी ने न केवल लिपि चिह्न नहीं दिये हैं उच्चारण का क्रम, वर्णमाला का क्रम आदि बातों में भी भारतीय भाषाओं में मूलभूत एकता है, जि स्रोत ब्राह्मी लिपि है।

ब्राह्मी लिपि का प्रभाव क्षेत्र बहुत विस्तृत है। रोमन ध्वन्यात्मक (phonetic) लिपि है, जिसमें हर जगह स्वरों और व्यंजनों को अलग-अलग चिह्नों से दिखाया जाता है। ब्राह्मी आक्षरिक (syllabic) लिपि है, जिसमें एक या अधिक व्यंजन तथा स्वर (मात्रा) मिलकर एक लिपि चिह्न का निर्माण करते हैं। ब्राह्मी के प्रभाव के कारण एशिया की सारी लिपियाँ आक्षरिक हैं और लिपि चिह्नों के निर्माण के लिए इन लिपियों ने ब्राह्मी से प्रभाव ग्रहण किया है।

हिंदी की लिपि देवनागरी है, जो आज संस्कृत, मराठी, हिंदी तथा नेपाली भाषाओं के लेखन में काम आती है। अन्य भारतीय लिपियों की तरह देवनागरी भी ब्राह्मी से निकली है। देवनागरी लिपि को वैज्ञानिक लिपि कहा जाता है, क्योंकि इसमें उच्चारण और लेखन का तालमेल ज्यादा है।

सरलीकरण के उद्देश्य से और मशीनी उपयोग को ध्यान में रखते हुए आधुनिक युग में देवनागरी लिपि का मानकीकरण किया गया था। अब कंप्युटर में भाषा के प्रयोग की संभावनाओं को देखते हुए देवनागरी में पुन: मानकीकरण की आवश्यकता दिखाई पड़ती है।

8.3 लिपि क्या है?

हम यह चर्चा करना चाहेंगे कि लिपि क्या है और भाषा में लिपि का स्थान क्या है। आप तो जानते ही हैं कि मानव सभ्यता कुछ ही हजार साल पुरानी है और इसी दौरान भाषा का भी आविष्कार हुआ। भाषा प्रारंभ में मौखिक ही थी और लेखबद्ध रूप देने का प्रयत्न बाद में ही हुआ। चित्रांकन संभवत: लिपि के आविष्कार का बीज है। मानव ने वस्तुओं को प्रत्यक्षत: चित्रित किया होगा और चित्र को ही उस उच्चारित शब्द का लिखित रूप मान लिया होगा। हम आगे देखेंगे कि चित्र लिपि भी विश्व की लिपियों का एक प्रकार है। हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है जो चित्र लेखन से लेखन की व्यवस्था के विकास की दिशा बता सकें। पुराने मिस्र के कीलाक्षर (hierographic) लेखन में प्रयुक्त कई लिपि चिह्न वास्तव में चित्र हैं। उदाहरण के लिए राजहंस का चित्रात्मक अंकन ही लिखित शब्द है। चीनी भाषा में सूरज की तस्वीर ही सूरज शब्द का संकेत चिह्न है। बाद में आवश्यकतानुसार अन्य शब्दों की रचना के लिए यादृच्छिक चिह्न बनाए गए। ऐसी लेखन पद्धति को चित्रात्मक (logographic) लेखन की संज्ञा दी जाती है।

प्रसंग से यह भी उल्लेख करना चाहेंगे कि लेखन की पद्धति भाषा की रचना को प्रभावित कैसे करती है। चित्रलिपि में एक शब्द से निर्मित अन्य शब्दों की गुंजाइश नहीं होती जैसे हम संस्कृत में भाव, स्वभाव, स्वाभाविक, अस्वाभाविक आदि संबद्ध शब्दों का निर्माण करते हैं; चीनी भाषा के शब्द रूप बदलते नहीं हैं। इसी कारण चीनी को पूर्णत: अश्लिष्ट भाषा कहा जाता है।

भाषाओं में लेखन की पद्धति का विकास इस रूप में किया जाता है कि उच्चारित भाषा का लेखन प्रतिनिधित्व करे। इसके लिए भाषा के उच्चारण खंडों (ध्वनि) के लिए लेखन के चिह्नों (वर्ण) की व्यवस्था की जाती है। इन लिपि चिह्नों को लिपि संकेत या वर्ण (character) कहा जाता है। फलत: यह कह सकते हैं कि लेखन उच्चारित भाषा का स्थापन्न रूप है और परिणामत: लेखन में वह गुण होना

चाहिए कि वह उच्चारण का प्रतिनिधित्व करे। चित्र लिपि में उच्चारण और लेखन का प्रत्यक्ष संबंध न होने के कारण अध्येताओं और प्रयोक्ताओं को बहुत कठिनाई होती है।

जिस भाषा में उच्चारण और लेखन का सीधा, अपवाद रहित संबंध होगा, उसकी लिपि वैज्ञानिक कही जाएगी। इसी संदर्भ में हम देवनागरी को वैज्ञानिक लिपि कहते हैं। इसकी और चर्चा आगे करेंगे।

8.3.1 लिपि की आवश्यकता

लिपि क्यों आवश्यक है और युगीन परिस्थितियाँ लेखन को कैसे प्रभावित करती हैं, इसके बारे में विचार करेंगे। उच्चारित भाषा क्षणिक है, समय से बद्ध है। अगर हम महत्वपूर्ण विचारों को सुरक्षित रखना चाहें तो यह लेखन से ही संभव होगा। आदि युग में लेखन के साधन सीमित थे, अत: लोगों ने वाचिक परंपरा का निर्माण किया जिससे काव्य आदि पीढ़ियों तक सुरक्षित रह सकें। इसलिए छन्दबद्धता, गेयता आदि काव्य के प्रमुख लक्षण बने। वेदों की सुरक्षा के लिए विस्मृति, विभ्रम या उच्चारण दोष के कारण वेद की संहिताओं में बिगाड़ न आए। इस तरह लेखन संस्कृति को सुरक्षित रखने तथा उसे परवर्ती पीढ़ियों तक संप्रेषित करने का सबसे कारगर माध्यम है। लेखन के माध्यम से साहित्य और संस्कृति के अन्य तत्व सुरक्षित रह जाते हैं। अगर हमारे पास पिछली पीढ़ियों की भाषा की सामग्री न हो, तो हम इस भाषा या साहित्य के इतिहास के अध्ययन की कल्पना भी नहीं कर सकते।

उच्चारित भाषा स्थान की दृष्टि से भी सीमित है। अर्थात एक व्यक्ति अधिक से अधिक 50-100 लोगों को संबोधित कर सकता है। वैसे आधुनिक युग में संचार साधनों की उपलब्धता के कारण हम एक समय में करोड़ों लोगों को संबोधित कर सकते हैं, फिर भी स्थायित्व के कारण लेखन आवश्यक हो जाता है। लिपि विचार को स्थान की सीमा से मुक्त करती है। पुराने समय में लेखन के उन्नत साधनों के अभाव में लोग, छाल, चर्म, भोजपत्र आदि पर लेखन करते थे। लेकिन लेखन की कई प्रतियाँ बनाना कठिन था। इस कारण कम ही लोग लिखित साहित्य का अध्ययन कर पाते थे। कागज की ईजाद और मुद्रण काल के विकास के कारण आज लिखित सामग्री दूर दूर तक करोड़ों लोगों तक पहुँच सकती है। इस तरह लेखन, मुद्रण आदि तकनीकों के विकास के कारण भाषा, समय, स्थान और संख्या की सीमाओं से हो गई है। लिपि के कारण ही वर्तमान युग में भाषा और भाषा बोलने वाले समाज का पूर्ण विकास हो पाता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि लेखन के अभाव में भाषा के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिह्न लग सकता है।

8.3.2 विश्व की प्रमुख लिपियाँ

विश्व में लगभग 20 ही लिपियाँ है और भाषाएँ एक ही लिपि में लिखी जाती हैं। ये प्रमुखत: दो प्रकार की हैं। चित्रात्मक लिपि तथा उच्चारण के लिए निर्मित ध्वनि चिह्न पर आधारित प्रतीकात्मक लिपि।

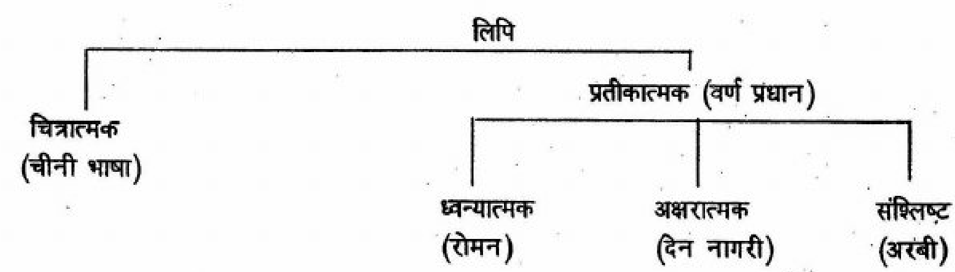

चीनी भाषा की लिपि चित्र लिपि है, जिसकी चर्चा हम कर चुके हैं। लिपि और उच्चारण में अलगाव के कारण उस लिपि को चीनी भाषा के विभिन्न क्षेत्रीय रूपों में अलग ढंग से उच्चारित किया जाता है। यों कह सकते हैं कि भाषाई दृष्टि से चीन लिपि के कारण जुड़ा है उच्चारण से नहीं।

अन्य लिपियाँ उच्चारण पर आधारित हैं। इनके तीन प्रकारों की आगे चर्चा करेंगें।

1. ध्वन्यात्मक (phonetic) लिपि : अंग्रेजी की रोमन लिपि ध्वन्यात्मक कही जाती है क्योंकि इसमें हर स्वर या व्यंजन का अलग चिह्न होता है। रोमन लिपि का प्रयोग लैटिन से ही शुरू होता है। अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पैनिश, इतालवी, रोमानी, चेक आदि भाषाएँ रोमन में ही लिखी जाती हैं। आज अफ्रीका के देश, मलेशिया, तुर्की आदि ने भी रोमन लिपि को अपना लिया है। रोमन का प्रयोग करने वाली भाषाओं में

लिपि और उच्चारण का सामंजस्य इतालवी, स्पेनिश आदि भाषाओं में सबसे अधिक है। अंग्रेजी में यह सामंजस्य कम है।

ग्रीक भाषा की ग्रीक लिपि तथा रूसी भाषा की सिरिलिक लिपि भी ध्वन्यात्मक हैं।

2. आक्षरिक (syllabic) लिपि : भारत तथा एशिया देशों की लिपियाँ आक्षरिक है, क्योंकि स्वर और व्यंजन के संयोजन में मात्रा युक्त अक्षर बनता है और कई जगह दो व्यंजन मिलकर नये अक्षर की सृष्टि करते हैं। भारत में लगभग वर्तमान 10 लिपियाँ है, जो ब्राह्मी लिपि से उद्‌भूत हुई हैं। एशिया में ब्रह्मदेश, थाईलैंड, विएतनाम आदि भाषाओं की अपनी लिपि है। इन लिपियों के निर्माण में इन भाषाओं ने संस्कृत से प्रेरणा प्राप्त की है। जापानी ने संस्कृत से प्रेरणा लेकर अपनी लिपि पद्धति विकसित की और हजारों चीनी अक्षर भी ग्रहण कर लिए। जापानी में हिंदी की तरह मूल स्वर या व्यंजन नहीं हैं, हर स्वर व्यंजन संयोग का अलग चिह्न बन जाता है।

3. संश्लिष्ट लिपि : अरबी भाषा की लिपि में स्वर, व्यंजन के मूल वर्ण तो हैं, लेकिन शब्द में स्थान के आधार पर मूल स्वर या व्यंजन का अंश मात्र रह जाता है। जैसे ह (ح) के अलग जगह रूप होंगे - ـحـ, حـ या ـح अरबी भाषा के अलावा फारसी, उर्दू, सिंधी आदि भाषाएँ भी अरबी लिपि में लिखी जाती हैं।

8.4 प्राचीन भारत की लिपियाँ

प्राचीन भारत में भारत की व्यवहृत सिंधु घाटी की लिपि आज तक सारे संसार के लिए रहस्य बनी हुई है। इस लिपि के नमूने हमें मोहन-जो-दड़ो तथा हड़प्पा से प्राप्त सीलों से मिले हैं। चूँकि प्राप्त सामग्री अत्यंत सीमित हैं और संदर्भ स्पष्ट नहीं है, आज तक हम इन सीलों में उत्कीर्ण पाठ का पठन नहीं कर पाये हैं, यद्यपि पिछली सदी में संसार भर के अनेकों विद्वानों ने प्रयास कर लिया था। कई संस्थाएँ और विद्वान यह भी दावा करते हैं कि उन्होंने इस लिपि का ज्ञान अर्जित कर लिया है। कोई इसको द्रविड़ तथा स्थानीय उत्पत्ति मानते हैं; कोई कहता है कि यह सुमेरी लिपि से निकली है, कोई इसे ब्राह्मी का पूर्व रूप मानते हैं। सीलों से प्राप्त चिह्नों में कुछ चित्र लिपि के नमूने लगते हैं और कुछ ध्वनिसूचक लिपि चिह्न लगते हैं। कुछ विद्वान इसे चित्रलिपि और अक्षर लिपि का प्रारंभिक मिलाजुला रूप मानते हैं। अभी तक यह लिपि जिज्ञासा का विषय बनी हुई है।

प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में ब्राह्मी, खरोस्ठी, अंग, वंग, मगध, मांगल्य आदि कई लिपियों का उल्लेख मिलता है। इनमें ब्राह्मी और खरोस्ठी के अतिरिक्त किसी भी लिपि का प्रमाण नहीं मिलता। खरोस्ठी लिपि के प्राचीनतम नमूने हमें शिलालेखों में मिले हैं जिसका समय ई.पू. 5वीं सदी माना जाता है। अशोक के शिलालेखों के बाद से नियमित रूप से हमें ब्राह्मी में लिखे पाठ मिल रहे हैं।

8.5 ब्राह्मी लिपि और देवनागरी का विकास

ब्राह्मी शब्द की व्युत्पति कई प्रकार से दी जाती है। ब्राह्मी के अस्तित्व में आने तक या साथ-साथ विश्व में चार लिपि व्यवस्थाएँ प्रतिष्ठित हो चुकी थीं। चीनी, असीरिया के कीलाक्षर (Cuneiform), यूनानी, और सामी (semitic) जिसमें अरबी की वर्ण व्यवस्था बनी। इन चारों की प्रकृति से ब्राह्मी इतनी भिन्न है कि प्रत्यक्ष स्रोत का अनुमान भी नहीं किया जा सकता। ब्राह्मी के भारतीय उत्पत्ति के संदर्भ में तीन संभावनाएँ बन सकती हैं। सिंधु घाटी की लिपि से ब्राह्मी के उद्‌भव की बात तभी सिद्ध हो सकती है जब सिंधु घाटी की लिपि पर से रहस्य का पर्दा उठ जाए। दूसरी संभावना है कि भारतीय मूल के किसी चित्रात्मक लिपि से इसका विकास। इसके लिए प्रमाणों का अभाव है। तीसरी संभावना है कि आर्यों ने अन्य लिपियों से प्रेरणा प्राप्त कर लिपि व्यवस्था का निर्माण किया हो। गौरीशंकर ओझा कहते हैं - "यह निश्चयपूर्वक कहा नहीं जा सकता कि ब्राह्मी लिपि का आविष्कार कैसे हुआ.......इतना ही कहा जा सकता है कि ब्राह्मी अपनी प्रौढ़ अवस्था में और पूर्ण व्यवहार में आती हुई मिलती है और उसका किसी बाहरी स्रोत और प्रभाव से निकलना सिद्ध नहीं होता।''

ब्राह्मी लिपि के नाम के संदर्भ में भी कई मत हैं। एक मत है कि ब्रह्मा इसकी सृष्टि के कर्ता हैं। राजबली पांडेय कहते हैं कि ब्रह्म ज्ञान के वेदों के लिए उपयोग में आने के कारण इसे ब्राह्मी कहा जाता

है लेकिन वेद हमारे सामने प्राचीन युग के लेखन में उपलब्ध नहीं होते। कुछ लोग यह मानते हैं कि ब्राह्मणों के द्वारा आविष्कार और प्रयोग के कारण यह ब्राह्मी कहलाई।

ब्राह्मी की कुछ विशेषताएँ हैं। इसमें संस्कृत की वर्णमाला के सभी वर्ण मिलते हैं। अत: यह स्पष्ट है कि संस्कृत भाषा के लेखन के लिए इसका प्रवर्तन किया गया, चाहे प्रेरणा स्रोत जो भी हो। यह बायें से दायें लिखी जाती है जबकि हीब्रू, सामी तथा अरबी लिपि दायें से बायें लिखी जाती हैं। इसमें स्वर, व्यंजन और मात्राएँ हैं जिससे यह भारत की अक्षरात्मक लिपियों का सूत्रधार बनी।

ब्राह्मी लिपि से देवनागरी के विकास क्रम को आप आगे देखेंगे।

ब्राह्मी लिपि में अंकों के लिए दशमलव पद्धति से अंक थे। उन अंकों से देवनागरी के अंकों के विकास को आप तालिका में देख सकते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि ब्राह्मी के अंकों को अरब अपने साथ ले गये और यूरोपीय भाषाओं ने इन्हें अपनाया। यूरोप में प्रचलित रोमन अंक आदि का प्रयोग क्षेत्र सीमित हो गया। अरबी स्रोत से आने के कारण अंग्रेजों ने इन्हें अरबी अंक कहा।

ब्राह्मी से अन्य भारतीय लिपियों का विकास

विश्व की लिपियों की लगभग आधी लिपियाँ भारत में ही हैं। बंगला, गुजराती, गुरुमुखी, ओड़िया की लिपियाँ प्रत्यक्षत: ब्राह्मी के क्षेत्रीय रूपों से विकसित हुई। साथ ही गुप्त साम्राज्य समय की गुप्त लिपि, उससे निकली परवर्ती कुटिल लिपि, कश्मीर की शारदा लिपि, पूर्व की कैथी लिपि आदि भी ब्राह्मी से ही विकसित हुईं।

दक्षिण की तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम की अपनी-अपनी लिपियाँ हैं। ये लिपियाँ भी ब्राह्मी की किसी दक्षिण शैली से ही विकसित हुई हैं। दक्षिण की भाषाओं में मूलत: महाप्राण ध्वनियों का और घोष ध्वनि (ग, द, ब, आदि) का अभाव था लेकिन संस्कृत भाषा के शब्दों और पाठों को लिखने की आवश्यकता के कारण तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ ने /क ख ग घ ङ। के समान चिह्नों और वर्णमाला के क्रम को अपना लिया। केवल तमिल भाषा में जैसे क, ङ; च, ञ; ट, ण; त, न; प, म दो-दो वर्ण ही हैं। फिर भी उल्लेखनीय है कि तमिल वर्णमाला में स्वरों और व्यंजनों का क्रम देवनागरी के ही अनुसार है। यह ब्राह्मी के प्रत्यक्ष प्रभाव के कारण ही है।

कुछ अन्य बोलियों की लिपियाँ या पुरानी लिपियाँ अधिक प्रचलित नहीं है। देश की अन्य कुछ भाषाएँ देवनागरी में या रोमन में या क्षेत्रीय लिपि में लिखी जाती हैं।

ये नौ लिपियाँ ब्राह्मी लिपि से निकली हैं। इसलिए इन लिपियों में कई वर्ण समान हैं, लेखन की प्रवृत्ति एक जैसी है। विकास क्रम में इन लिपियों में अंतर आते गए, फिर भी साम्य को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आगे की तालिका में, इन लिपियों के कुछ उदाहरण दिए गए हैं-

कई जगह वर्णों की आकृति भी समान है। उदाहरण के लिए आरेख में निम्नलिखित वर्ण देखिए -

ब्राह्मी	𑀅	𑀇	𑀏		𑀓	𑀝	𑀦	𑀧	𑀭	𑀮
हिंदी/मराठी	अ	इ	ए	ओ	क	ट	न	प	र	ल
गुजराती	અ	ઈ	એ	ઓ	ક	ટ	ન	પ	ર	લ
पंजाबी	ਅ	ਇ	ਏ	ਓ	ਕ	ਟ	ਨ	ਪ	ਰ	ਲ
बांगला/असमिया	অ	ই	এ	ও	ক	ট	ন	প	র	ল
ओड़िया	ଅ	ଇ	ଏ	ଓ	କ	ଟ	ନ	ପ	ର	ଲ
तमिल	அ	இ	எ	ஓ	க	ட	ன	ப	ர	ல
मलयालम	അ	ഇ	എ	ഓ	ക	ട	ന	പ	ര	ല
कन्नड़	ಅ	ಇ	ಎ	ಓ	ಕ	ಟ	ನ	ಪ	ರ	ಲ
तेलुगु	అ	ఇ	ఎ	ఓ	క	ట	న	ప	ర	ల

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि भारत की आर्य और द्रविड़ भाषाओं में वर्ण, वर्णमाला, उच्चारण, शब्द संरचना आदि की दृष्टि से मूलभूत एकता है जो परस्पर आदान-प्रदान द्वारा स्थापित हुई है। इसी कारण एमनो नामक प्रसिद्ध भाषाविज्ञान भारत को एक समन्वित भाषा क्षेत्र कहते हैं।

भाषाओं में भी वर्ण साम्य सिर्फ स्वर व्यंजनों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि मात्राओं के लेखन में भी समानता देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए

हिंदी	का	की	कू	के	को
गुजराती	કા	કી	કૂ	કે	કો
पंजाबी	ਕਾ	ਕੀ	ਕੂ	ਕੇ	ਕੋ
बांगला/असामेया	কা	কী	কৃ	কে	কো
ओड़िया	କା	କୀ	କୂ	କେ	କୋ
तमिल	கா	கீ	கூ	கே	கோ
मलयालम	കാ	കീ	കൂ	കേ	കോ
कन्नड़	ಕಾ	ಕೀ	ಕೂ	ಕೇ	ಕೋ
तेलुगु	కా	కీ	కూ	కే	కో

भारत में उर्दू को छोड़कर कुल नौ प्रमुख लिपियाँ हैं। देवनागरी का उपयोग संस्कृत के अतिरिक्त हिंदी, मराठी और नेपाली भाषाओं के लिए होता है। बांगला लिपि का उपयोग कुछ परिवर्तनों के साथ असमिया और मणिपुरी के लिए होता है। वैसे आजकल मणिपुरी भाषा में अपनी पुरानी लिपि मेईथई को पुनरुज्जीवित करने के प्रयास हो रहे हैं।

8.6 देवनागरी लिपि

ब्राह्मी लिपि से, जो संस्कृत भाषा के लेखन के लिए सदियों तक व्यवहार में आती रही, बाद में देवनागरी लिपि का विकास हुआ। देवनागरी संस्कृत भाषा की प्रमुख लिपि बनी, भले अन्य लिपियों में भी संस्कृत का लेखन होता रहा।

तमिलनाडु में संस्कृत के लेखन के लिए तमिल और मलयालम के वर्णों के योग से 'ग्रंथ' लिपि का प्रचलन हुआ।

देवनागरी नामकरण संबंधी प्रमुख मत निम्नलिखित हैं:-

1. बौद्ध ग्रंथ ललित विस्तार में उल्लेखित 64 लिपियों में से नागलिपि के आधार पर इसका नाम पड़ा।
2. गुजरात के नागर ब्राह्मणों ने सर्वप्रथम इसका उपयोग किया।

3. नगरों में विकास होने के कारण यह देवनागरी है।

4. देवनागरी काशी में प्रचार प्रसार होने के बाद यह नाम पड़ा।

5. दक्षिण के विजयनगर राजाओं के दानपत्रों में इसे नंदि नागरी का नाम दिया गया है। इसी से देवनागरी नाम का विकास हुआ।

6. तांत्रिक उपासना पद्धति में देवनगरम नामक यंत्रों के बीच अंकित सांकेतिक चिन्हों से देवनागरी लिपि का विकास होने के कारण उसका नाम देवनागरी हुआ।

7. प्राचीन काल में देव रूप में सम्मानित राजाओं द्वारा प्रयोग किए जाने के कारण देवनागरी नाम पड़ा

8. मध्ययुग की नागर स्थापत्य शैली से समानता के कारण यह नाम पड़ा।

9. इसमें देववाणी संस्कृत का लेखन होने के कारण देवनागरी नाम पड़ा।

आगे की तालिका में हम देवनागरी के विकास क्रम को देख सकते हैं-

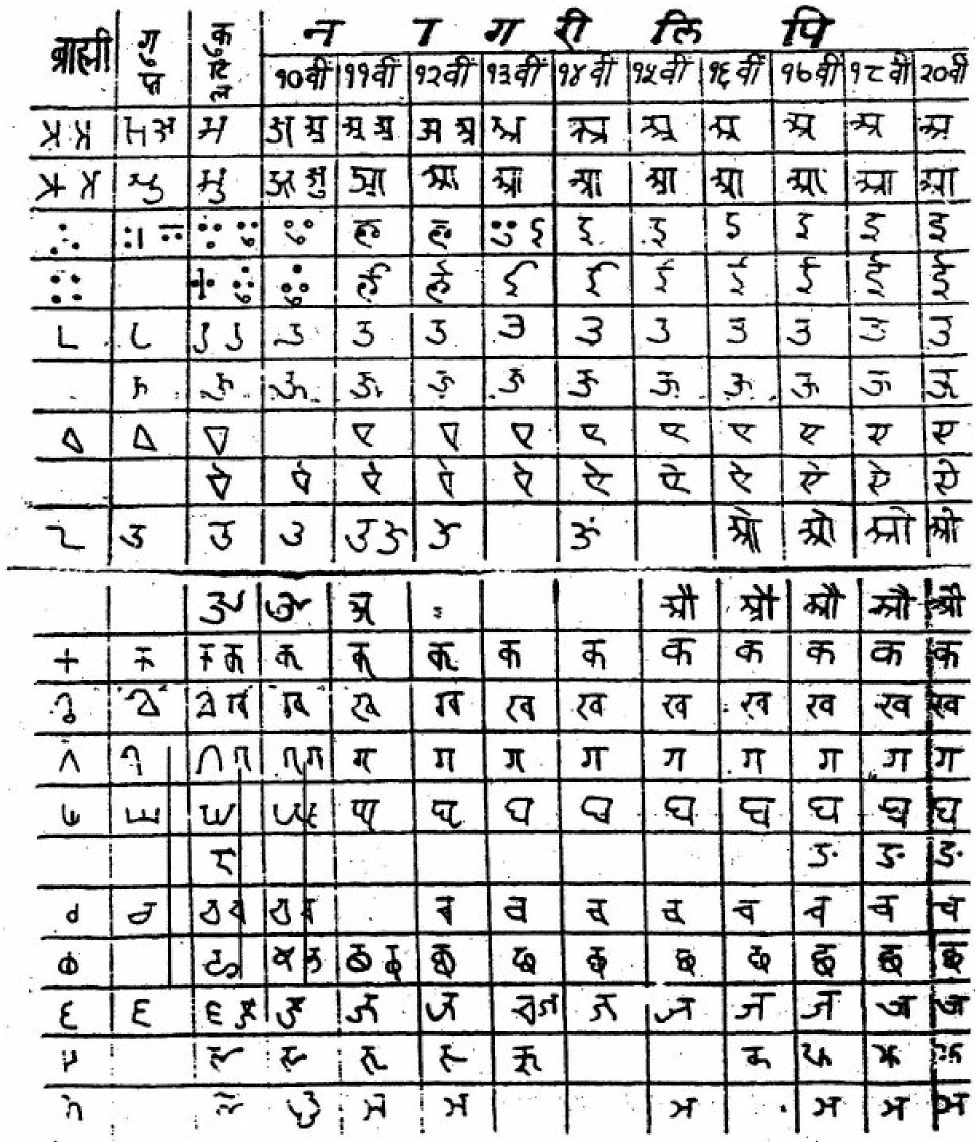

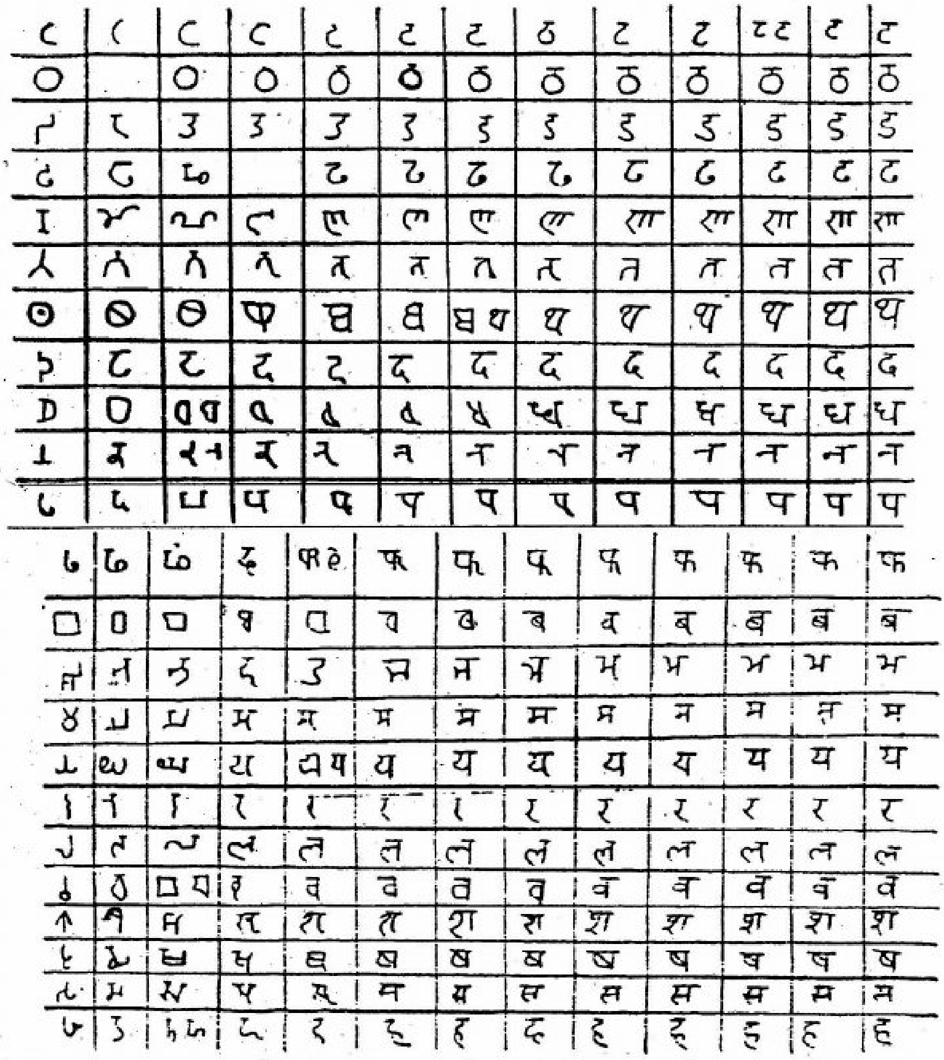

तालिका से यह स्पष्ट होता है कि दसवीं शताब्दी से ही हमें देवनागरी में लेखन के नमूने प्राप्त हो जाते हैं। 18वीं शताब्दी के मध्य तक हिंदी में मुद्रण के विकास के साथ यह परिपक्वता में पहुँची। आज देवनागरी का उपयोग संस्कृत और हिंदी के अतिरिक्त मराठी और नेपाली में भी होता है। हिंदी की समस्त बोलियाँ देवनागरी में ही लिखी जाती हैं। और बोलियों की लिपियाँ समाप्त हो चुकी हैं। कश्मीरी और सिंधी भाषाएँ अरबी-फारसी लिपि में लिखी जाती हैं। आजकल उन दोनों भाषाओं के लिए भी देवनागरी के उपयोग करने की अपील की जा रही है। भारत के सुदूर पूर्व में तथा महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, बिहार आदि के इलाके में बोली जाने वाली जन जातियों की भाषाओं के लिए भी देवनागरी के उपयोग करने का प्रयास किया जा रहा है।

पूरे भारत की भाषाओं के लिए देवनागरी को सामान्य लिपि यानी अखिल भारतीय लिपि बनाने के पक्ष में कुछ विद्वान राय देते हैं लेकिन बंगला, तमिल, आदि समुन्नत भाषाओं की अपनी लिपि होने के कारण यह विचार कार्य रूप में परिणत नहीं हो सकेगा। हाँ, केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने यह अनुभव किया है कि देवनागरी लिपि में अन्य भाषाओं के लिए व्यवस्था की जानी चाहिए। निदेशालय ने परिवर्धित देवनागरी में अन्य भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों के किए चिह्न प्रस्तावित किए हैं।

8.7 मानक देवनागरी : स्थिति और समस्याएँ

भारत के संविधान में घोषणा की गई कि देवनागरी में लिखी हिंदी भाषा संघ की राजभाषा होगी। इसके साथ हिंदी भाषा का प्रयोग बढ़ा। टंकण, मुद्रण, कंप्यूटर में प्रयोग आदि विविध नये क्षेत्रों में इस भाषा के प्रयोग का विस्तार हुआ। यह अनुभव किया गया कि सहज रूप में काम करने के लिए इसमें आवश्यक संशोधन और परिवर्तन करने की आवश्यकता अनुभव की गई। इस प्रक्रिया को हम लिपि का मानकीकरण कहते हैं :

8.7.1 लिपि सुधार आंदोलन

हिंदी भाषा की लिपि देवनागरी को हिंदी के संदर्भ में वैज्ञानिक लिपि कहा जाता है, क्योंकि लेखन और उच्चारण में बहुत तालमेल हो इस वैज्ञानिकता के बावजूद वर्णाकृति, वर्ण क्रम आदि समस्याएँ सामने आती हैं, तो इनके निवारण के लिए प्रयास किये जाते हैं। 1950 में राजभाषा घोषित किये जाने से पहले कई विद्वानों ने ऐसी समस्याओं के संदर्भ में देवनागरी में सुधार के प्रयास शुरू किये थे। हम यहाँ कुछ प्रमुख सुधार के प्रयत्नों की चर्चा करेंगे।

काका कालेलकर समिति ने दो महत्वपूर्ण सुझाव दिये जिसे महात्मा गांधी और विनोबा भावे का भी समर्थन प्राप्त है। एक, स्वरों में अ, आ अि, अी, अु जैसे अ की बारह खड़ी का उपयोग किया जाए। दो, गुजराती की तरह देवनागरी को भी बिना शिरा रेखा के लिखा जाए, जैसे भारत।

हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने 1941 में लिपि सुधार समिति बनाई थी, जिसमें निम्नलिखित सुझाव थे। 1) मात्राओं रेफ और अनुस्वार को **ऊपर न लिखकर अथवा लिखा जाए** जिससे उनका वर्ण क्रम स्पष्ट हो- जैसे क ल, क स, ध ॅ म। 2) इ की मात्रा को बाद में किया जाए, जैसे कीया (किया) और शील (शील) 3) ऊ की बारह खड़ी अपनायी जाए, 4) संयुक्त व्यंजनों में र को पूरा लिखा जाए, जैसे प्रेम, करम आदि 5) शिरारेखा का लेखन वैकल्पिक हो। 6) ध और भ भ्रम पैदा करते हैं। अंत: इन्हें ऊपर से शुरू किया जाए जैसे **ध, भ**।

आचार्य नरेंद्र देव समिति उत्तर प्रदेश सरकार के प्रयत्न से 1947 में बनी थी जिसमें धीरेंद्र वर्मा, मंगलदेव शास्त्री आदि सदस्य थे। उनकी सिफ़ारिशें थी- 1) क्ष, त्र, श्र, द्य आदि संयुक्त वर्णों को निकाल देना 2) इ के लिए पश्चगामी, भिन्न मात्रा जैसे **की**, की 3) ध और भ का रूप।

नागरी प्रचारिणी- सभा के अनुरोध पर उत्तर प्रदेश सरकार ने 1953 में लिपि के सुधार के सुझाव दिये थे। ये हैं- 1) इ की मात्रा (क, की आदि) 2) क्ष, त्र, श्र जैसे सब संयुक्ताक्षरों को अलग लिखा जाए, जैसे क्ष, त्र, शृ आदि। 3) मानक वर्णों की सिफ़ारिश - ख, ध, भ, छ।

8.7.2 मानक हिंदी वर्णमाला

भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के अधीन हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए स्थापित केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने 1967 में परिवर्धित देवनागरी नामक प्रकाशन में मानक हिंदी वर्णमाला और वर्तनी को अंतिम रूप दिया। निदेशालय ने साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं के हिंदी में लेखन के लिए नये चिह्न भी सुझाये हैं। निदेशालय के इस प्रकाशन को हमने इस पाठ्यक्रम के आलेख संग्रह विवेचना में सम्मिलित किया है। आप उसे अवश्य पढ़ें और यथासंभव मानक लिपि और वर्तनी का अनुपालन करें।

निदेशालय ने पंचमाक्षर की जगह अनुस्वार के प्रयोग तथा त्त, ड्ड जैसे पुराने जुड़े हुए अक्षरों की जगह हलंत आदि से क्त, ड्ड जैसे अलग-अलग अक्षर लिखने की सिफ़ारिश की जिससे टंकण - मुद्रण तो सरल हुआ ही, भाषा अर्जन में भी सहजता आ गयी। वर्णों के संदर्भ में निदेशालय ने 1953 की सुधार समिति की सिफ़ारिश मानकर ख, ध, भ, छ को मानक घोषित किया, लेकिन सुधार आंदोलन समितियों की अन्य कोई भी सिफ़ारिश नहीं मानी गयी।

आधुनिक युग की भाषा की लिपि में युग की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार मानकीकरण के उपाय करने होते हैं। यहाँ हम अच्छी लिपि के गुणों के संदर्भ में मानकीकरण के निम्नलिखित पक्षों की चर्चा करते हैं-

i) एकरूपता : एक ही वर्ण को कई ढंग से लिखा जाए, तो पाठकों, मुद्रकों और अध्येताओं को कठिनाई हो सकती है। निदेशालय ने परिवर्धित देवनागरी में अ, क्ष, ण आदि को मानक घोषित किया है और आदि वर्णों के लेखन को नकारा है।

ii) सरलीकरण : निदेशालय मेल के स्थान ल की सिफ़ारिश की है, क्योंकि इससे ल्ल, ल्य आदि संयुक्त अक्षरों का निर्माण सरलता से हो सकता है। इसी तरह ड्ड , ह्य, ह्म, द्य आदि के स्थान पर हलंत से ड्ड, ह्य, ह्म, द्य आदि गुच्छ बनाने की सिफ़ारिश की है। साथ ही **अन्त, पन्थ, बन्द, अन्ध** के स्थान पर अनुस्वार से *अंत, पंथ, बंद, अंध* आदि शब्द लिखने की सिफ़ारिश की गई है, जिससे अध्येता आसानी से लिख-पढ़ सके।

उल्लेखनीय है कि यांत्रिक साधनों की सीमा को ध्यान में रखते हुए सरलीकरण करना अनिवार्य हो जाता है। टंकण यंत्र में कुंजियों की सीमित संख्या के कारण ङ्ग, क्त आदि अक्षर टंकित कर पाना असंभव-सा है।

iii) **वैज्ञानिकता :** अवैज्ञानिक लिपि से भ्रम पैदा होता है और इससे भाषा का उपयोग बाधित होता है। निदेशालय ने पूर्व रूप / ख / के स्थान पर / ख / के लेखन की सिफ़ारिश की है, क्योंकि इसे पाठक कई जगह र+व समझ जाता था और 'खाना' और 'रवाना' में अंतर नहीं कर पाता था। /भ/ के स्थान पर /भ/ की सिफ़ारिश का भी यही आधार है, क्योंकि त्वरित लेखन में इससे /म/ का भ्रम हो जाता था।

iv) **सार्वभौमता :** हिंदी में अभी इस गुण का अभाव है। रोमन लिपि में कंप्यूटर से लिखी गई सामग्री को आप अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कहीं भी पढ़ सकते हैं क्योंकि इसके **html** नामक सामान्य मानक का विकास किया गया है। हिंदी में इस मानक के अभाव के कारण प्रोग्रामों, कंप्यूटरों के बीच सामग्री का आदान-प्रदान असंभव-सा है।

हिंदी में वर्णाकृति के मानकीकरण की भी आवश्यकता है, जिससे कंप्यूटर मुद्रित सामग्री को पढ़ सके। अंग्रेजी में **Optical Character Reader (OCR)** नामक कार्यक्रम विकसित हुआ है, जो छपी सामग्री को निवेश **(input)** के रूप में ले लेता है। हिंदी में अभी **OCR** कार्यक्रम नहीं बना है।

लिपि और उच्चारण के सामंजस्य के मानकीकरण की भी आवश्यकता है, जिससे वक्तव्य सुनकर कंप्यूटर उसे पाठ के रूप में बदल ले। इस संदर्भ में आगे की दिशाओं और संभावनाओं के बारे में आप अगले प्रकरण में पढ़ेंगे।

8.7.3 मानकीकरण की प्रक्रिया

मानकीकरण लंबी प्रक्रिया है और बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार नये सिरे से मानकीकरण करने की आवश्यकता होती है। मुद्रण और टंकण तक वर्णाकृति (वर्ण का अनुपात, आकार आदि) के मानकीकरण की बात सोची ही नहीं गई थी। उस समय सुघड़ता, सुंदरता और सुबोधता मात्र अच्छे वर्णों के लक्षण माने जाते थे। लेकिन आज हमें वर्णाकृति को भी मानकीकृत करने की आवश्यकता है, अन्यथा कंप्यूटर द्वारा मुद्रित पाठ का पठन और निवेश संभव नहीं हो पाएगा। तभी हम हिंदी के लिए आदान-प्रदान के लिए **html**, फान्ट का उपयोग कर पाएँगे।

चिंता की बात है कि हिंदी की वर्णमाला का भी मानकीकरण नहीं हुआ है। इसका कारण यह है कि हम विरासत में प्राप्त संस्कृत वर्णमाला में कोई छेड़छाड़ करने को मानसिक रूप से तैयार नहीं हैं। लेकिन हिंदी में निम्नलिखित वर्ण और चिह्न लेखन में प्रयुक्त होते हैं, जिनका वर्णमाला में स्थान निश्चित नहीं है-

हिंदी के आंतरिक विकास से प्राप्त	ड़ (जोड़) ढ़, (पढ़) ँ (साँस)
उर्दू-अंग्रेज़ी शब्दों के लिए गृहीत	ज़ फ़
उर्दू के शब्दों के लिए गृहीत	ख़ (बुख़ार) - सीमित क़ (क़दर) ग़ (दिमाग़) - नगण्य
अंग्रेजी के स्वर के लिए निमित	ॉ (कॉलेज)
संस्कृत से प्राप्त	् (हलंत) बुद्ध, महान्

हमें निर्णय करना होगा कि इनमें से किन चिह्नों को अपनाएँ और उन्हें वर्णमाला में कहाँ और कैसे दिखाएँ। तभी हम कंप्यूटर के लिए मानक कुंजीपटल तैयार कर पाएँगे।

लिपि के मानकीकरण के संदर्भ में अहम मुद्दा है सही अकारादि क्रम का। आज शब्दकोशों में ज़ और ज में क्रम की दृष्टि से कोई अंतर नहीं किया जाता। लेकिन इन्हें हिंदी के दो अलग वर्ण मानें, तो इनका स्थान अलग होगा और शब्दकोश में भी इनकी प्रविष्टियाँ अलग जगह होंगी। यही बात ऊपर के इन सभी वर्ण चिह्नों पर लागू होती है।

पूर्वकृत मानकीकरण के प्रयत्नों के संदर्भ में हमारे सामने पंचमाक्षर वाले शब्दों के दो विकल्प हैं -

अंदर/अन्दर, पंडित/पण्डित। कंप्यूटर इन्हें दो अलग शब्दों के रूप में पहचानेगा और दो अलग जगहों में रखेगा। यह कठिनाई लंबी नाम सूचियों को या किसी पुस्तक में आए शब्दों को कंप्यूटर द्वारा अकारादि क्रम में व्यवस्थित करने के कार्यक्रम में बाधा पहुँचाएगी। इन व्यावहारिक समस्याओं को ध्यान में रखते हुए हिंदी वर्णों और वर्तनी रूपों के अकारादि क्रम को मानकीकृत करने की आवश्यकता है। अन्यथा शब्दकोश बनाना कठिन होगा। सूचना के अभाव में कार्यालय की गतिविधियाँ प्रभावित होंगी और कंपनियों को घाटा उठाना पड़ सकता है।

लिपि की वैज्ञानिकता का प्रश्न

प्राय: कहा जाता है कि देवनागरी लिपि अत्यंत वैज्ञानिक है और इसमें उच्चारण और लेखन का तालमेल है। यह बात स्पष्ट करना चाहेंगे कि 'देवनागरी लिपि' के वैज्ञानिक होने की बात अपने में सार्थक नहीं है, जब तक हिंदी की लिपि या संस्कृत की लिपि आदि की बात न की जाए। इस बात को स्पष्ट करने के लिए हम संस्कृत और हिंदी भाषा में लेखन और उच्चारण की तुलना करना चाहेंगे। निम्नलिखित स्थिति में जहाँ लेखन और उच्चारण का तालमेल टूटता है, उसे रेखांकित किया गया है -

संस्कृत

तेषां teṣām सतत satata य: yaḥ संशय: saṃʃayaḥ सदैव sadaiva चिह्न cihna

हिंदी

आशा āṣā भाषा bhāṣā सतत satat संस्कार sanskār चिह्न cinnh
सदैव sadɛ:v भैया bhaiya एवं evam तुम tum मैं mɛ̃

इस चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी भाषा की विधि की वैज्ञानिकता को उस भाषा के संदर्भ में ही आँका जा सकता है; भाषा निरपेक्ष रूप में नहीं। सार रूप में कह सकते हैं कि संस्कृत भाषा की लिपि में हिंदी की अपेक्षा वर्ण-ध्वनि का सामंजस्य ज़्यादा दिखाई देता है। हिंदी या मराठी भाषाओं की लिपि की वैज्ञानिकता को उन भाषाओं के संदर्भ में ही देखा जा सकता है।

8.8 सारांश

लिपियाँ भाषाओं को स्थिरता देने और संस्कृति को आगे बढ़ाने का साधन हैं। लिपि के कारण ही शिक्षा, विज्ञान आदि का विकास संभव हो पाता है।

लिपि भाषा के उच्चरित रूप का प्रतीक है। हम मौखिक भाषा को ही लिखित रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस तरह लिपि भाषा की प्रतिनिधि है।

विश्व में लगभग 20 लिपियाँ हैं, जिनमें दस भारत में ही हैं। रोमन लिपि में अंग्रेजी, फ्रेंच आदि भाषाएँ लिखी जाती हैं, अरबी लिपि में अरबी, फ़ारसी, उर्दू आदि भाषाएँ लिखी जाती हैं, देवनागरी में संस्कृत, हिंदी, मराठी, नेपाली आदि भाषाएँ लिखी जाती हैं।

भारत में तमिल, तेलुगु, गुजराती, पंजाबी, ओड़िया, बांगला आदि भाषाओं की अपनी-अपनी लिपियाँ हैं। ये सारी लिपियाँ ब्राह्मी लिपि से उत्पन्न हुई हैं, जिसमें प्रारंभ में संस्कृत भाषा लिखी जाती थी। सामान्य स्रोत से उत्पन्न इन लिपियों के कारण इन भाषाओं में वर्ण के आकार, वर्णमाला क्रम, उच्चारण आदि बातों में गहरा साम्य मिलता है।

लिपि का भाषा से अप्रत्यक्ष संबंध ही है, क्योंकि हम उच्चारण की हर विशेषता को लिपि में नहीं दिखा सकते। कुछ भाषाओं में (जैसे अंग्रेज़ी) वर्ण-उच्चारण सामंजस्य कम होता है, कुछ भाषाओं में (जैसे संस्कृत) यह सामंजस्य अधिक है। हिंदी भाषा में संस्कृत की परंपरा के कारण वर्ण-उच्चारण सामंजस्य काफ़ी है। इसलिए देवनागरी को वैज्ञानिक लिपि कहा जाता है।

लिपि में युग के अनुसार परिवर्तन-संशोधन करने की आवश्यकता पड़ जाती है, जिसे मानकीकरण कहते हैं। आधुनिक युग में कम्प्यूटर के प्रयोग की स्थिति में मानक लिपि की आवश्यकता है जिससे प्रकाशन, शब्दकोश निर्माण, कम्प्यूटर द्वारा वाचन आदि कार्यक्रम बन सकें।

8.9 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1. भारतीय भाषाओं की लिपियों की मूलभूत एकता स्पष्ट कीजिए। (500 अक्षरों में)

2. देवनागरी के विकास क्रम का वर्णन कीजिए। (250 अक्षरों में)

3. लिपि की वैज्ञानिकता से क्या तात्पर्य है? (100 अक्षरों में)

4 हिंदी में मानकीकरण की आवश्यकता। (100 अक्षरों में)

संदर्भ ग्रंथ

धीरेंद्र वर्मा : ग्रामीण हिंदी

अंबा प्रसाद सुमन : हिंदी और उसकी उपभाषाएँ

भोलानाथ तिवारी : हिंदी भाषा

चंद्रधर शर्मा गुलेरी : पुरानी हिंदी

कैलाश चंद्र भाटिया : हिंदी भाषा : विकास और स्वरूप

हरदेव बाहरी : हिंदी भाषा

बाबूराम सक्सेना : दक्खिनी हिंदी

नगेंद्र (सं.) : हिंदी साहित्य का इतिहास

गौरी शंकर हीराचंद ओझा : भारतीय प्राचीन लिपिमाला

गुणाकर मुले : अक्षर कथा

देवीशंकर द्विवेदी : देवनागरी

उदय नारायण तिवारी : हिंदी भाषा का उद्गम और विकास

गोपाल राय : हिंदी भाषा का विकास

NOTES

NOTES